जैन स्तोक मंजूषा

(भाग १, २, ३, ४)

प्रकाशक

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

समता भवन, बीकानेर (राज.)

जैन स्तोक मंजूषा
(भाग 1, 2, 3, ४)

❀ प्रथम संस्करण—जुलाई 1996, प्रतियाँ 2200

❀ मूल्य—28 रुपये

❀ अर्द्ध मूल्य—14 रुपये

❀ प्रकाशक—

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, बीकानेर–334005 (राज.)

❀ आवरण पृष्ठ

सांखला प्रिन्टर्स
चन्दन सागर रोड, बीकानेर (राज.)

❀ मुद्रक—

जैन आर्ट प्रेस
समता भवन, बीकानेर (राज.)
फोन—26867

प्रकाशकीय

गणधरो द्वारा ग्रथित आगम ग्रन्थो का अध्ययन और अनुशीलन जन सामान्य के लिए दुरुह है। किन्तु कोई भी जिज्ञासु पाठक सूक्ष्मार्थ प्रतिपादक इन विशालकाय ग्रन्थों से सरलता से तत्त्वज्ञान प्राप्त कर सके इसलिए शास्त्रो मे आये हुए मूल पाठो के आधार पर 'स्तोको-थोकडो' का सकलन हुआ इनमे विशेष रूप से भगवती सूत्र और प्रज्ञापना सूत्र के स्तोको का सकलन दृष्टिगत होता है। इन स्तोको की वाचना, पृच्छना, पारियट्टणा और अनुप्रेक्षा करके अनेक भव्य आत्माओ ने तलस्पर्शी तत्त्वज्ञान रहस्य प्राप्त किया है।

भगवती और प्रज्ञापना सूत्र के थोकडो का सर्वप्रथम व्यवस्थित प्रकाशन श्री अगरचन्द भैरूदान सेठिया जैन पारमार्थिक सस्था द्वारा हुआ। इसमे श्रद्धेय स्व आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा के शिष्य शास्त्रमर्मज्ञ प. रत्न श्री पन्नालालजी म सा तथा सुश्रावक श्री हीरालालजी मुकीम को सैकडो थोकडे कठस्थ थे उनको भी श्री जेठमल जी सेठिया ने लिपिवद्ध करवाया। तत्पश्चात् भगवती सूत्र के थोकड़ो के नौ भागो मे तथा प्रज्ञापना सूत्र के थोकडो

के तीन भागो मे विभाजित कर प्रकाशित करवाया । अनेक संत-सती एव मुमुक्षु भव्य जन इन थोकडो से लाभान्वित हुए ।

इन थोकडों को कठस्थ करने से तथा चिन्तन, मनन अन्वेषण करने से शास्त्रो के गहन विषयो पर भी सरलता से अधिकार प्राप्त हो जाता है । इस बात का परीक्षण जब परम पूज्य समता विभूति समीक्षण ध्यान योगी आचार्य भगवन श्री नानालालजी म सा तथा शास्त्रज्ञ, तरुणतपस्वी अवधूत साधक श्रद्धेय युवाचार्य श्री रामलाल जी म. सा ने किया तो एक योजना बनी कि विद्यार्थी जीवन के प्रारम्भ मे ही थोकडे स्मरण करने के सस्कार डालना आवश्यक है । इधर श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड द्वारा भी नवीन पाठ्यक्रम निर्धारण की माग जब परम श्रद्धेय आचार्य श्री जी म सा एव परम श्रद्धेय युवाचार्य श्री जी म सा के समक्ष रखी गयी तब आचार्य देव ने नवीन पाठ्यक्रम निर्धारण के लिए श्री युवाचार्य प्रवर को सकेत किया । सकेतानुसार श्रद्धेय युवाचार्य प्रवर ने उपस्थित सन्त-सती वर्ग के परामर्श से नवीन पाठ्यक्रम का निर्माण किया और उसमे अपने पूर्व चिन्तन का अनुसरण करते हुए थोकडो को भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया । अपनी विलक्षण प्रज्ञा से श्रद्धेय युवाचार्य श्री जी

म सा. ने विद्यार्थियों के परीक्षा स्तर को दृष्टि मे रखते हुए उनके अनुकूल थोकड़ो की नवीन सयोजना की ।

श्रद्धेय युवाचार्य प्रवर की इस सयोजना को विद्यार्थियो की सुविधा के लिए प्रकाशित करवाने का निर्णय श्री अ भा साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड ने लिया और वह जैन स्तोक मजूषा के रूप मे पाठको के समक्ष प्रस्तुत है ।

फाल्गुन शुक्ला तृतीया
वि० स० २०५२
सन् १९९६

पीरदान पारख
सयोजक

श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, बीकानेर

अर्थ सहयोगी

देशनोक निवासी श्री मोतीलालजी दुगड आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म सा. एव श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ बीकानेर के स्थापना काल से ही एकनिष्ठ सुश्रावक है। श्रीमद् जवाहराचार्य, श्री गणेशाचार्य, श्री नानेशाचार्य एव युवाचार्य श्री राममुनि के श्रद्धालु भक्तो मे श्री दुगडजी का परिवार अग्रणी है। शासननिष्ठ श्री मोतीलालजी दुगड के चार पुत्रो—श्री सुन्दरलालजी दुगड, श्री सोहनलालजी दुगड, श्री पूनमचन्द दुगड़ एव श्री कौशल कुमार दुगड़ मे श्री सुन्दरलालजी ज्येष्ठ पुत्र हैं तथा सघ एव समाज के कर्मठ कार्यकर्त्ताओ मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है।

श्री सुन्दरलालजी दुगड जैन समाज के उन युवा उद्योगपतियो मे प्रमुख हैं, जिन्होने विगत एक दशक मे अपने अथक परिश्रम, कौशल, प्रतिभा तथा उदारता से न केवल औद्योगिक जगत मे विशिष्ठ स्थान बनाया है अपितु अपनी धर्मनिष्ठा, सदाचारिता एव दु खकातरता से शिक्षा और सेवा के क्षेत्र मे भी अनुकरणीय आदर्श स्थापित किया है।

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ के पूर्व उपाध्यक्ष श्री सुन्दरलालजी दुगड अनेक सामाजिक, शैक्षणिक, धार्मिक तथा सेवा सस्थानो के सम्प्रति ट्रस्टी, अध्यक्ष, मंत्री आदि विभिन्न पदो पर कार्यरत हैं एव घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं। श्री दुगड ने भवन निर्माण का कार्यारम्भ कर व्यवसाय जगत मे प्रवेश किया एव आर डी. बिल्डर्स की स्थापना की, किन्तु अपनी दूरदर्शिता कार्यकुशलता त्वरित निर्णय क्षमता तथा प्रतिभा के बल पर आज दैनिक

बंगला अखबार सोनार बगला एवं जूट आदि मिलो का सचालन कर रहे हैं। आर डी. बिल्डर्स नामक इनकी कम्पनी आर. डी बी इण्डस्ट्रीज लि. मे परिवर्तित होकर औद्योगिक जगत मे पैर जमाकर इनके गतिशील चुम्बकीय व्यक्तित्व की कहानी कह रही है।

युवा उद्योग रत्न श्री सुन्दरलालजी दुगड़ समय की नब्ज पहचानने वाले प्रगतिशील विचारो के धत्ती हैं। 'दिया दूर नहीं जात' के पथ का अनुसरण करने वाले श्री दुगड ने अपनी जन्मभूमि देशनोक मे समता–शिक्षा–सेवा सस्थान की स्थापना मे प्रमुख भूमिका का निर्वहन किया है। कपासन(उदयपुर)मे आचार्य नानेश रूप रेखा प्राणी रक्षालय की स्थापना भी इनके अनुदान से हुई है।

हसमुख, मिलनसार, विनम्र श्री दुगड का व्यक्तित्व प्रदर्शन, विज्ञापन एव पाखड से सर्वथा दूर सरलता सादगी और उदारता से समन्वित कलकत्ता के जैन अजैन समाज मे अत्यन्त लोकप्रिय है। अनेक राजनेताओ से घनिष्ठ सम्बन्ध होने पर भी ये एक निरभिमानी निष्काम कर्मठ कार्यकर्त्ता के रूप मे जाने पहचाने जाते हैं, धर्म और सेवा का कलकत्ता मे ऐसा कोई सस्थान तथा सगठन नही है जो इनके उदार सहयोग एव सक्रिय व्यक्तित्व से लाभान्वित नही होता हो।

श्री दुगड जी के अर्थ सहयोग से प्रकाशित यह पुस्तक इनकी प्रशस्त एव प्रगाढ धर्म भावना का प्रतीक है। इस सहयोग हेतु हम इनके हृदय से आभारी हैं।

अनुक्रमणिका

प्रथम भाग

द्वितीय भाग

तृतीय भाग

चतुर्थ भाग

जैन स्तोक मंजूषा

भाग १

१. आत्मारम्भी परारम्भी का थोकड़ा

(भगवती सूत्र शतक पहले का उद्देशा पहला)

१—अहो भगवान् ! क्या जीव ❀आत्मारम्भी है या परारम्भी है या तदुभयारम्भी है या अनारम्भी है ? हे गौतम ! जीव के दो भेद है--ससार समापन्न यानी ससारी और अससार समापन्न यानी सिद्ध । सिद्ध भगवान् तो न आत्मारम्भी हैं, न परारम्भी हैं, न तदुभयारम्भी हैं किन्तु अनारम्भी है । ससारी जीव के दो भेद हैं—सयति और असयति । सयति के दो भेद हैं—प्रमादी और अप्रमादी । अप्रमादी सयति तो न आत्मारम्भी हैं, न परारम्भी हैं, न

❀ आरम्भ का अर्थ है ऐसा सावद्य कार्य करना जिससे किसी जीव को कष्ट पहुचता हो या उसके प्राणो का घात होता हो अर्थात् आश्रवद्वार मे प्रवृत्ति करना आरम्भ कहलाता है ।

तदुभयारम्भी है किन्तु अनारम्भी है। प्रमादी के दो भेद है—शुभयोगी और अशुभयोगी। शुभयोगी तो न आत्मारम्भी है, न परारम्भी है न तदुभयारम्भी है किंतु अनारम्भी है। अशुभयोगी आत्मारम्भी भी है, परारम्भी भी हैं, तदुभयारम्भी भी है किन्तु अनारम्भी नही है। अशुभयोगी की तरह असयति और २३ दण्डक कह देने चाहिए। मनुष्य समुच्चय जीव की तरह कह देना चाहिए। किंतु इतनी विशेषता है कि सिद्ध नही कहने चाहिए। सलेशी (लेश्यासहित) समुच्चय मनुष्य की तरह कहना। कृष्ण, नील, कापोत लेश्या वाले २२ दण्डक आत्मारम्भी है, परारम्भी है, तदुभयारम्भी है, किन्तु अनारम्भी नही है, यानी समुच्चय जीव की तरह कह देना नवर प्रमादी अप्रमादी (साधु) और सिद्ध नही कहना चाहिए। समुच्चय जीव

आत्मारभ के दो अर्थ है—आश्रव द्वार मे आत्मा को प्रवृत्त करना और आत्मा द्वारा स्वय आरम्भ करना। जो ऐसा करता है वह आत्मारभी कहलाता है। दूसरे ` आश्रव मे प्रवृत्त करना या दूसरे के द्वारा आरम्भ ka̲ना परारम्भ है, जो ऐसा करता है वह परारम्भी कहलाता है। आत्मारम्भ और परारम्भ दोनो करने वाला जीव उभयारम्भी कहलाता है। जो जीव आत्मारम्भ, परारम्भ और उभयारम्भ से रहित होता है वह अनारम्भी कहलाता है।

तेजोलेशी १८ दण्डक, पद्मलेशी शुक्ललेशी तीन-तीन दण्डक मनुष्य की तरह कह देना चाहिए❀ ।

❀

२. इह भविए णाणे पर भविए णाणे का थोकड़ा

(भगवती सूत्र शतक पहले का उद्देशा पहला)

१—अहो भगवान् ! क्या ज्ञान इहभविक (इस भव में) है या परभविक (पर भव मे) है या तदुभय भविक (दोनो–भवो मे) है ? हे गौतम ! ज्ञान इहभविक भी है, परभविक भी है और तदुभय भविक भी है ।

२—अहो भगवान् ! क्या दर्शन इहभविक है या परभविक है या तदुभय भविक है ? हे गौतम ! दर्शन इहभविक भी है, परभविक भी है और तदुभयभविक भी है ।

३—अहो भगवान् क्या चारित्र इहभविक है या परभविक है या तदुभयभविक है ? हे गौतम ! चारित्र इहभविक है किन्तु परभविक नही है, तदुभयभविक नही है । इसी तरह तप और सयम भी इहभविक है किन्तु परभविक और तदुभयभविक नही है ।

—❀—

(श्री भगवती सूत्र पर श्री जवाहिराचार्य के व्याख्यान भाग २ पृष्ठ ४८६)

❀कृष्ण, नील, कापोत, इन तीन भाव लेश्याओ मे साधुपना नही होता । यहा जो लेश्याए कही गई है वे द्रव्य लेश्याए समझनी चाहिए । (टीका)

३. संवुड़ा असंवुड़ा अणगार का थोकड़ा

(भगवती सूत्र शतक पहले का उद्देशा पहला)

१—अहो भगवान् ! क्या असंवुडा अणगार (जिसने आश्रवो को नही रोका है ऐसा साधु) सिद्ध होता है ? बोध (केवल ज्ञान) को प्राप्त करता है ? मुक्त होता है ? निर्वाण को प्राप्त होता है ? सब दु खो का अन्त करता है ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे (यह बात नहीं हो सकती)। अहो भगवान् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! आयुष्य कर्म को छोड कर बाकी ७ कर्म ढीले (शिथिल) हों तो गाढे (मजबूत) करता है, थोडे काल की स्थिति हो तो दीर्घ काल की स्थिति करता है, मद रस हो तो तीव्र रस करता है, थोडे प्रदेश वाले कर्मों को बहुत प्रदेश वाले करता है। आयुष्य कर्म कदाचित् बाधता है, कदाचित् नही बांधता। असाता वेदनीय कर्म बारबार बाधता है। अनन्त ससार मे परिभ्रमण करता है। इस कारण से असवृत्त अनगार सिद्ध नही होता यावत् सब दु खो का अन्त नही करता।

२—अहो भगवान् ! क्या सवुडा अनगार (जिसने आश्रवो को रोक दिया है ऐसा साधु) सिद्ध होता है यावत् सब दु खो का अत करता है ? हा, गौतम ! सवुडा अनगार सिद्ध होता है यावत् सब दुःखो का अ त करता है। अहो भगवान् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! सवुडा अनगार आयुष्य कर्म को छोड कर बाकी सात कर्मों को गाढे हो तो ढीला करता है, बहुत काल की स्थिति हो तो

थोडे काल की स्थिति करता है, तीव्र रस हो तो मद रस करता है, बहुत प्रदेश वाले कर्मों को थोडे प्रदेश वाले करता है। आयुष्य कर्म को नही बाधता। असाता वेदनीय कर्म बार-बार नही बाधता। अनादि अनत चतुर्गति रूप ससार मे परिभ्रमण नही करता। इसलिए सवुडा सवृत अनगार सिद्ध होता है यावत् सब दु खो का अत करता है।

△

४. एक सौ बोल का थोकड़ा

भगवती सूत्र शतक पहले का उद्देशा दूसरा)

१—अहो भगवान् ! क्या एक जीव अपने किये हुए दु-ख को भोगता है ? हे गौतम ! कोई जीव भोगता है और कोई जीव नही भोगता है। अहो भगवान् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! जिस जीव के कर्म उदय मे आया है वह भोगता है और जिसके उदय मे नही आया है वह नही भोगता है। इसी तरह जीव की अपेक्षा से २४ दण्डक कह देने चाहिए। समुच्चय एक जीव का १ अलावा—(आलापक-भेद) और २४ दण्डक के २४ अलावा। ये कुल २५ अलावा हुए।

२—अहो भगवान् ! क्या बहुत जीव अ ...किये हुए दु खो को भोगते हैं ? हे गौतम ! कोई ...
और कोई नही भोगते हैं। अहो भगवान् ! ...
कारण है ? हे गौतम ! जिन जीवो के कर्म उ...

है वे भोगते हैं और जिनके उदय मे नही आये हैं वे नहीं भोगते है । इसी तरह बहुत जीव की अपेक्षा से २४ दण्डक कह देने चाहिए । समुच्चय बहुत जीव आसरी १ अलावा और २४ दण्डक के २४ अलावा । ये कुल २५ अलावा हुए ।

३—अहो भगवान् ! क्या एक जीव अपने बाधे हुए आयुष्य कर्म को भोगता है ? हे गौतम ! कोई भोगता है और कोई नही भोगता है । अहो भगवान् ! इसका क्या कारण है ? है गौतम ! जिस जीव के आयुष्य कर्म उदय मे आया है वह भोगता है और जिस जीव के आयुष्य कर्म उदय मे नही आया है वह नही भोगता है । इसी तरह एक जीव को अपेक्षा से २४ दण्डक कह देने चाहिए। १+२४=२५ अलावा हुए।

४—अहो भगवान् ! क्या बहुत जीव अपने बाधे हुए आयुष्य कर्म को भोगते है ? हे गौतम ! कोई भोगते है और कोई नही भोगते है । अहो भगवान् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! जिन जीवो के आयुष्य कर्म उदय आया है वे भोगते है और जिन जीवो के उदय मे नही आया है वे नही भोगते है । इसी तरह बहुत जीव की अपेक्षा से २४ दण्डक कह देने चाहिए । १+२४=२५ अलावा हुए । २५+२५+२५+२५=१०० कुल १०० अलावा हुए ।

*

५. संसार संचिट्ठणकाल का थोकड़ा

(भगवती सूत्र शतक पहले का उद्देशा दूसरा)

चउ सचिट्ठणा होइ, कालोसुण्णासुण्ण मीसो ।
तिरियाण सुण्णवज्जो, सेसे तिण्णि अप्पाबहू ॥

१—अहो भगवान् ! *ससार सचिट्ठण काल(ससार सस्थान काल) कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! चार प्रकार का है- १ नारकी ससार सचिट्ठण काल, २ तिर्यञ्च ससार सचिट्ठण काल, ३ मनुष्य ससार सचिट्ठणकाल, ४ देव ससार सचिट्ठण काल ।

२—अहो भगवान् ! नारकी ससार सचिट्ठणकाल, कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! तीन प्रकार का -१ सुण्णकाल (शून्य काल), २ असुण्ण काल (अशून्य काल), ३ मिश्र काल । इसी तरह मनुष्य और देवता मे भी ससार सचिट्ठण काल तीन तीन पाते है । तिर्यञ्च मे ससार सचिट्ठण काल दो पाते है-असुण्णकाल और मिश्रकाल ।

---

*"यह जीव अनीत (भूत) काल मे किस गति मे रहा था" यह बतलाना "ससार सचिट्टणकाल" कहलाता है ।

१ एक नारकी का नेरीया नारकी से निकल कर दूसरी गति मे उत्पन्न हुआ, वहा से फिर पीछा नारकी मे उत्पन्न हुआ, वह जितने नेरीयो को सातो नारकियो मे

३—अहो भगवान् ! नारकी मे कौनसा काल थोडा (अल्प) है और कौनसा काल बहुत है ? हे गौतम ! सब से थोडा असुण्ण काल, उससे मिश्रकाल अनन्तगुणा, उससे सुण्णकाल अनन्तगुणा । इसी तरह मनुष्य देवता की अल्प बहुत्व कह देनी चाहिए । तिर्यञ्च मे सबसे थोडा असुण्ण-काल, उससे मिश्रकाल अनन्तगुणा है ।

४—अहो भगवान् ! चार प्रकार के ससार सचि-ट्ठणकाल मे कौन सा थोडा और कौन सा बहुत है । हे

छोडकर गया था उनमे से एक भी वहा न मिले अर्थात् नरको से निकल कर दूसरी गतियो मे चले गये हो उसे सुण्णकाल (शून्यकाल) कहते हैं ।

२ एक नारकी का नेरीया नरक से निकल कर दूसरी गति मे उत्पन्न हुआ, फिर वहा से वापिस नरक मे उत्पन्न हुआ, वह जितने नेरीयो को छोडकर गया था उतने सब वहा मिले अर्थात् वहा से एक भी मरा न हो और कोई भी नया आकर उत्पन्न न हुआ हो उसे असुण्णकाल (अशून्यकाल) कहते हैं ।

३ एक नारकी का नेरीया नरक से निकल कर दूसरी गति मे उत्पन्न हुआ, वहा से वापिस पीछा नरक मे उत्पन्न हुआ, वह जितने नेरीयो को छोडकर गया था उनमे से कुछ निकल कर दूसरी गति मे चले गये हो और कुछ नये उत्पन्न हो गये हो, यहा तक कि पहले नेरीयो मे से एक भी नेरीया वहा मिले उसे मिश्र काल कहते हैं ।

गौतम ! सबसे थोडा मनुष्य ससार सचिट्ठण काल, उससे नारकी ससार सचिट्ठणकाल, असख्यातगुणा, उससे देवता ससार सचिट्ठणकाल असख्यातगुणा, उससे तिर्यंच ससार सचिट्ठण काल अनन्तगुणा है ।

❀

६. असंजति (असंयत) भव्य द्रव्य देव का थोकड़ा

(भगवती सूत्र शतक पहिले का उद्देशा दूसरा)

१—अहो भगवान् ! ❀असजति (असयत) भव्य द्रव्य देव मर कर कहा उत्पन्न होता है ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति मे, उत्कृष्ट ऊपर के (नववें) ग्रैवेयक मे उत्पन्न होता है ।

२—अहो भगवान् ! अविराधक साधुजी मर कर कहा उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य पहले देवलोक मे उत्कृष्ट सर्वार्थसिद्ध मे उत्पन्न होते हैं ।

३—अहो भगवान् ! विराधक साधुजी मर कर

❀ऊपर से साधु की क्रिया करने वाले किन्तु भाव से चारित्र के परिणामो से रहित मिथ्यादृष्टि जीव असजति (असयत) भव्य द्रव्यदेव कहे गये हैं ।

कहा उत्पन्न होते है ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति मे, उत्कृष्ट पहले देवलोक मे उत्पन्न होते हैं ।

४ अहो भगवान् ! अविराधक श्रावक मर कर कहा उत्पन्न होते है ? हे गौतम ! जघन्य पहले देवलोक मे, उत्कृष्ट बारहवे देवलोक में उत्पन्न होते है ।

५—अहो भगवान् ! विराधक श्रावक मर कर कहा उत्पन्न होते है ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति मे, उत्कृष्ट ज्योतिषी मे उत्पन्न होते है ।

६ - अहो भगवान् ! असन्नी (बिना मनवाले जीव अकाम निर्जरा करने वाले) तिर्यंच मर कर कहा उत्पन्न होते है ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति मे, उत्कृष्ट वाण-व्यन्तर मे उत्पन्न होते हैं ।

७ - अहो भगवान् ! कन्द मूल भक्षण करने वाले तापस मर कर कहा उत्पन्न होते है ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति मे, उत्कृष्ट ज्योतिषी मे उत्पन्न होते हैं ।

८—अहो भगवान् ! कन्दर्पिया-कान्दर्पिक (हसी मजाक करने वाले) साधु मर कर कहा उत्पन्न होते है ? हे गौतम ! जघन्य भवनभति मे, उत्कृष्ट पहले देवलोक मे उत्पन्न होते हैं ।

९—अहो भगवान् ! चरक, परिव्राजक, अम्बड़जी के मत के सन्यासी मर कर कहा उत्पन्न होते है ? हे गौतम ! जघण्य भवनपति मे, उत्कृष्ट पाचवे देवलोक मे उत्पन्न होते है ।

१०—किल्विषी भावना वाले तथा आचार्य उपाध्याय आदि के अवर्णवाद बोलने वाले साधु मर कर कहा उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति मे, उत्कृष्ट छठे देवलोक मे उत्पन्न होते हैं ।

११—अहो भगवान् ! देशविरति सम्यग्दृष्टि सन्नी तिर्यंच मर कर कहा उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति मे, उत्कृष्ट आठवें देवलोक मे उत्पन्न होते है ।

१२—अहो भगवान् ! आजीविय–आजीविक (गोशालक) मत के मानने वाले साधु मर कर कहा उत्पन्न होते है ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति मे, उत्कृष्ट बारहवें देवलोक मे उत्पन्न होते हैं ।

१३—अहो भगवान् ! आभियोगिक (मत्र जत्रादि करने वाले साधु) मर कर कहा उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति मे, उत्कृष्ट बारहवें देवलोक मे उत्पन्न होते हैं ।

१४—अहो भगवान् ! सलिंगी दसण वावण्णगा (साधु के लिंग को धारण करने वाले समकित से भ्रष्ट निन्हव आदि) मर कर कहा उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जघन्य भवनपति मे, उत्कृष्ट ऊपर के (नववें) ग्रैवेयक मे उत्पन्न होते हैं ।

७. *असंज्ञी आयुष्य का थोकड़ा

(भगवती सूत्र शतक पहले का उद्देशा दूसरा)

१—अहो भगवान् ! असज्ञी आयुष्य कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! चार प्रकार का है—नारकी असज्ञी आयुष्य, तिर्यंच असज्ञी आयुष्य, मनुष्य असज्ञी आयुष्य, देव असज्ञी आयुष्य ।

२—अहो भगवान् ! असज्ञी आयुष्य की स्थिति कितनी है ? हे गौतम ! नारकी देवता की असज्ञी आयुष्य की स्थिति जघन्य १०००० वर्ष की, उत्कृष्ट पल्योपम के असख्यातवें भाग की । मनुष्य, तिर्यंच के असज्ञी आयुष्य की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट पल्योपम के असख्यातवे भाग की है ।

३—अहो भगवान् ! इन चार प्रकार के असज्ञी आयुष्य मे कौन थोडी और कौन बहुत है ? हे गौतम ! सब से थोड़ी देवता असज्ञी आयुष्य, २ उससे मनुष्य आयुष्य असख्यात गुणा, ३ उससे तिर्यंच असज्ञी आयुष्य असख्यात गुणा, ४ उससे नारकी असंज्ञी आयुष्य असंख्यात गुणा ।

---

*असज्ञी-असन्नी आयुष्य-जो जीव असज्ञी अवस्था मे अगले भव का आयुष्य बाधे उसको यहा पर 'असज्ञी-असन्नी-आयुष्य' कहा गया है ।

८. लोकस्थिति का थोकड़ा

(भगवती सूत्र शतक पहले का उद्देशा छठा)

१—अहो भगवान् ! लोक की स्थिति कितने प्रकार की है ? हे गौतम ! आठ प्रकार की है - आकाश के आधार तनुवात, तनुवात के आधार घनवात, (२) घनवात के आधार घनोदधि, (३) घनोदधि के आधार पृथ्वी, (४) पृथ्वी के आधार त्रस स्थावर जीव, (५) अजीव के आधार जीव, (६) जीव कर्म के आधार, (७) अजीव जीवो द्वारा सगृहीत (बद्ध) हैं और (८) जीव अजीवो (कर्मों) द्वारा सगृहीत (बद्ध) हैं ।

लोक की स्थिति को समझाने के लिए मशक का दृष्टान्त दिया जाता है जैसे चमडे की मशक को हवा से फुलाकर उसका मुह बन्द कर दिया जाय । इसके बाद मशक के मध्य भाग मे एक डोरा बाध कर ऊपर को मुह खोल दिया जाय और उसकी हवा निकाल दी जाय । ऊपर के खाली भाग मे पानी भर कर वापिस मुह बन्द कर दिया जाय और बीच मे बंधा हुआ डोरा खोल दिया जाय तो हे गौतम ! क्या वह पानी हवा के आधार से ऊपर के भाग मे रहता है ? हा, भगवान् ! रहता है । हे गौतम ! इसी तरह लोक की स्थिति है यावत् जीव कर्मों द्वारा सगृहीत है ।

दूसरा दृष्टान्त—जैसे हवा से फूली हुई मशक को कमर पर बाधकर कोई पुरुष अथाह पानी मे प्रवेश करे

तो हे गौतम ! क्या वह पानी की सतह (ऊपर के भाग) पर रहता है ? हा भगवान् ! वह पानी की सतह पर रहता है, डूबता नही । हे गौतम ! इसी तरह लोक की स्थिति है । आकाश और वायु आदि आधराधेय भाव से रहे हुए हैं ।

३—अहो भगवान् ! क्या जीव और पुद्गल परस्पर संबद्ध यावत् ❀प्रतिबद्ध है ? हा, गौतम ! जीव श्रौर पुद्गल परस्पर सम्बद्ध यावत् प्रतिबद्ध हैं । जैसे—कोई पुरुष किसी जल से परिपूर्ण तालाब मे छिद्रो वाली एक नाव डाले तो उन छिद्रो से पानी श्राते आते वह नाव पानी मे डूब जाती है । फिर जिस तरह नाव और तालाब का पानी एकमेक होकर रहता है, उसी तरह जीव श्रौर पुद्गल परस्पर एकमेक होकर सबद्ध यावत् प्रतिबद्ध हैं ।

४—अहो भगवान् ! क्या सूक्ष्म अप्काय सदा काल गिरती है (वरसती है) ? हा, गौतम ! सूक्ष्म अप्काय सदा काल गिरती है ।

५—अहो भगवान् ! सूक्ष्म अप्काय कहा गिरती

❀ इसका पाठ यह है—

अण्णमण्णबद्धा, अण्णमण्णपुट्ठा, श्रण्णमण्ण ओगाढा अण्णमण्णसिणेहपडिबद्धा, अण्णमण्ण घडत्ताए चिट्ठ ति ।

अर्थ—परस्परबद्ध, परस्परस्पृष्ट, परस्परग्रवगाढ, परस्पर स्नेह प्रतिवद्ध परस्पर घट्ठ (परस्पर समुदाय रूप) रहते हैं ।

है ? हे गौतम ! सूक्ष्म अप्काय ऊपर नीचे तिरछी सब गिरती है ।

६—अहो भगवान् ! क्या सूक्ष्म अप्काय बादर अप्पकाय की तरह परस्पर समायुक्त (इकट्ठी) होकर बहुत काल तक ठहर सकती है ? हे गौतम ! 'णो इणट्ठे समट्ठे' सूक्ष्म अप्काय समायुक्त होकर बहुत काल तक नही ठहर सकती है । किन्तु वह जल्दी ही नष्ट हो जाती है ।

△

९. सोलह (१६) दण्डक का थोकड़ा

(भगवती सूत्र शतक पहले का उद्देशा सातवा)

१ - अहो भगवान् ! नरक मे उत्पन्न होता हुआ नैरयिक क्या देश से देश उत्पन्न होता है (जीव अपने एक अवयव से नैरयिक का एक अवयव उत्पन्न होता है ?) या देश से सर्व उत्पन्न होता है ? या सर्व से देश उत्पन्न होता है ? या सर्व से सर्व उत्पन्न होता है ? हे गौतम ! देश से देश उत्पन्न नही होता, देश से सर्व उत्पन्न नही होता, सर्व से देश उत्पन्न नही होता किन्तु सर्व से सर्व उत्पन्न होता है । इसी तरह वैमानिक तक २४ ही दण्डक मे कह देना ।

२—अहो भगवान् ! नरक मे उत्पन्न होता हुआ नैरयिक क्या देश से देश का आहार लेता है ? (आत्मा

के एक भाग से आहार का एक भाग ग्रहण करता है ?) या देश से सर्व आहार लेता है ? या सर्व से देश आहार लेता है ? या सर्व से सर्व आहार लेता है ? हे गौतम ! देश से देश आहार नही लेता, देश से सर्व आहार नही लेता, किन्तु सर्व से देश आहार लेता है अथवा सर्व से सर्व आहार लेता है । इसी तरह २४ दण्डक मे कह देना ।

३-अहो भगवान् ! नरक से उद्वर्तता (निकलता) हुआ नैरियक क्या देश से देश उद्ववर्तता है ? इत्यादि प्रश्न । हे गौतम ! जिस तरह उत्पन्न होने का कहा उसी तरह उद्वर्तन (नरक से निकलना) का भी कह देना । इसी तरह २४ दण्डक मे कह देना ।

४—अहो भगवान् ! नरक से उद्वर्तता हुआ नैरयिक क्या देश से देश आहार लेता है ? इत्यादि प्रश्न । हे गौतम ! जिस तरह उत्पन्न होने के समय आहार लेने का कहा उसी तरह यहा भी कह देना अर्थात् सर्व से देश आहार लेता है अथवा सर्व से सर्व आहार लेता है ।

५—अहो भगवान् ! नरक मे उत्पन्न हुआ नैरियक क्या देश से देश उत्पन्न हुआ है ? इत्यादि प्रश्न । हे गौतम ! यह भी पहले की तरह कह देना अर्थात् सर्व से से सर्व उत्पन्न हुआ है । ६—सर्व से देश आहार लेता है अथवा सर्व से सर्व आहार लेता है ।

७-८—जिस तरह 'उत्पन्न हुआ' का कहा उसी तरह 'उद्वर्तन हुआ' भी कह देना ।

(१) उत्पन्न होता हुआ, (२) उत्पन्न होता हुआ आहार लेता है, (३) उद्वर्तता हुआ, (४) उद्वर्तता हुआ आहार लेता है, (५) उत्पन्न हुआ, (६) उत्पन्न हुआ आहार लेता है, (७) उद्वर्ता (निकला) हुआ, (८) उद्वर्ता हुआ आहार लेता है। ये ८ दण्डक (भागा-आलापक) हुए।

९—अहो भगवान्! नरक मे उत्पन्न होता नैरयिक क्या आधे भाग से आधा भाग (उद्धेण अद्धं) उत्पन्न होता है? या आधे भाग से सर्व भाग (अद्धेण सव्वे) उत्पन्न होता है? इत्यादि प्रश्न। हे गौतम! जिस तरह पहले ८ भागे कहे हैं उसी तरह यहा 'देश के स्थान मे उद्धेण अद्धे (आधे भाग से आधा भाग)' के भी ८ भागे कह देना।

ये सब १६ भागे (आलापक) हुए। २४ दण्डक के साथ गिनने से ३८४ भागे हुए।

---

१०. अगुरु लघु का थोकड़ा

(भगवती सूत्र शतक पहले का उद्देशा नववा)

१—अहो भगवान्! जीव हल्का कैसे होता है और भारी कैसे होता है? हे गौतम! अठारह पापो से निवर्तने से जीव हल्का होता है और अठारह पापो मे प्रवर्तने से जीव भारी होता है।

२—अहो भगवान् ! जीव कैसे संसार घटाता है और कैसे संसार बढाता है ? हे गौतम ! अठारह पापो से निवर्तने से जीव ससार घटाता है और अठारह पापो में प्रवर्तने से जीव ससार बढ़ाता है ।

३—अहो भगवान् ! किस कारण से जीव ससार को ह्रस्व करता है (ससार स्थिति घटाता है) और किस कारण से जीव संसार को दीर्घ करता है (ससार स्थिति बढाता है ?)हे गौतम ! अठारह पापो से निवर्तने से जीव संसार को ह्रस्व करता है और अठारह पापो में प्रवर्तने से जीव संसार को दीर्घ करता है ।

४—अहो भगवान् ! किस कारण से जीव ससार मे परिभ्रमण करता है और किस कारण से जीव ससार सागर को तिरता है ? हे गौतम ! अठारह पापो मे प्रवर्तने से जीव ससार परिभ्रमण करता है और अठारह पापो से निवर्तने से जीव ससार सागर तिरता है ।

११. अपच्चक्खाण और आधा कर्मादि का थोकड़ा

(भगवती सूत्र पहले शतक का उद्देशा नवमा)

१—अहो भगवान् ! एक सेठ, एक दरिद्री, एक कृपण (कजूस) और एक क्षत्रिय (राजा) क्या ये सब एक

साथ अपच्चक्खाण की क्रिया करते हैं ? हां, गौतम ! करते हैं । अहो भगवान् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! अविरति के कारण वे सब अपच्चक्खाण की क्रिया करते हैं ।

२—अहो भगवान् ! आधाकर्मी आहारादि (आहार, वस्त्र, पात्र, मकान) को सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ क्या बाधता है, क्या करता है, क्या चय करता है, क्या उपचय करता है ? हे गौतम ! आधाकर्मी आहारादि का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ आयुष्य कर्म को छोडकर शिथिल बन्धन मे बन्धी हुई सात कर्म प्रकृतियो को मजबूत बन्धन मे बाधता है यावत् बारम्बार ससार परिभ्रमण करता है । अहो भगवान् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! आधाकर्मी आहारादि का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ अपने धर्म का उल्लघन कर जाता है । वह पृथ्वीकाय के जीवो से लेकर त्रसकाय तक के जीवो की घात की परवाह नही करता और जिन जीवो के शरीर का वह भक्षण करता है, उन जीवो पर वह अनुकम्पा नही करता ।

३—अहो भगवान् ! प्रासुक एषणीय आहारादि का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ क्या बाधता है यावत् क्या उपचय करता है ? हे गौतम ! आयुष्य कर्म को छोडकर मजबूत बन्धन मे बन्धी हुई सात कर्म प्रकृतियो को शिथिल बन्धन वाली करता है, आदि सारा वर्णन सवुडा (सवृत) अनगार की तरह कह देना चाहिये । विशेषता यह है कि कदाचित आयुष्य कर्म बाधता है और

कदाचित् नहीं बांधता । इस प्रकार अन्त में संसार सागर को उल्लंघन कर जाता है । अहो भगवान् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! प्रासुक एषणीय आहारादि का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ अपने धर्म का उल्लघन नही करता । वह पृथ्वीकाय से लेकर त्रसकाय तक के जीवो की रक्षा करता है । उन जीवो की अनुकम्पा करता है । इस कारण वह संसार सागर से तिर जाता है ।

१२. सवणे णाणे का थोकड़ा

(भगवती सूत्र शतक दूसरे का उद्देशा पांचवां)

सवणे णाणे विण्णाणे, पच्चक्खाणे य संजमे ।
अण्णहये तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धी ।।

१—अहो भगवान् ! तथारूप के श्रमण माहण की पासना करने वाले पुरुष को उसकी पर्युपासना (सेवा) क्या फल मिलता है ? हे गौतम ! श्रवण फल मिलता अर्थात् सत्शास्त्रो का सुनना मिलता है ।

२—अहो भगवान् ! श्रवण का क्या फल है ? हे गौतम ! श्रवण का फल ज्ञान (जाणपणा) है ।

३—अहो भगवान् ! ज्ञान का क्या फल है ? हे गौतम ! ज्ञान का फल विज्ञान (विवेचन पूर्वक ज्ञान)है ।

४—अहो भगवान् ! विज्ञान का क्या फल है ? हे गौतम ! विज्ञान फल पच्चक्खाण है ।

५—अहो भगवान् ! पच्चक्खाण का क्या फल है ? हे गौतम ! पच्चक्खाण का फल सयम है ।

६—अहो भगवान् ! सयम का क्या फल है ? हे गौतम ! सयम का फल अनाश्रव (आश्रव रहित होना) है ।

७—अहो भगवान् ! अनाश्रव का क्या फल है ? हे गौतम ! अनाश्रव का फल तप है ।

८—अहो भगवान् ! तप का क्या फल है ? हे गौतम ! तप का फल वोदाण (कर्मो का नाश) है ।

९—अहो भगवान् ! वोदाण (कर्म नाश) का क्या फल है ? हे गौतम ! वोदाण का फल अक्रिया (निष्क्रियता-क्रिया रहित होना) है ।

१०—अहो भगवान् ! अक्रिया का क्या फल है ? हे गौतम ! अक्रिया का फल सिद्धी है ।

१३. श्री पन्नवणा सूत्र के थोकड़ों का प्रथम भाग

आर्य का थोकडा (पन्नवणा सूत्र प्रथम पद)

हे भगवन् ! आर्य के कितने भेद हैं ?

हे गौतम ! आर्य के दो भेद-ऋद्धि प्राप्त (इड्ढिपत्ता) और अऋद्धि प्राप्त (अणिड्ढिपत्ता) ।

ऋद्धि प्राप्त आर्य के छह भेद–तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, चारण (जघाचारण, विद्याचारण) और विद्याधर ।

अऋद्धि प्राप्त आर्य के नौ भेद–१ क्षेत्र आर्य, २ जाति आर्य, ३ कुल आर्य, ४ कर्म आर्य, ५ शिल्प आर्य, ६ भाषा आर्य, ७ ज्ञान आर्य, ८ दर्शन आर्य, ९ चारित्र आर्य ।

क्षेत्र आर्य के भेद—भरत क्षेत्र मे बत्तीस हजार देश हैं इनमे से साढे पच्चीस आर्य देश हैं । शेष ३१९७४॥ देश अनार्य है । इन साढे पच्चीस आर्य देशो मे रहने वाले क्षेत्रार्य है । आर्य देश और उनकी राजधानी के नाम इस प्रकार है —१ मगध देश-राजगृही नगरी २ अ गदेश-चम्पा-नगरी ३ वग देश-ताम्रलिप्ती नगरी ४ कलिग देश-कचन-पुर नगर ५ काशी देश-वाराणसी नगरी ६ कौशल देश-साकेतपुर नगर ७ कुरुदेश-गजपुर नगर ८ कुशावर्त देश-

सौरिकपुर नगर ६ पंचाल देश–कपिलपुर नगर १० जगल देश-अहिच्छत्रा नगरी ११ सोरठ देश-द्वारका नगरी १२ विदेह देश-मिथिला नगरी १३△वत्स देश-कोशाम्बीनगरी १४ शाडिल्य देश-नदीपुर नगर १५ मलयदेश भद्दिलपुर नगर १६ वत्स देश-विराटपुर नगर १७ वरण देश-अच्छा–पुरीनगरी १८ दशार्ण देश-मृत्ति कावतीनगरी १९ चेदि देश-शौक्तिकावती नगरी २० सिन्धु सौवीर देश-वीतभय नगर २१ शूरसेन देश-मथुरा नगरी २२ भग देश-अपापापुरी नगरी २३ पुरिवर्त देश-मासानगरी २४ कुणाल देश-श्राव-स्तीनगरी २५ लाटदेश-कोटिवर्षनगर २५½ ●आधा केकय देश-श्वेताम्बिकानगरी । इन आर्य देशो मे तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि का जन्म होता है ।

△ थोकडो के जानकार श्रावक (१३) कच्छदेश-कौशाम्बी नगरी कहते है । किन्तु शास्त्र के मूल पाठ मे (१३) वत्स देश है अत शास्त्रानुसार यहा 'वत्सदेश' रखा गया है ।

● थोकड़े मे आर्य देशो के गावो की सख्या भी कहते है जो इस प्रकार है—१ मगध देश—१,६६,००,००० गाव २ अग देश—५००,००० गाव ३ बग देश—१८,००,००० गाव ४ कलिग देश—२०,००,००० गाव ५ काशी देश—१,९०,००० गाव ६ कौशल देश—९९,००० गाव ७ कुरु देश—८,२३,४२५ गाव ८ कुशावर्त देश—१,४३,००० गाव ९ पचाल देश—३,६३००० गाव १० जगल देश—१,४५,००० गाव ११ सोरठ देश—६,८०,५२६

जाति आर्य के छह भेद—१ अम्बष्ठ, २ कलिंद, ३ विदेह, ४ वेदग, ५ हरित, ६ चुंचुण ।

कुल आर्य के छह भेद—१ उग्रकुल, २ भोग कुल, ३ राजन्य कुल, ४ इक्ष्वाकु कुल, ५ ज्ञात कुल, ६ कौरव कुल ।

कर्म आर्य अनेक प्रकार के हैं जैसे—कपडे का व्यापार, सूत का व्यापार, कपास का व्यापार, किराणे का व्यापार, मिट्टी के बर्तनो का व्यापार, सोने चादी जवाहरात का व्यापार आदि ।

शिल्प आर्य के अनेक भेद है—दर्जी, जुलाहा, ठठारा, चित्रकार, लेखक आदि विवध शिल्प करने वाले ।

गाव १२ विदेह देश—८,००० गाव १३ वत्स देश—(कौशाम्बी नगरी) २८,००० गाव १४ शाडिल्य देश—२१,००० गाव १५ मलय देश—७०,००० गाव १६ वत्स देश—२,८८,००० गाव १७ वरण देश—२४,००० गाव । १८ दशार्ण देश—१८,००० गाव १९ चेदि देश—४२,००० गाव २० सिन्धु सौवीर देश—६,८०,५०० गाव २१ शूरसेन देश—८,००० गाव २२ भंग देश—३६,००० गाव २३ पुरिवर्त देश—५२,४५० गाव २४ कुणाल देश—६३००० गाव २५ लाट देश—७,१३,००० गांव २५-१/२ आधा केकय देश—१,२९,००० गांव । केकय देश मे कुल २,५८,००० गाव है । १,२९,००० गाव अनार्य हैं और १,२९,००० गाव आर्य हैं, इनमे ७,००० गाव खालसे हैं ।

भाषा आर्य—जो अर्धमागधी भाषा मे बोलते हैं और ब्राह्मी लिपि का प्रयोग करते हैं वे भाषा आर्य हैं।

ज्ञान आर्य के ५ भेद—१ मति ज्ञान आर्य, २ श्रुत ज्ञान आर्य, ३ अवधि ज्ञान आर्य, ४ मन पर्यय ज्ञान आर्य, ५ केवल ज्ञान आर्य।

दर्शन आर्य के दो भेद–सराग दर्शन आर्य और वीतराग दर्शन आर्य।

सराग दर्शन आर्य के दस भेद—

१ निसर्ग रुचि–बिना किसी उपदेश के स्वयमेव, जातिस्मरण आदि ज्ञान से, जिन भाषित जीवादि तत्त्वो पर 'ये इसी प्रकार है अन्यथा नही हैं' इस प्रकार श्रद्धा करना।

२ उपदेश रुचि—छद्मस्थ अथवा जिन भगवान् का उपदेश सुनकर जिन भाषित तत्त्वो पर श्रद्धा करना।

३ आज्ञा रुचि—जिन प्रवचन पर केवल जिज्ञासा होने से ही श्रद्धा करना। जिनाज्ञा ही मेरे लिये तत्त्वरूप है न कि तर्क–इस प्रकार आज्ञा रुचि वाला जिनाज्ञा को ही प्रधानता देता है और जिनाज्ञा ही उसकी श्रद्धा का आधार है।

४ सूत्र रुचि—आचाराग आदि अग प्रविष्ट सूत्र और आवश्यक दशवैकालिक आदि अग बाह्य सूत्र का अध्ययन करते हुए सम्यक्त्व प्राप्त करना।

५ बीज रुचि—पानी मे तेल बिन्दु की तरह

शम विशेष से एक पद के अध्ययन से अनेक पदो का ज्ञान प्राप्त कर उन पर श्रद्धा करना ।

६ अधिगम रुचि—श्रुत ज्ञान यानी अग उपाग तथा प्रकीर्णक शास्त्रो का अर्थ सहित्त अध्ययन कर श्रद्धा करना ।

७ विस्तार रुचि—प्रमाण और नयो से द्रव्यो की सभी पर्यायो को जानकर श्रद्धा प्राप्त करना ।

८ क्रिया रुचि—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, विनय, समिति गुप्ति सम्बन्धी क्रियाओ का आचरण करते हुए सम्यक्त्व प्राप्त करना ।

९ सक्षेप रुचि—जिसे अन्य दर्शनो का आग्रह नही है और जैनागमो का भी जो जानकार नही है ऐसे व्यक्ति की जिनोक्त तत्त्वो मे सामान्य रूप से श्रद्धा होना ।

१० धर्म रुचि—जिनोक्त धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों पर और श्रुत तथा चारित्र धर्म पर श्रद्धा होना ।

सम्यक्त्व के आठ आचार- (१) नि शकित-जिन प्रवचनो मे शका न रखना । (२) निष्काक्षित-परदर्शन की आकाक्षा-इच्छा न करना । (३) निर्विचिकित्सा-धर्म क्रिया के फल मे सन्देह न रखना । (४) अमूढ दृष्टि—बाल तपस्वी के विद्या और तप के चमत्कार से मोहित होकर श्रद्धा से विचलित न होना ।(६)उपबृंहण-स्वधर्मी के सद्‌गुणो की प्रशंसा कर उनकी वृद्धि करना । (६) स्थरी-करण-धर्म से डिगते हुए को उपदेशादि द्वारा धर्म मे स्थिर

करना। (७) वात्सल्य-स्वधर्मी के प्रति वत्सल भाव रख-कर उनका उपकार करना। (८) प्रभावना-धर्म कथा आदि से जिनशासन का प्रभाव प्रसिद्धि बढ़ाना।

वीतराग दर्शन आर्य के दो भेद—(१) उपशात कषाय वीतराग दर्शन आर्य (२) क्षीण कषाय वीतराग दर्शन आर्य। क्षीण कषाय वीतराग दर्शन आर्य के दो भेद-१ छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग दर्शन आर्य २ केवली क्षीण कषाय वीतराग दर्शन आर्य (१) छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग दर्शन आर्य के दो भेद - १ स्वयबुद्ध छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग दर्शन आर्य २ बुद्ध बोधित छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतराग दर्शन आर्य। (२) केवली क्षीण कषाय वीतराग दर्शन आर्य के दो भेद—१ सयोगी केवली क्षीण कषाय वीतराग दर्शन आर्य २ अयोगी केवली क्षीण कषाय वीतराग दर्शन आर्य। इनमे प्रत्येक के प्रथम समय और अप्रथम समय के अथवा चरम समय और अचरम समय के भेद से दो दो भेद होते हैं।

चारित्र आर्य के पाच भेद—१ सामायिक चारित्र आर्य २ छेदोपस्थानीय चारित्र आर्य, ३ परिहार विशुद्ध चारित्र आर्य ४ सूक्ष्मसम्पराय चारित्र आर्य ५ यथाख्यात चारित्र आर्य।

△

१४. उपपात समुद्घात तथा स्वस्थान का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र दूसरा पद)

(१) पाच सूक्ष्म स्थावर के अपर्याप्त और पर्याप्त△ का उपपात, समुद्घात और स्वस्थान सम्पूर्ण लोक मे है। (२) अपर्याप्त बादर तेजस्काय के सिवाय शेष चार बादर स्थावर के अपर्याप्त का उपपात और समुद्घात सारे लोक मे है और स्वस्थान लोक के असख्यातवे भाग मे है, किंतु अपर्याप्त बादर वायुकाय का स्वस्थान लोक के बहुत से असख्यातवें भागो मे है।

(३) अपर्याप्त बादर तेजस्काय का उपपात दोनो❀

△दूसरे स्थान से आकर उत्पन्न होना उपपात है। समुद्घात का आशय मारणान्तिक समुद्घात मे है। जीव के रहने का स्थान स्वस्थान है।

❀ दो ऊर्ध्व कपाट—पैंतालीस लाख योजन प्रमाण वाले मनुष्य लोक के दोनो ओर पूर्व पश्चिम और उत्तर दक्षिण मे पैंतालीस लाख योजन की मोटाई वाले दो ऊर्ध्व कपाट निकले हुए हैं। ये दोनों कपाट चारो दिशा मे स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त गये हुए हैं और केवली समुद्घात के कपाट की तरह ऊपर और नीचे लोकान्त को स्पर्श करते है। आशय यह है कि कपाटाकार स्थित उपरोक्त परिमाण वाले आकाश क्षेत्र से अपर्याप्त बादर तेउकाय के जीव आकर उत्पन्न होते हैं।

ऊर्ध्वं कपाटो मे तथा तिर्यक् लोक के तट्ट यानी थाले मे है। समुद्घात सारे लोक मे है तथा स्वस्थान लोक के असख्यातवें भाग मे यानी मनुष्य लोक मे है।

(४) पर्याप्त बादर तेजस्काय का उपपात और समुद्घात लोक के असंख्यातवें भाग मे है और स्वस्थान मनुष्यलोक मे है।

(५) पर्याप्त बादर वायुकाय का उपपात, समुद्घात और स्वस्थान लोक के बहुत से असख्यातवें भागो मे है।

(६) पर्याप्त बादर वनस्पतिकाय का उपपात समुद्घातसारे लोक मे है और स्वस्थान लोक के असख्यातवे भाग मे है।

(७) पर्याप्त बादर पृथ्वीकाय, पर्याप्त बादर अप्काय तथा शेष १६ दडको के पर्याप्त अपर्याप्त जीबो का उपपात समुद्घात और स्वस्थान लोक के असख्यातवें भाग मे है। इतना विशेष जानना कि मनुष्य केवली समुद्घात की अपेक्षा सारे लोक मे है।

तिर्यक् लोक के तट्ट यानी थाले का आशय स्वयभूरमण समुद्र की वेद्रिका पर्यत अठारहसौ योजन की मोटाई वाले सारे तिर्यक्लोक से है।

१५. विरह द्वार का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र का छठा पद)

नरक तिर्यंच मनुष्य और देव इन चारो गतियो मे उत्पन्न होने का विरह जघन्य एक समय का, उत्कष्ट बारह मुहूर्त का है। पहली नरक भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक तथा सम्मूर्छिम मनुष्य के उत्पन्न होने का विरह जघन्य एक समय उत्कृष्ट चौवीस मुहूर्त का है। दूसरी नरक से सातवी नरक तक उत्पन्न होने का विरह जघन्य एक समय का है उत्कृष्ट विरह दूसरी नरक मे सात दिन का, तीसरी नरक मे १५ दिन का, चौथी नरक मे एक महीने का, पाचवी नरक मे दो महीने का, छठी नरक मे चार महीने का और मातवी नरक मे छह महीने का है। तीसरे देवलोक से मर्वार्थ द्ध विमान मे उत्पन्न होने का विरह जघन्य एक ममय है और उत्कृष्ट विरह तीमरे देवलोक का ६ दिन और मुहूर्त का, चौथे देवलोक का १२ दिन १० मुहूर्त का, वे देवलोक का साढे बावीस दिन का, छठे देवलोक का दिन का, सातवे देवलोक का ८० दिन का, आठवे लोक का १०० दिन का, नवे दशवे देवलोक का सख्यात हीनो का (बारह महीने के अन्दर का) ग्यारहवे, बारहवे, वलोक को संख्यात वर्षो का (१०० वर्षो के अन्दर का) नवग्रैवेयक की नीचे की त्रिक का सख्यात सैकडो वर्षो का मध्यम त्रिक का सख्यात हजारो वर्षो का, ऊपर की त्रिक का सख्यात लाख वर्षो का विजय आदि चार अनुत्तर विमान

का पल्योपम के असंख्यातवे भाग का और सर्वार्थ सिद्ध का पल्योपम के सख्यातवे भाग का है। सिद्ध भगवान् और चौसठ इन्द्रो का विरह जघन्य एक समय का उत्कृष्ट छह महीने का है।

चन्द्र सूर्य का ग्रहण की अपेक्षा विरह पडे तो जघन्य छह महीने का उत्कृष्ट चन्द्र का ४२ महीनो का और सूर्य का ४८ वर्ष का। चद्र सूर्य दोनो का सयुक्त रूप से ग्रहण की अपेक्षा विरह पडे तो जघन्य १५ दिन का उत्कृष्ट छह महीने का। पाच स्थावर का उत्पन्न होने का विरह नही पडता। तीन विकलेन्द्रिय और असज्ञी तिर्यच मे विरह पडे तो जघन्य एक समय का उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त का। सज्ञी तिर्यंच और सज्ञी मनुष्य मे विरह पडे तो जघन्य एक समय का उत्कृष्ट १२ मुहूर्त का। समदृष्टि का विरह सात दिन का, श्रावक का विरह १२ दिन का और साधु का विरह १५ दिन का पडता है।

* चार गति, सात नारकी, दस भवनपति, पाच

---

* तीन चारित्र (परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म सम्पराय और यथाख्यात), तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव का विरह पडे तो जघन्य चौरासी हजार वर्ष से अधिक, उत्कृष्ट देशोन (कुछ कम) अठारह कोटि-कोटि (कोडा-कोडी) सागरोपम का। दो चारित्र (सामायिक और छेदोपस्थापनीय), चार तीर्थ, पाच महाव्रत का विरह जघन्य त्रेसठ हजार वर्ष से अधिक उत्कृष्ट देशोन अटारह कोटि-कोटि सागरोपम का। यह विरह-काल भारत ऐरवत क्षेत्रो की अपेक्षा जानना।

स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, गर्भज तिर्यंच पचेन्द्रिय, सम्मूर्छिम मनुष्य, गर्भज मनुष्य, व्यन्तर, ज्योतिषी, बारह देवलोक, नवग्रैवेयक की त्रिक तीन, चार अनुत्तर विमान का एक, सर्वार्थसिद्ध तथा सिद्ध ये कुल ५३ बोल पन्नवणा सूत्र मे विरह द्वार मे कहे हैं। चौसठ इन्द्र, सूर्य चन्द्र के ग्रहण के दो, समदृष्टि, श्रावक और साधु इन छह बोलो का विरह इस थोकडे मे बताया है वह पन्नवणा सूत्र मे नही है। अन्य जगह का है।

जिस तरह उत्पन्न होने का विरह कहा उसी तरह उद्वर्तन (निकलने) का विरह भी जानना चाहिए। ज्योतिषी और वैमानिक मे उद्वर्तन न कह कर च्यवन कहना चाहिए। सूर्य चन्द्र के ग्रहण के दो, सिद्ध, समदृष्टि श्रावक और साधु के चार कुल छह बोल उद्वर्तन मे नही कहने चाहिए अत उद्वर्तन के ५३ बोल होते हैं।

—❀—
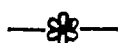
१६. सान्तर और निरन्तर का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र का छठा पद)

नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति, देव गति, सात नारकी, दस भवनपति, तीन विकलेन्द्रिय, असज्ञी तिर्यच पचेन्द्रिय, सज्ञी तिर्यंच पचेन्द्रिय, असज्ञी मनुष्य, सज्ञी मनुष्य, व्यन्तर, ज्योतिषी, बारह देवलोक, नव ग्रैवेयक की तीन त्रिक, पांच अनुत्तर विमान और सिद्ध इन ५१ बोलो मे जीव निरन्तर भी उपजते है और सान्तर भी

उपजते हैं। पाच स्थावर मे जीव निरन्तर उपजते रहते है। ये ५६ बोल हुए।

उपजने की तरह उद्वर्तन (निकलने) का भी कह देना चाहिए अन्तर इतना है कि पाच स्थावर निरन्तर निकलते रहते हैं। सिद्धो का उद्वर्तन नही कहना। शेष जीव निरन्तर और सान्तर निकलते रहते हैं। ज्योतिषी वैमानिक मे उद्वर्तन न कह कर च्यवन कहना। इस तरह ५५ बोल उद्वर्तन मे कहने चाहिए।

❀

१७. उत्पत्ति, उद्वर्तन और च्यवन का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र छठा पद)

नरक गति मे एक समय मे जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट सख्यात यावत् असख्यात उत्पन्न होते है। नरक गति की तरह सात नरक, दस भवनपति, तीन विकलेन्द्रिय, सम्मूर्छिम तिर्यंच पचेन्द्रिय, गर्भज तिर्यंच पचेन्द्रिय, सम्मूर्छिम यानी असज्ञी मनुष्य, व्यन्तर, ज्योतिषी और आठ देवलोक ये ३३ बोल भी एक समय मे जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट सख्यात यावत् असख्यात उत्पन्न होते हैं। चार स्थावर प्रत्येक समय मे निरन्तर असख्यात उत्पन्न होते हैं। वनस्पति स्वस्थान की अपेक्षा यानी वनस्पति मर कर वनस्पति मे प्रत्येक समय मे निरन्तर अनन्त उत्पन्न होते हैं। परस्थान की अपेक्षा पृथ्वी आदि के जीव मर कर वनस्पति मे उत्पन्न होते है तो प्रत्येक समय निरन्तर असख्यात उत्पन्न

होते है । गर्भज मनुष्य, नवे से बारहवे देवलोक, नव-ग्रैवेयक की तीन त्रिक, पांच अनुत्तर विमान इन तेरह बोल मे एक समय मे जघन्य एक दो तीन उत्कृष्ट सख्यात उत्पन्न होते है । सिद्ध भगवान् एक समय मे एक दो तीन यावत् १०८ उत्पन्न होते है। ये ५३ (१+३३+४+१+१३+१=५३) बोल हुए ।

जिस तरह उत्पन्न होने के ५३ बोल कहे उसी तरह सिद्ध भगवान् के सिवा ५२ बोल उद्वर्तन के भी कहना । ज्योतिषी और वैमानिक देवो मे उद्वर्तन की जगह च्यवन कहना चाहिए । सिद्ध भगवान् सिद्ध गति से निकलते नही अत उनका च्यवन नही कहना ।

❀

१८. गति आगति का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र का छठा पद)

पहली नारकी मे ११ की आगति-पाच-सज्ञी तिर्यंच, पाच असज्ञी तिर्यच और असख्यात वर्षों की आयु का कर्म-भूमि मनुष्य । इन ग्यारह स्थानो से आकर जीव पहली नारकी मे उत्पन्न होते है । पहली नारकी की ६ की गति-पाच संज्ञी तिर्यंच और सख्यात वर्षों की आयु का कर्म-भूमि मनुष्य अर्थात् पहली नरक से निकलकर जीव इन छ स्थानो मे उत्पन्न होते है ।

दूसरी नारकी की आगति ६ की—पाच सज्ञी तिर्यंच और सख्यात वर्षो की आयु का कर्मभूमि मनुष्य । तीसरी

नारकी की आगति ५ की–भुजपरिसर्प के सिवाय चार सज्ञी तिर्यंच और सख्यात वर्षों की आयु का कर्मभूमि मनुष्य। चौथी नारकी की आगति ४ की उपरोक्त ५ मे खेचर कम करना। पाचवी नारकी की आगति ३ की—उपर्युक्त ४ मे से स्थलचर नही कहना। छठी नारकी की आगति चार की–जलचर और सख्यात वर्षों की आयु वाले स्त्री, पुरुष और नपुसक की। दूसरी नारकी से छठी नारकी तक गति ६ की-पाच सज्ञी तिर्यंच और सख्यात वर्षों की आयु का कर्मभूमि मनुष्य। सातवी नारकी की आगति ३ की-जलचर, कर्मभूमि का पुरुष और नपुसक। सातवी नारकी की गति ५ की–पाच सज्ञी तिर्यंच की।

भवनपति व्यन्तर मे १६ की आगति-पाच असज्ञी, तिर्यंच, पाच सज्ञी तिर्यंच, सख्यात वर्षों की आयुवाला कर्मभूमि मनुष्य, अकर्मभूमि मनुष्य, छप्पन अन्तर्द्वीपो के मनुष्य, स्थलचर युगलिया और खेचर युगलिया। इनकी गति ६ की—पाच सज्ञी तिर्यंच, पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय और सख्यात वर्षों की आयु वाला कर्मभूमि मनुष्य। ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक मे ९ की आगति–पाच सज्ञी तिर्यंच, सख्यात वर्षो की आयु का कर्मभूमि मनुष्य, असख्यात वर्षों की आयु का कर्मभूमि मनुष्य, अकर्मभूमि मनुष्य और स्थलचर युगलिया। इनकी गति ९ की भवनपति के अनुसार कहना। तीसरे से आठवें देवलोक मे ६ की आगति और ६ की गति–पाच सज्ञी तिर्यंच और सख्यात वर्षो की आयु का कर्मभूमि मनुष्य। नवें से बारहवे देवलोक मे ४ की आगति-मिथ्यात्वी, अविरति

सम्यक् दृष्टि, देशविरति श्रावक और सर्वविरति साधु। इनकी गति १ की–सख्यात वर्षों की आयु का कर्मभूमि मनुष्य। नवग्रैवेयक मे २ की आगति–स्वलिगी सम्यग्दृष्टि और स्वलिगी मिथ्यदृष्टि अर्थात् मिथ्यादृष्टि हैं पर जैन साधु के वेष मे है। नवग्रैवेयक की गति १ की–सख्यात वर्षो की आयु का कर्मभूमि मनुष्य। पाच अनुत्तर विमान मे आगति २ की–ऋद्धि प्राप्त अप्रमादी साधु, तथा अऋद्धि प्राप्त अप्रमादी साधु, इनकी गति १ की–सख्यात वर्षो की आयुवाला कर्मभूमि मनुष्य।

पृथ्वीकाय अप्काय और वनस्पतिकाय मे ७४ की आगति–तिर्यंच और मनुष्य के ४९ बोलो की लड (*४६ तिर्यंच के तथा सज्ञी मनुष्य के अपर्याप्त, पर्याप्त और सम्मूर्छिम मनुष्य) तथा २५ देवता की (दस भवनपति, आठ व्यन्तर, पाच ज्योतिषी और पहला दूसरा देवलोक), इनकी गति उपरोक्त तिर्यंच और मनुष्य ४९ बोल की। तेजस्काय और वायुकाय मे आगति उपर्युक्त तिर्यंच मनुष्य के ४९ बोल की और गति ४६ की–मनुष्य के ३ बोल के सिवा शेष ४६ तिर्यंच की। तीन विकलेन्द्रिय मे आगति और गति उपरोक्त तिर्यंच और मनुष्य के ४८ बोल की। तिर्यंच पचेन्द्रिय मे आगति ८७ की–उपरोक्त तिर्यंच मनुष्य के ४९, भवनपति से आठवे देवलोक तक देवता के ३१ और सात नारकी की। इनकी गति ९२ की—उप-

* यहा वनस्पति के छह भेद न कर सूक्ष्म वादर के पर्याप्त पर्याप्त ये चार भेद किए है।

रोक्त ८७ तथा असख्यात वर्षों की आयु का कर्मभूमि मनुष्य यानी युगलिया, असख्यात वर्षों की आयु का अकर्म-भूमि मनुष्य (युगलिया), अन्तरद्वीप के मनुष्य (युगलिया), स्थलचर युगलिया, खेचर युगलिया । मनुष्य मे आगति ९६ की - उपरोक्त तिर्यंच मनुष्य के ४९ बोलो मे से तैजस और वायु के ८ बोल छोडकर शेष ४१ बोल, ४९ देवता (१० भवनपति, ८ व्यन्तर, ५ ज्योतिषी, १२ देवलोक, ९ नवग्रैवेयक, ५ अनुत्तर विमान) तथा ६ नारकी सातवी नारकी के सिवा । मनुष्य की गति १११ की—उपर्युक्त ९६, तेजस्काय वायुकाय के ८, सातवी नारकी, असख्यात वर्ष की आयु का कर्मभूमि मनुष्य, असख्यात वर्ष की आयु का अकर्मभूमि मनुष्य, अन्तरद्वीप, स्थलचर युगलिया, खेचर युगलिया, और सिद्धगति ।

Δ

१९. आयुष्य बंध का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र छठा पद)

नारकी के नैरयिक, भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव अपनी-अपनी आयु के छह माह शेष रहने पर परभव की आयु बाधते हैं । पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय वायुकाय, वनस्पति काय और तीन विकलेन्द्रिय के जीव के सोपक्रम और निरुपक्रम दो प्रकार की आयु होती है इनमे जो निरुपक्रम आयु वाले होते हैं वे अपनी अपनी आयु का तीसरा भाग शेप रहने पर परभव की आयु बाधते हैं ।

सोपक्रम आयु वाले कभी अपनी आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर, कभी अपनी आयु के तीसरे भाग का तीसरा भाग अर्थात् नवा भाग शेष रहने पर और कभी अपनी आयु के तीसरे भाग के तीसरे भाग का तीसरा भाग अर्थात् सताईसवां भाग शेष रहने पर परभव की आयु बाधते है। कभी अपनी आयु के सताईसववे भाग का तीसरा भाग अर्थात् इक्यासीवां भाग शेष रहने पर, कभी इक्यासीवे भाग का तीसरा भाग अर्थात् २४३ वां भाग शेष रहने पर और कभी २४३ वें भाग का तीसरा भाग अर्थात् ७२६ वा भाग शेष रहने पर यावत् अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर परभव की आयु बाधते हैं। तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्य सख्यात वर्ष की आयु वाले और असख्यात वर्ष की आयु वाले होते हैं। असख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्य निरूपक्रम आयु वाले होते है। वे अपनी आयु के छह माह शेप रहने पर परभव की आयु बाधते है। सख्यात वर्ण की आयु वाले तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्य निरूपक्रम और सोपक्रम—दोनो प्रकार की आयु वाले होते हैं। पृथ्वीकाय की तरह ये दोनो कह देना=२४।

आयुष्य वध के छह भेद है—*जातिनाम निधत्तायु,

---

* जतिनाम कर्म के साथ निधत्तायु यानी निर्षेक को प्राप्त आयु जातिनाम निधत्तायु है। भोगने के लिए कर्म पुद्गलो की रचना को निर्षेक कहते हैं। इसी तरह शेष गति आदि भी समझना।

गतिनाम निधत्तायु, स्थितिनाम निधत्तायु, अवगाहना नाम निधत्तायु, प्रदेश नाम निधत्तायु, और अनुभाग नाम निधत्तायु। सामान्य जीव और चौवीस दण्डक मे यह छह प्रकार का आयु वध जानना चाहिए। २५×६=१५०।

उक्त छह प्रकार का आयुष्य वध १-२-३ यावत् ८ आकर्ण से वधता है। अध्यवसाय को धारारूप प्रयत्न विशेष से कर्म पुद्गलो को ग्रहण करना आकर्ण कहलाता है, जैसे गाय पानी पीती हुई भय से इधर उधर देखती देखती है और रुक-रुक कर पानी पीती है इसी प्रकार जीव भी जव आयुवध योग्य तीव्र अध्यवसाय से जातिनाम निधत्तायु वाधता है तो एक आकर्ण से वाध लेता है। मन्द अध्यवसाय होने पर दो तीन आकर्ण से, मन्दतर अध्यवसाय होने पर तीन चार आकर्ण से और मन्दतम अध्यवसाय होने पर पाच छह सात अथवा आठ आकर्ण से आयु बाधता है। यह आकर्ण का नियम आयुष्य के साथ वधने वाले जाति गति आदि प्रकृतियो के लिए है। समुच्चय जीव और चौवीस दण्डक मे उक्त छ. प्रकार का आयुष्य वध १-२-३ यावत् ८ आकर्ण से वधता है। २५×६×८=१२००।

आयु कर्म के साथ जाति, गति, स्थिति, अवगाहना, प्रदेश और अनुभाग नाम का वध होता है इसलिए इनसे विशिष्ट आयु को जातिनाम निधत्तायु गतिनाम निधत्तायु यावत् अनुभाग नाम निधत्तायु जानना।

एक दो तीन यावत् आठ आकर्ष से जातिनाम यावत् अनुभाग नाम निधत्तायु बंध करने वाले जीवों की अल्प बहुत्व इस प्रकार है—सबसे थोड़े जीव आठ आकर्ष से आयु बंध करने वाले, सात आकर्ष से आयुबंध करने वाले संख्यात गुणा, छह आकर्ष से आयुबंध करने वाले संख्यात-गुणा, पांच आकर्ष से आयुबंध करने वाले संख्यातगुणा, इसी तरह क्रमशः चार, तीन, दो और एक आकर्ष से आयुबंध करने वाले उत्तरोत्तर संख्यात गुणा जानना। समुच्चय जीव की तरह चौवीस दण्डक कहना चाहिए। २५×६×८=१२०० । कुल २४+१५०+१२००+१२००=२५७४ ।

२०. श्वासोच्छ्वास का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र का छठा पद)

इस थोकड़े में यह बताया गया है कि जीव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं अर्थात् उनके श्वासोच्छ्वास का कितना विरह है।

नारकी के नैरयिक लगातार निरन्तर*श्वासोच्छ्वास

---

* शास्त्र मे 'आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, नीससंति वा' पाठ है। टीकाकार के अनुसार 'आणमंति, पाणमंति' क्रियाओं का अर्थ स्पष्ट करने के लिए 'ऊससंति

लेते रहते हैं। आचार्यो ने उनकी निरन्तर श्वासोच्छ्वास लेने की क्रिया को लुहार की धमनी से उपमा दी है। असुरकुमार के देवता जघन्य सात □स्तोक उत्कृष्ट एक पक्ष से कुछ अधिक समय से श्वासोच्छ्वास लेते है। भवनपति के शेष ६ निकाय के देवता और व्यन्तर देवता जघन्य सात स्तोक से उत्कृष्ट प्रत्येक मुहूर्त से एव ज्योतिषी देवता जघन्य उत्कृष्ट प्रत्येक मुहूर्त से श्वासोच्छ्वास लेते हे। पहले देवलोक के देवता जघन्य प्रत्येक मुहूर्त से उत्कृष्ट दो पक्ष से और दूसरे देवलोक के देवता जघन्य कुछ अधिक प्रत्येक मुहूर्त से उत्कृष्ट कुछ अधिक दो पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

तीसरे देवलोक के देवता जघन्य दो पक्ष से उत्कृष्ट सात पक्ष से और चौथे देवलोक के देवता जघन्य कुछ अधिक दो पक्ष से उत्कृष्ट कुछ अधिक सात पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते है। पाचवें देवलोक के देवता जघन्य सात पक्ष से उत्कृष्ट दस पक्ष से, छठे देवलोक के देवता जघन्य

नीससति' क्रियाए दी है और इनका अर्थ ऊपर श्वास लेना और नीचा श्वास छोडना अर्थात् श्वास लेना और श्वास छोडना है। टीकाकार ने इन चारो का अलग-अलग अर्थ भी दिया है। तदनुसार 'आणमति, पाणमति' का अर्थ श्वास नि श्वास की आभ्यन्तर क्रिया है और 'ऊससति नीससति' का अर्थ श्वास नि श्वास की वाह्य क्रिया है।

□ सात श्वासोच्छ्वास का एक स्तोक होता है।

दस पक्ष से उत्कृष्ट १४ पक्ष से, सातवे देवलोक के देवता जघन्य १४ पक्ष से उत्कृष्ट १७ पक्ष से और आठवे देवलोक के देवता जघन्य १७ पक्ष से उत्कृष्ट १८ पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। नवे देवलोक से बारहवे देवलोक तक तथा पहले नवग्रैवेयक से नवे ग्रैवेयक तक जघन्य उत्कृष्ट मे एक एक पक्ष बढाना चाहिए। इस तरह नवमे ग्रैवेयक के देवता जघन्य ३० उत्कृष्ट ३१ पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। चार अनुत्तर विमान के देवता जघन्य ३१ उत्कृष्ट ३३ पक्ष से और सर्वार्थसिद्ध के देवता जघन्य उत्कृष्ट ३३ पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते है। देवताओ मे जिनमे जितने सागरोपम की स्थिति है वे उतने ही पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते है अर्थात् उनका उतने ही पक्ष का श्वासोच्छ्वास का विरह काल है। देवो की जितने पल्योपम की स्थिति होती है वे उतने ही प्रत्येक मुहूर्त से श्वासोच्छ्वास लेते है। दस हजार वर्ष की स्थिति वाले देव सात स्तोक से श्वासोच्छ्वास लेते है।

पाच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्य का श्वासोच्छ्वास लेना नियत नही है अत उनके श्वासोच्छ्वास का विरह काल भी अनियत ही जानना चाहिए।

२१. संज्ञा का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र आठवां पद)

△ सज्ञा दस प्रकार की है—आहार सज्ञा, भय सज्ञा, मैथुन सज्ञा, परिग्रह सज्ञा, क्रोध सज्ञा, मान सज्ञा, माया सज्ञा, लोभ सज्ञा, ओघ सज्ञा और लोक सज्ञा। समुच्चय जीव और चौवीस दण्डक मे से दस सज्ञाए पाई जाती हैं।

चार गति की अपेक्षा आहार आदि चार सज्ञाओ का अल्पबहुत्व इस प्रकार है। नारकी मे सबसे थोडे मैथुन सज्ञा वाले, आहार सज्ञा वाले सख्यात गुणा, परिग्रह सज्ञा वाले, आहार सज्ञा वाले सख्यात गुणा, परिग्रह सज्ञा वाले सख्यातगुणा और भयसज्ञा वाले सख्यातगुणा हैं। तिर्यंच मे सबसे थोडे परिग्रह सज्ञा वाले, मैथुन सज्ञा वाले सख्यातगुणा, भय सज्ञा वाले सख्यातगुणा, और आहार सज्ञा

△ वेदनीय और मोह के उदय से तथा ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण के क्षयोपशम से होने वाली अनेक प्रकार की आहारादि की प्राप्ति की क्रिया को सज्ञा कहते हैं। इन दस सज्ञाओ मे पहली आठ सज्ञाओ का अर्थ स्पष्ट है। सामान्य ज्ञान की क्रिया को ओघ सज्ञा और विशेष ज्ञान की क्रिया को लोक सज्ञा कहते हैं। कई आचार्य कहते हैं कि सामान्य प्रवृत्ति जैसे वेल का वाड पर चढ़ना ओघ सज्ञा है और लोक की देखा-देखी प्रवृत्ति करना लोक सज्ञा है।

वाले संख्यातगुणा है । मनुष्य में सबसे थोडे भय संज्ञा वाले, आहार सज्ञा वाले सख्यातगुणा, परिग्रह सज्ञा वाले सख्यातगुणा और मैथुन सज्ञा वाले सख्यातगुणा हैं । देवता मे सबसे थोडे आहार संज्ञा वाले, भय सज्ञा वाले सख्यातगुणा, मैथुन संज्ञा वाले सख्यातगुणा और परिग्रह सज्ञा वाले सख्यातगुणा है । इसे याद रखने के लिए थोकडे के जानकारो ने 'मा आ पी, पे मा भी, भ आ पी, अ भ मा, संखेज्जगुणा अहिया भवन्ति' यह गाथा जोड रखी है । इसमें सज्ञाओं के प्रथम तीन-तीन अक्षर क्रमश नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति के लिये दिये है और शेप जो संज्ञा रहती है वह चौथी सज्ञा जानना चहिए ।

आहार सज्ञा के चार कारण – १ पेट खाली होने से, २ क्षुधा वेदनीय के उदय से, ३ आहार की कथा सुनने और आहार को देखने से और ४ सदैव आहार का चिन्तन करने से आहार सज्ञा उत्पन्न होती है ।

भय सज्ञा के चार कारण—१ शक्ति नही होने से, २ भय मोहनीय कर्म के उदय से, ३ भय की वात सुनने और भयानक वस्तु को देखने से और ४ भय के कारणो का चिन्तन करने से भय सज्ञा उत्पन्न होती है ।

मैथुन सज्ञा के चार कारण—१ शरीर मे रक्त मास की वृद्धि होने से, २ वेद मोहनीय कर्म के उदय से, ३ काम कथा सुनने से और ४ मैथुन का चिन्तन करने से ...ुन सज्ञा उत्पन्न होती है ।

परिग्रह सज्ञा के चार कारण—१ अति मूर्छा आसक्ति

होने से, २ लोभ मोहनीय कर्म के उदय से, ३ परिग्रह की वात सुनने से और ४ परिग्रह का चितन करने से परिग्रह सज्ञा उत्पन्न होती है ।

नारकी से आये हुए जीव मे भय सज्ञा अधिक होती है । तिर्यंच गति से आये हुए जीव मे आहार सज्ञा अधिक होती है । मनुष्य गति से आये हुए जीव मे मैथुन सज्ञा और देव गति से आये हुए जीव मे परिग्रह सज्ञा अधिक होती है ।

नारकी से आये हुए जीव मे क्रोध अधिक होता है, तिर्यंच गति से आये हुए जीव मे माया अधिक होती है, मनुष्य गति से आये हुए जीव मे मान और देवगति से आये हुए जीव मे लोभ अधिक होता है ।

पहली आहार सज्ञा वेदनीय कर्म के उदय मे, दूसरी से आठवी तक सात सज्ञा मोह के उदय से, ओघ सज्ञा दर्शनावरण के क्षयोपशम भाव से और लोक सज्ञा ज्ञानावरण के क्षयोपशम भाव से होती है ।

---

२२. योनि का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र नवा पद)

जीवो के उत्पत्ति स्थान को योनि कहते हैं । यहा योनि के चार तरह से तीन तीन भेद वताकर, उसमे कौन से जीव उत्पन्न होते हैं वताया गया है तथा अल्पबहुत्व वताई गई है ।

योनि ३ प्रकार की है– शीत योनि, उष्ण योनि और शीतोष्ण (मिश्र) योनि। पहली दूसरी और तीसरी नारकी मे शीत योनि होती है और उष्ण वेदना होती है। चौथी नरक मे शीत और उष्ण दोनो योनि होती हैं, शीत योनि वाले बहुत हैं और उष्ण योनि वाले थोडे हैं, शीत योनि वाले उष्ण वेदना वेदते है और उष्ण योनि वाले शीत वेदना वेदते हैं। पाचवी नरक मे शीत और उष्ण दोनो योनि है। यहां शीत योनि वाले थोडे हैं और उष्ण योनि वाले बहुत है। शीत योनि वाले उष्ण वेदना और उष्ण योनि वाले शीत वेदना वेदते हैं। छठी सातवी नरक मे उष्ण योनि है और यहा शीत वेदना है।

तेरह दण्डक के देवता, गर्भच तिर्यंच पचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्य मे एक शीतोष्ण अर्थात् मिश्र योनि है।

तेजस्काय को छोडकर+चार स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, सम्मूर्छिम तिर्यंच पचेन्द्रिय और सम्मूर्छिम मनुष्य के तीनो योनि होती है। तेजस्काय मे एक उष्ण योनि होती है।

अल्पवहुत्व—सवसे थोड शीतोष्ण योनि वाले, उष्ण योनि वाले असख्यात गुणा, अयोनिक (योनि रहित) अनन्त गुणा और शीत योनि वाले अनन्त गुणा। अनन्त काय वाले सभी जीवो के शीत योनि होने से शीत योनि वाले ... । कहे है।

+ टीकाकार अप्काय के शीत योनि मानते है।

योनि के तीन भेद–सचित्त, अचित्त और मिश्र। नारकी और देवता के चौदह दण्डक मे एक अचित्त योनि पाती है। पाच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, सम्मूर्छिम तिर्यंच पचेन्द्रिय और सम्मूर्छिम मनुष्य मे तीनो ही योनि पाती हैं। गर्भज तिर्यंच पचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्य मे मिश्र योनि पाती है।

अल्पवहुत्व—सवसे थोडे मिश्र योनि वाले, अचित्त योनि वाले असख्यात गुणा, अयोनिक अनन्तगुणा, सचित्त योनि वाले अनन्तगुणा। निगोद जीव सचित्त योनि वाले होते है अतः सचित्त योनि वालो को अनन्तगुणा कहा है।

योनि के तीन भेद–सवृत (सवुडा), विवृत (वियडा) और सवृत विवृत (सवुडा वियडा)। नारकी देवता के १४ दण्डक और पाच स्थावर इन १६ दण्डक मे एक सवृत योनि पाती है। तीन विकलेन्द्रिय, सम्मूर्छिम तिर्यंच पचेन्द्रिय और सम्मूर्छिम मनुष्य मे एक विवृत योनि पाती है। गर्भज तिर्यंच पचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्य मे एक सवृत-विवृत योनि पाती है।

अल्पवहुत्व—सवसे थोडे सवृत विवृत योनि वाले, विवृत योनि वाले असख्यातगुणा, अयोनिक अनन्तगुणा, और सवृत योनि वाले अनन्तगुणा।

योनि के ३ भेद–कूर्मोन्नत योनि (कछुए के पीठ तरह उन्नत योनि), शखावर्त योनि (शख की तरह आवर्त वाली योनि), वशीपत्र योनि (मिले हुए वास के दो पत्र के आकार वाली योनि)। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव,

वासुदेव इन ५४ उत्तम पुरुषो की माता के कूर्मोन्नत योनि होती है। चक्रवर्ती की श्री देवी शंखावर्त योनि होती है। शखावर्त योनि मे जीव आते हैं, गर्भरूप में उत्पन्न होते हैं, सचित होते हैं, किन्तु उत्पन्न नही होते। वशीपत्र योनि सामान्य पुरुषो की माता के होती है।

पांच समिति तीन गुप्ति का थोकड़ा

पाच समिति के नाम—१ ईर्यासमिति, २ भाषासमिति, ३ एषणासमिति, ४ आदानभडमात्र-निक्षेपणासमिति, ५ उच्चारप्रश्रवणखेलसिघाणजल्लपरिस्थापनिका समिति।

तीन गुप्ति के नाम—१ मनोगुप्ति, २ वचनगुप्ति, ३ कायगुप्ति। इन आठो (पाच समिति और तीन गुप्ति) को प्रवचन माता भी कहते हैं। जिस तरह माता अपने पुत्र पर अत्यन्त प्रेम करती है, उसका कल्याण करती है वैसे ही कल्याणकारी होने के कारण इन आठ गुणो को माता की उपमा दी जाती है।

समिति का स्वरूप

समिति किसको कहते है? प्राणातिपात (जीव हसा) से निवृत्त होने के लिये सम्यक् प्रवृत्ति करने को

ट—यह थोकडा उत्तराध्ययन सूत्र २४ वें अध्ययन के आधार पर लिखा गया है।

समिति कहते हैं। उत्तम परिणामो की चेष्टा को भी समिति कहते हैं अथवा समिति ईर्यादि पांच चेष्टाओ की तान्त्रिकी (शास्त्रीय) सज्ञा है, यह एक परिभाषिक शब्द है।

१ ईर्यासमिति—जीवो की रक्षा के लिये विवेक और उपयोग पूर्वक चलने को ईर्यासमिति कहते है।

२ भाषासमिति—उपयोगपूर्वक सत्य और निर्दोष वचन बोलने को भाषासमिति कहते हैं।

३ एषणासमिति—बयालीस दोष टाल कर निर्दोष और परिमित भिक्षादि ग्रहण करने को एषणा समिति कहते हैं।

४ आदान-भडमात्र-निक्षेपणासमिति-वस्त्र पात्र आदि उपकरणो को देख और पूजकर जयणा से उठाने और रखने को आदान-भडमात्र-निक्षेपणासमिति कहते हैं।

५ उच्चारप्रश्रवणखेलसिंघाणजल्लपरिस्थापनिकासमिति—मल-मूत्रादि त्याज्य वस्तुओ को दस विशेषणो से युक्त स्थानो मे परठाने को उच्चार प्रश्रवणखेलसिंघाणजल्लपरिस्थापनिका समिति कहते है।

ईर्यासमिति

ईर्यासमिति के चार कारण होते हैं—आलवन, काल, मार्ग और यतना। इन चार कारणो से परिशुद्ध ईर्यासमिति से साधु गमन करे।

१ आलबन—आलम्बन अर्थात् प्रयोजन होने पर ही भगवान् ने गमन करने की आज्ञा दी है। बिना आलम्बन कही जाने की आज्ञा नही है। वह आलम्बन तीन प्रकार का है—ज्ञान (सूत्र, अर्थ, तदुभय), दर्शन और चारित्र। सूत्र मे प्रयुक्त तथा शब्द द्विकसयोगी आदि सात भगो की सूचना करता है, वे सात भंग इस प्रकार है—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, ज्ञान और दर्शन, ज्ञान और चारित्र, ज्ञान, दर्शन और चारित्र।

२ काल—ईर्यासमिति का काल दिन ही कहा है, रात्रि मे दिखाई न देने के कारण अत्यन्त आवश्यक प्रयोजन के बिना गमन करने की आज्ञा नही है।

३ मार्ग—साधु टेढे या उजाड मार्ग से न जाकर सीधे राजमार्ग से चले। क्योकि कुमार्ग मे चलने से आत्मा और सयम की विराधना होने की सभावना है।

४ यतना—यतना के चार भेद है—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। द्रव्ययतना—उपयोगपूर्वक जीवादि पदार्थो को देखता हुआ सयम तथा आत्मा को विराधना से बचता हुआ चले। क्षेत्रयतना—युग*मात्र (धूसरा प्रमाण) अर्थात् चार हाथ प्रमाण आगे की भूमि को देखता हुआ गमन

* युग का परिणाम छयानवे ९६ अगुल का होता। समवायाग सू० स० ९६ तथा भगवती सूत्र ६ शतक उद्देश।

करे । कालयतना—जब तक दिन रहे तभी तक यातना से चले फिरे । भावयतना—चलते समय अपने उपयोग (ज्ञान-व्यापार)को ठीक रखना भावयतना है । चलते समय पाच इन्द्रियो के विषय (शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श) तथा पाच प्रकार के स्वाध्यायो को छोड कर सिर्फ चलने की क्रिया को मुख्यता देकर और उसी मे उपयोग रख कर चले ।

पुन —आलम्बन–प्रवचन, सघ, गच्छ और आचार्यादि के कार्य । काल—साधु के विचरने योग्य अवसर । मार्ग—जिस रास्ते मे वहुत से आदमी चलते फिरते हो अर्थात् राजमार्ग यातना—उपयोग सहित आगे की भूमि पर युगपरिमाण (चार हाथ तक) दृष्टि रखना । इन आलम्बनादि चारो पदो के १६ भग होते है । उन्हे यन्त्र द्वारा दिखाया जाता है । यन्त्र मे 'ऽ' चिह्न आलम्बनादि की सत्ता को बताता है और '०' अभाव को । जैसे द्वितीय भाग मे आलम्बन, काल और मार्ग तो है लेकिन यतना नही है ।

ईर्यासमिति के १६ भंगो का यंत्र

सकेत 'ऽ' अस्ति, '०' नास्ति

सख्या	आलबन	काल	मार्ग	यतना	शुद्धादि ।
१	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	सर्वथाशुद्ध

२	ऽ	ऽ	ऽ	०	देशत शुद्धाशुद्ध
३	ऽ	ऽ	०	ऽ	"
४	ऽ	ऽ	०	०	"
५	ऽ	०	ऽ	ऽ	"
६	ऽ	०	ऽ	०	०
७	ऽ	०	०	ऽ	"
८	ऽ	०	०	०	"
९	०	ऽ	ऽ	ऽ	"
१०	०	ऽ	ऽ	०	"
११	०	ऽ	०	ऽ	"
१२	०	ऽ	०	०	"
१३	०	०	ऽ	ऽ	"
१४	०	०	ऽ	०	"
१५	०	०	०	ऽ	"
१६	०	०	०	०	सर्वथा अशुद्ध

उपरोक्त यन्त्र द्वारा दिखाये गये १६ भगो मे से प्रथम भग सर्वथा शुद्ध है और अ तिम भग सर्वथा अशुद्ध है। बीच के चौदह भग देशत शुद्ध और देशत अशुद्ध हैं। आलम्बनादि चारो कारणो से युक्त गमन ही शुद्ध माना गया है। अर्थात् सर्वथा शुद्ध प्रथम भग मे ही साधु को गमन करने के लिये श्री तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा है।

भाषासमिति

क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य भय, मौखर्य और विकथा इन आठ दोषो को त्याग कर निर्दोष परिमित और उपयोगी भाषा बोलने को भाषासमिति कहते हैं। क्रोधादि के वशीभूत होकर मनुष्य अपने आप को भूल जाता है। उस समय उसे भले-बुरे का भान नही रहता। बहुत सी ऐसी बाते कर बैठता है जिनका परिणाम बहुत बुरा होता है। उनके उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

क्रोध—जैसे कोई पिता अतिक्रोधित होता हुआ अपने पुत्र से कहे—'तू मेरा पुत्र नही है।' पास मे खडे हुए मनुष्यो से कहे 'बाधो-बाधो इसको' इत्यादि।

मान—जैसे कोई पुरुष गर्वित होता हुआ बोले—जाति आदि मे मेरी बराबरी करने वाला कोई नही है।

माया—जैसे अपरिचित स्थान मे रहा हुआ कोई पुरुष दूसरो को ठगने के लिये पुत्रादिको के विषय मे बोले न तो मेरा यह पुत्र है और न मैं इनका पिता हू।

लोभ—जैसे कोई वणिक दूसरो की भाण्डादि वस्तु को लोभ से अपनी कहे ।

हास्य—जैसे कोई हसी मे कुलीन पुरुष को भी अकुलीन कहकर बुलावे ।

भय—जैसे किसी ने किसी प्रकार का अकार्य किया, दूसरे ने उससे पूछा—'तू वही है जिसने अमुक समय अमुक कार्य किया ?' तो वह भय से कहे मैं उस समय उस जगह नही था ।

मौखर्य—जैसे कोई मुखरता (वकबाद) के कारण हमेशा दूसरो की निन्दा ही करता रहे ।

विकथा—जैसे कोई बोले—'अहो इस स्त्री के कटाक्ष कैसे है ?' इत्यादि । इस प्रकार क्रोधादि के वशीभूत होने पर शुद्ध भापा नही बोली जाती इसलिए इन पूर्वोक्त आठ स्थानो को वर्ज कर साधु निरवद्य (निर्दोष) और परिमित (जितनी बोलनी जरूरी हो) भाषा अवसर देखकर बोलनी चाहिये ।

पुन —भाषा समिति के चार भेद । द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव । द्रव्य से—कठोर 'कर्कश, छेदकारी, भेदकारी, निश्चयकारी, सावद्य, क्लेशकारी और मिश्र, इन आठ षाओ को साधु न बोले । क्षेत्र से—रास्ता चलता हुआ न करे । काल से—एक पहर रात्रि के बाद सूर्योदय ऊचे स्वर (जोर से) न बोले । भाव से—रागद्वेष करने वाली भाषा को उपयोगपूर्वक वर्जे ।

एषणा समिति

एषणा समिति के तीन भेद हैं—गवेषणैषणा, ग्रहणैषणा और परिभोगैषणा (ग्रासैषणा)।

गवेषणैषणा—आहारादि ग्रहण करने के पहले शुद्धि-अशुद्धि की खोज करने को गवेषणैषणा कहते हैं।

ग्रहणैषणा—आहारादि ग्रहण करते समय शुद्धि-अशुद्धि की खोज करने को ग्रहणैषणा कहते हैं।

परिभोगैषणा—आहारादि भोगते समय शुद्धि-अशुद्धि की खोज करने को परिभोगैषणा कहते है।

आहार (अशनादिक, उपाधि (वस्त्रपात्रादिक) और शय्या (मकान पाट पाटलादिक) इन तीनो वस्तुओ को खोजने, ग्रहण करने और भोगने मे उपयोग रखने को एषणा समिति कहते हैं। पहिली गवेषणैषणा मे आधाकर्मादि सोलह उद्‌गमदोष और धात्र्यादि सोलह उत्पादनादोष, इन बत्तीस दोषो को टालकर आहारादि की शुद्ध एषणा (खोज) करे। दूसरी ग्रहणैषणा मे शकितादि दस दोषो को टाल कर आहारादि ग्रहण करे। तीसरी परीभोगैषणा (ग्रासैषणा) मे पिंड (अशनादि), शय्या, वस्त्र और पात्र इन चारो को उद्‌गमादि के दोष टाल कर भोगे। तथा सयोजना, प्रमाण, अङ्गार धूम और कारण इन चार माडला के दोषो का निवारण करे। यहा मोहनीय कर्म के अन्तर्गत होने के कारण अङ्गार और धूम इन दोनो को एक पद से

विवक्षा की है । इस प्रकार एषणा समिति का पालन करता हुआ साधु सयम की रक्षा करता है ।

पुनः—एषणा समिति के चार भेद द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव । द्रव्य से उद्गम के १६ दोष, उत्पादना के १६ दोष और एषणा के १० दोष इन बयालीस दोषो को टाल कर शुद्ध अशनादि की गवेषणा करे । क्षेत्र से दो कोस के उपरात ले जा कर अशनादि न भोगे । काल से प्रथम पहर के लिये हुए अशनादि चौथे पहर मे न भोगे । भाव से राग द्वेष रहित होता हुआ माडला के ५ दोष टाल कर आहार करे ।

आदान-भण्ड-मात्र–निक्षेपणा–समिति

उपाधि दो प्रकार की होती है—ओघोपधि और औपग्रहिकोपधि । ओघोपधि—जो हमेशा पास रक्खी जावे-जैसे रजोहरण, वस्त्र, पात्रादि । औपग्रहिकोपधि—जो सयम रक्षार्थ थोड़े समय के लिये ग्रहण की जावे जैसे—पाट, पाटला, शय्या, दण्डादिक । इन दो प्रकार के उपकरणो को उठाते तथा रखते हुए साधु वक्ष्यमाण (आगे कही जाने वाली) विधि के अनुसार प्रवृत्ति करे । पहिले वस्तु को देखे, फिर रजोहरणादि से पूजे । इस प्रकार यतना करता हुआ साधु दोनों प्रकार की उपाधि को उठाए और रखे ।

पुन.—आदानभण्डमात्रनिक्षेपणासमिति के चार भेद । द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव । द्रव्य से भडोपकरण यतना से ले और यतना ही से रक्खे । क्षेत्र से—भडोपकरण इधर-उधर विखरा हुआ न रखे । काल से—यथासमय

पडिलेहणा करे । भाव से—रागद्वेष उत्पन्न करने वाली उपधि न रखे ।

उच्चारप्रश्रवणखेलसिंघाणजल्लपरिस्थापनिका समिति

उच्चार—विष्ठा, प्रश्रवण-पेशाव, खेल—मुंह से निकलने वाला श्लेष्म, सिंघाण—नाक से निकलने वाला श्लेष्म, जल्ल-शरीर का मैल, आहार-न खाने योग्य अशनादि, उपधि-वर्षाकल्पादि (चौमासे मे की हुई) देह-मृत-शरीर तथा इनके सिवाय और परिठवने योग्य वस्तुओ का जहा-तहा न फेंक कर दस विशेषणो से युक्त स्थान मे परठावे ।

वे दस विशेषण इस प्रकार हैं—

१ अणावायमसंलोए परस्स—जहा न किसी का आना-जाना हो, न दृष्टि पडती हो ।

२ अणुवघाइए—जहा परठाने से संयमोपघात (छह काय की विराधना) आत्मोपघात (अपने शरीर को पीडा) और प्रवचनोपघात मे किसी तरह का उपघात न हो ।

३ समे—जहा ऊंची-नीची जगह न हो अर्थात् सम-तल भूमि हो ।

४ अझुसिरे—जहा पोलान न हो अर्थात् भूमि पत्तो आदि से ढकी हुई न हो ।

५ अचिर काल कयंमि—जहा थोडे काल पहिले अग्नि से जली हुई भूमि हो, क्योंकि देर के बाद वहा फिर पृथ्वीकाय के जीव उत्पन्न हो जाते है ।

६ विच्छिन्न—जहा कम से कम एक हाथ लबी चौडी भूमि हो ।

दूरमोगाढे—जहा कम से कम चार अंगुल नीचे तक भूमि अचित्त हो ।

७ णासन्ने—जहा गाव, बगीचा वगैरह नजदीक न हो ।

८—विलवज्जिए—जहा चूहे आदि का बिल न हो ।

१०—तसपाण बीय रहिये—जहा द्वीन्द्रियादिक त्रस जीव तथा शाल्यादिक बीज न हो ।

इन* दस विशेषणो वाले स्थण्डिल मे उच्चारादि परिट्ठवे ।

---

* दस विशेषणो का खुलासा तथा १०२४ भगो का स्वरूप देखो । (श्रीआगमो०) पत्र १२२ पृष्ठ २ से पत्र ६ पृष्ठ १ तक तथा प्रवचनसारोद्धार द्वारा ६१ (हीरालाल कृत टीका का भाषान्तर) पत्र ३०१ पृष्ठ १ से ३०२ पृष्ठ २ तक ।

पिंडनिर्युक्ति

प्रवचनसार

पुन —उच्चारप्रश्रवणखेलसिंघाणजल्लपरिस्थापनिका समिति चार प्रकार की होती है द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। द्रव्य से—उच्चारादि ८ वस्तुओ को देखकर परिट्ठवे। क्षेत्र मे- दस प्रकार के शुद्ध स्थण्डिल मे उच्चारादि परिट्ठवे। काल से--सायकाल (थोडा दिन रहते हुए) के समय परिट्ठवने योग्य भूमिका की पडिलेहणा करे। भाव से—परिट्ठवने को जाते समय 'आवस्सिया आवस्सिया' कह कर जावे, परिट्ठवने के योग्य भूमि को देखे तथा पूजे और शक्रेन्द्र महाराज की आज्ञा लेकर चार अगुल ऊचे से यतना पूर्वक परिट्ठवे। परिट्ठव कर 'वोसिरे वोसिरे' कहे। बाद मे ईर्यावहिया का काउसग्ग करे।

गुप्ति का स्वरूप

ससार के कारणो से आत्मा की सम्यक् प्रकार से रक्षा करने को गुप्ति कहते है। मन, वचन और काया की अशुभ प्रवृत्ति रोकने को भी गुप्ति कहते हैं। अथवा मन, वचन और काया की निर्दोष प्रवृत्ति को गुप्ति कहते हैं। कर्मों के आस्रव को रोकने का नाम भी गुप्ति है। मुमुक्षु (मोक्षाभिलाषी) द्वारा किये गये अशुभ योगो के निग्रह को भी गुप्ति कहते है। मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति।

मनोगुप्ति

मनोगुप्ति चार प्रकार की होती है—सत्या, मृष -सत्यामृषा, असत्यामृषा ।

पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का चिन्तन करना सत्य-मनोयोग है । उसे विषय करने वाली गुप्ति भी उपचार से सत्य कही जाती है । इसके विपरीत अर्थात् असत्य-मनोयोग है । उसे विषय करने वाली गुप्ति मृषा कहलाती है । दोनो प्रकार के मनोयोग को विपय करने वाली गुप्ति का नाम सत्यामृषा है । सत्य और असत्य दोनो प्रकार के विषयो से रहित केवल कल्पना रूप मनोयोग को विषय करने वाली मनोगुप्ति का असत्यामृषा कहते हैं ।

इन चारो प्रकार की गुप्तियों से सबध रखने वाले समारम्भ और आरम्भ का त्याग करना और मन को शुभ भावो मे प्रवृत्त करना मनोगुप्ति है ।

सरंभ आदि को स्पष्ट करने के लिये निम्नलिखित उदाहरण दिये जाते हैं—

संरंभ—दूसरे को हानि पहुचाने का विचार करना । जैसे 'मैं ऐसा ध्यान करूंगा जिससे वह मर जायगा ।'

समारम्भ—दूसरो को हानि पहुचाने का प्रयत्न ना । जैसे दूसरो को पीडा या उच्चाटनादि करने वाला करना ।

आरंभ—दूसरो को हानि पहुचाना । जैसे दूसरे के

प्राणो को अत्यन्त क्लेश से हरने वाला ध्यान करना ।

पुन —मनोगुप्ति चार प्रकार की होती है—द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव । द्रव्य से—सक्लिष्ट (खराव) मनोयोग को रोके और शुभ मनोयोग को प्रवर्तावे । क्षेत्र से—सभी क्षेत्रो मे । काल से—जिस समय मन प्रवर्तावे । भाव से—उपयोग सहित मन को प्रवर्तावे ।

वचनगुप्ति

वचनगुप्ति चार प्रकार की होती है । सत्या, मृषा, सत्यामृषा और असत्यामृषा । इसका स्वरूप मनोगुप्ति के समान समझ लेना चाहिए । मनोयोग और मनोगुप्ति की जगह वचनयोग और वचनगुप्ति कहे इसमे भी सरम्भादि नीचे लिखे अनुसार है—

सरभ- दूसरो को मारने मे समर्थ ऐसो क्षुद्रविद्या गुणने के सकल्प को सूचित करने वाला शब्द वोलना । समारभ—दूसरो को पीडा उत्पन्न करने वाला मन्त्र गुनना । आरम्भ-प्राणियो के प्राणो का अत्यन्त क्लेशपूर्वक नाश करने मे समर्थ मन्त्रादि गुनना । इन सरभादिको मे प्रवृत्ति करने वाले वचन को साधु यतना से रोके और शुभवचन मे प्रवृत्ति करे ।

पुन —वचनगुप्ति चार प्रकार की है—द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव । द्रव्य से—अशुभवचन को रोके और शुभ वचन को प्रवर्तावे । क्षेत्र से—सब जगह । काल से जब बोले । भाव से—उपयोग सहित वचन बोले ।

कार्य गुप्ति

खडे रहने मे, वैठने मे, सोने मे किसी कारणवश ऊर्ध्वभूमिका या खाड वगैरह के उल्लंघन मे, सीधे चलने मे इन्द्रियों के शव्दादि विषयो मे, प्रवृत्ति करता हुआ साधु कायगुप्ति करे। वह इस प्रकार सरंभ, यष्टि मुष्टि आदि से ताडन करने के लिये तैयार होने मे, समारंभ–दूसरो को परिताप, (पीडा) करने वाले लात वगैरह के प्रहार मे, आरम्भ-वध करने मे प्रवृत्त होता हुआ साधु शरीर को इन कार्यो से रोके और शुभ कार्यो मे प्रवृत्त करे।

पुन —कायगुप्ति चार प्रकार की है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। द्रव्य से काया को अशुभ-व्यापार से रोके और शुभ व्यापार मे प्रवर्तावे। क्षेत्र से सभी क्षेत्रो मे जहा-जहां विचरे। काल से—कार्य आने पर यावज्जीव। भाव से—उपयोगसहित खड़ा रहे बैठे तथा सोवे।

पूर्वोक्त पाच समितिया शुभ चारित्र की प्रवृत्ति की प्रवृत्तिरूप कही गई है और तीन गुप्तिया अशुभ मनोयोगादि से सर्वथा निवृत्ति के लिए। उपलक्षण से शुभ व्यापार की निवृत्ति भी गुप्ति है क्योकि मन, वचन और काया का निर्व्यापार होना भी गुप्ति है।

पूर्वोक्त आठ प्रवचनमाताओं का जो मुनि सम्यक् आचरण करे अर्थात् पाले वह ससार से शीघ्र मुक्त जाता है।

इति पाचसमिति तीन गुप्ति का थोकड़ा सम्पूर्ण।

आहार के ४७ दोष

उद्गम के १६, उत्पादना के १६, एषणा के १० और माण्डला के ५, इस प्रकार आहार के ४७ दोष शास्त्रो मे बताए गये हैं।

गवेषणैषणा (उद्गम) के १६ दोष

गाथा

आहाकम्मुद्देसीय पूइकम्मे य मीसजाएय। ठवणा पाहुडियाए पाओअर कीय पामिच्चे ॥१॥ परियट्टिए अभि-हडे उब्भिन्ने मालोहडे इय। अच्छिज्जे अणि-सिट्ठे अज्झो-यरए य सोलसमे ॥२॥

प्रवचनसारोद्धार गा० ५६५-५६६

धर्मसंग्रह ३ अधिकार गा० २२ (टीका)

पिंडनिर्युक्ति गा० ९२-९३

पचाशक १३ वा गा० ५-६,

१ आधाकर्म—किसी खास साधु को मन मे रखकर उसके निमित्त से सचित्तवस्तु को अचित्त करना या अचित्त को पकाना आधाकर्म कहलाता है। यह दोष चार प्रकार से लगता है—प्रतिसेवन-आधाकर्मी आहार का सेवन करना। प्रतिश्रवण—आधाकर्मी आहार के लिये निमन्त्रण स्वीकार करना। संवसन-आधाकर्मी आहार भोगने वालो के साथ रहना। अनुमोदन-आधाकर्मी आहार भोगने वालो की प्रशंसा करना।

कायं गुप्ति

खडे रहने मे, बैठने मे, सोने में किसी कारणवश ऊर्ध्वभूमिका या खाड वगैरह के उल्लघन मे, सीधे चलने मे इन्द्रियों के शब्दादि विषयो मे, प्रवृत्ति करता हुआ साधु कायगुप्ति करे। वह इस प्रकार सरभ, यष्टि मुष्टि आदि से ताडन करने के लिये तैयार होने मे, समारभ–दूसरों को परिताप, (पीडा) करने वाले लात वगैरह के प्रहार मे, आरम्भ-वध करने मे प्रवृत्त होता हुआ साधु शरीर को इन कार्यो से रोके और शुभ कार्यो मे प्रवृत्त करे।

पुन —कायगुप्ति चार प्रकार की है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। द्रव्य से काया को अशुभ-व्यापार से रोके और शुभ व्यापार मे प्रवर्तावे। क्षेत्र से सभी क्षेत्रो मे जहा-जहा विचरे। काल से—कार्य आने पर यावज्जीव। भाव से—उपयोगसहित खडा रहे बैठे तथा सोवे।

पूर्वोक्त पाच समितिया शुभ चारित्र की प्रवृत्ति की प्रवृत्तिरूप कही गई है और तीन गुप्तिया अशुभ मनोयोगादि से सर्वथा निवृत्ति के लिए। उपलक्षण से शुभ व्यापार की निवृत्ति भी गुप्ति है क्योकि मन, वचन और काया का निर्व्यापार होना भी गुप्ति है।

पूर्वोक्त आठ प्रवचनमाताओ का जो मुनि सम्यक् प्रकार आचरण करे अर्थात् पाले वह ससार से शीघ्र मुक्त हो जाता है।

इति पाचसमिति तीन गुप्ति का थोकडा सम्पूर्ण।

आहार के ४७ दोष

उद्‌गम के १६, उत्पादना के १६, एषणा के १० और माडला के ५, इस प्रकार आहार के ४७ दोष शास्त्रो मे बताए गये हैं ।

गवेषरणैषणा (उद्‌गम) के १६ दोष

गाथा

आहाकम्मुद्देसीय पूइकम्मे य मीसजाएय । ठवणा पाहुडियाए पाओअर कीय पामिच्चे ॥१॥ परियट्टिए अभि-हडे उब्भिन्ने मालोहडे इय । अच्छिज्जे अणि-सिट्ठे अज्झो-यरए य सोलसमे ॥२॥

प्रवचनसागर गा० ५६५-५६६

धर्मसग्रह ३ अधिकार गा० २२ (टीका)

पिंडनियुंक्ति गा० ९२-९३

पचाशक १३ वा गा० ५-६,

१ आधाकर्म—किसी खास साधु को मन मे रखकर उसके निमित्त से सचित्तवस्तु को अचित्त करना या अचित्त को पकाना आधाकर्म कहलाता है । यह दोष चार प्रकार से लगता है—प्रतिसेवन—आधाकर्मी आहार का सेवन करना । प्रतिश्रवण—आधाकर्मी आहार के लिये निमन्त्रण स्वीकार करना । सवसन—आधाकर्मी आहार भोगने वालो के साथ रहना । अनुमोदन—आधाकर्मी आहार भोगने वालो की प्रशसा करना ।

२ औद्देशिक—सामान्य याचको को देने की बुद्धि से जो आहारादि तैयार किये जाते है, उन्हे औद्देशिक कहते है। इसके दो भेद हैं—ओघ और विभाग। भिक्षुको के लिए अलग तैयार न करते हुए अपने लिये बनते हुए आहारादि मे ही कुछ और मिला देना ओघ है। विवाहादि मे याचको के लिए अलग निकाल कर रख छोडना विभाग है। यह उद्दिष्ट, कृत और कर्म के भेद से तीन प्रकार का है। फिर प्रत्येक के उद्देश, समुद्देश, आदेश और समादेश इस तरह चार-चार भेद हैं। इन सब की विस्तृत व्याख्या ऊपर लिखे हुए ग्रन्थों से जाननी चाहिये। किसी खास साधु के लिये बनाया गया आहार अगर वही साधु ले तो आधा कर्म है, दूसरा ले तो औद्देशिक। आधा कर्म पहले से ही किसी खास निमित्त से बनाया जाता है। औद्देशिक साधारण दान के लिये पहिले या बाद मे कल्पित्त किया जाता है।

२ पूतिकर्म—शुद्ध आहार मे आधाकर्मादि का अंश का मिल जाना पूति कर्म है। आधाकर्मी आहार का थोडा-सा अंश शुद्ध और निर्दोष आहार को सदोष बना देता है। शुद्ध चारित्र पालने वाले संयमी के लिये वह अकल्पनीय है। जिसमें ऐसे आहार का अंश लगा हो, ऐसे बर्तन को भी टालना चाहिये।

४ मिश्रजात—अपने और साधु के लिये एक साथ पकाया हुआ आहार मिश्रजात कहलाता है। इसके तीन भेद है—यावदर्थिक, पाखंडिमिश्र और साधुमिश्र। जो आहार अपने लिए और सभी याचकों के लिये इकट्ठा बनाया जाय वह यावदर्थिक है। जो अपने और साधु-सन्यासियो के लिये इकट्ठा बनाया जाय वह पाखण्डिमिश्र

है। जो सिर्फ अपने और साधुओ के लिये इकट्ठा तैयार किया जाय वह साधुमिश्र है।

५ स्थापन—साधु को देने की इच्छा से कुछ काल के लिये आहार को अलग रख देना स्थापना है।

६ प्राभृतिका—साधुजी को विशिष्ट आहार बहराने के लिए जीमनवार या निमन्त्रण के समय को आगे पीछे-पीछे करना।

७ प्रादुष्करण—देय वस्तु के अंधेरे मे होने पर अग्नि, दीप, मणि आदि का उजाला करके या खिड़की वगैरह निकाल कर वस्तु को प्रकाश मे लाना अथवा आहारादि को अन्धेरी जगह से प्रकाशवाली जगह मे लाना प्रादुष्करण है।

८ क्रीत—साधु के लिए मोल लिया हुआ आहारादि क्रीत कहलाता है।

९ प्रामित्य—(पामिच्चे) साधु के लिये उधार लिया हुआ आहारादि।

१० परिवर्तित—साधु के लिये अट्टा-सट्टा करके लिया हुआ आहार।

११ अभिहृत—(अभिहडे) साधु के लिये गृहस्थ द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाया हुआ आहार।

१२ उद्भिन्न—साधु को घी वगैरह देने के लिये कुप्पी आदि का मुह (छाणन) खोल कर देना।

१३ मालापहृत – ऊपर नीचे या तिरछी दिशा मे जहा आसानी से हाथ न पहुच सके वहा पजो पर खडे होकर या नि सरणी आदि लगाकर आहार देना। इसके चार भेद है—उर्ध्व, अध, उभय और तिर्यक्। इनमे से भी हर एक के जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम रूप से तीन-तीन भेद हैं। एडिया उठा कर हाथ फैलाते हुए छत मे टगे छीके वगैरह से कुछ निकालना जघन्य ऊर्ध्वमालाहृत है। सीढी वगैरह लगाकर ऊपर के मजिल से उतारी गई वस्तु उत्कृष्ट ऊर्ध्वमालाहृत है। इनके बीच मे रहने वाली वस्तु मध्यम है। इसी तरह अध, उभय और तिर्यक् के भेद भी जानने चाहिये।

१४ आच्छेद्य—निर्बल व्यक्ति या अपने आश्रित रहने वाले नौकर-चाकर और पुत्र वगैरह से छीन कर साधुजी को देना। इसके तीन भेद है—स्वामिविषयक, प्रभुविषयक और स्तेन विषयक। ग्राम का मालिक स्वामी कहा जाता है। अपने घर का प्रभु। स्तेन अर्थात् लुटेरा। इसमे से कोई किसी से कुछ छीनकर साधुजी को दे तो क्रमश तीन दोष लगते हैं।

नोट—उद्गम के १६ दोषो का निमित्त गृहस्थ अर्थात् देने वाला होता है।

ग्रहणैषणा (उत्पादना) के १६ दोष

धाई दूई निमित्ते आजीव वणीमगे तिगिच्छा य।
कोहे माणे माया लोभे य हवंति दस एए ।१।
पुव्विपच्छा सथव विज्मा मते य चुण्ण जोगे य।
उप्पायणाइ दोसा सोलसमे मूलकम्मे य ।।२।।

प्रवचनसार ५६७-५६८
धर्मसग्रह -३ रा २२ गाथा (टीका)
पिडनियुंक्ति ४०८-४०९
पचाशक १३ वा गाथा १९-२०

१ धात्री—बच्चे को खिलाना-पिलाना आदि धाय का काम करके या किसी घर मे धाय की नौकरी लगवा कर आहार लेना।

२ दूती—एक दूसरे का सदेश गुप्त या प्रकट रूप से पहुचा कर दूत का काम करके आहारादि लेना।

३—निमित्त-भूत और भविष्यत् को जानने के शुभाशुभ निमित्त बताकर आहारादि लेना।

४ आजीव—स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से अपनी जाति और कुल वगैरह प्रकट करके आहारादि लेना।

५ वनीपक—श्रमण, शाक्य सन्यासी आदि मे जो

जिसका भक्त हो उसके सामने उसी की प्रशंसा करके या दीनता दिखाकर आहारादि लेना वनीपक दोष है ।

६ चिकित्सा—औषधि करना या बताना आदि चिकित्सक का काम करके आहारादि उपार्जन करना ।

७ क्रोध—क्रोध करके या गृहस्थ को शापादि का भय दिखाकर भिक्षा लेना ।

८ मान—अभिमान से अपने को प्रतापी तपस्वी, बहुश्रुत बताते हुए अपना प्रभाव जमाकर आहार लेना ।

९ माया—वञ्चना या छलना करके आहारादि उपार्जन करना ।

१० लाभ—आहार में लोभ पैदा करना । अर्थात् भिक्षा के लिए जाते समय जीभ के लालच से यह निश्चय करके निकलना की आज तो अमुक वस्तु ही खायेंगे और उसके अनायास न मिलने पर इधर-उधर ढूढना तथा दूध वगैरह मिल जाने पर जिह्वा स्वादवश होकर चीनी आदि के लिये इधर-उधर भटकना लोभपिंड है ।

११ प्राक्पश्चात्सस्तव—(पुव्विपच्छासथव) आहार लेने के पहिले या पीछे देने वाले की प्रशसा करना ।

१२ विद्या—स्त्री-रूप देवता से अधिष्ठित या जप-होम आदि से सिद्ध होने वाली अक्षरो की रचना विशेष को विद्या कहते हैं । विद्या का प्रयोग करके आहारादि लेना विद्यापिंड है ।

१३ मन्त्र—पुरुषरूप देवता के द्वारा अधिष्ठित ऐसी अक्षर रचना जो पाठमात्र से सिद्ध हो जाय उसे मन्त्र कहते हैं। मन्त्र के प्रयोग से लिए जाने वाले आहारादि मन्त्रपिंड है।

१४ चूर्ण—अदृश्य करने वाले सुरमे आदि का प्रयोग करके जो आहारादि लिए जाये उन्हे चूर्णपिंड कहते हैं।

१५ योग—पांव लेप आदि सिद्धिया बताकर जो आहारादि लिये जायें उन्हे योगपिंड कहते हैं।

१६ मूलकर्म—गर्भस्तम्भन, गर्भाधान, गर्भपात आदि ससार-सागर मे भ्रमण कराने वाली सावद्यक्रियाओं का करना मूलकर्म है।

नोट—उत्पादना के दोष साधु से लगते हैं। इनका निमित साधु ही होता है।

एषणा के १० दोष

सकिय मक्खिय निक्खित्त पिहिय
साहरिय दायगुम्मीसे।
अपरिणय लित्त छड्डिय एसण-
दोसा दस हवति ॥

पिंडनियुक्ति गा० ५२०
पचाशक १३ वा गाथा २६
प्रवचनसार गाथा ५६८
धर्मसंग्रह ३ रा गाथा २२ (टीका)

१ संकीय—आहार से आधाकर्मादि दोषो का सन्देह होने पर भी उसे लेना ।

२ मक्खीय—(म्रक्षित) देते समय आहार या हाथ कुडछी वगैरह का सचित वस्तु से छू जाना (संघटा होना) म्रक्षित है । इसके दो भेद है—सचित म्रक्षित और अचित्त म्रक्षित, सचितम्रक्षित तीन तरह का है—पृथ्वीकायम्रक्षित, अपकायम्रक्षित और वनस्पतिकायम्रक्षित । यदि देय वस्तु या हाथ वगैरह पृथ्वीकाय से छू जाय तो पृथ्वीकायम्रक्षित है । अप्कायम्रक्षित के चार भेद है—पुर कर्म, पश्चात्कर्म, सस्निग्ध और उदकार्द्र । साधु को दान देने से पहिले साधु के निमित्त से हाथ वगैरह धोना पुरःकर्म है । दान देने के बाद धोना पश्चात्कर्म है । हाथ वगैरह अगर थोड़े से पानी से भीगे हुए हो तो सस्निन्घ दोष है । अगर जल का सम्बन्ध स्पष्ट मालूम पडे तो उदकार्द्र दोष है, थोडी देर पहिले काटे हुए आम वगैरह का अंश जिस हाथ मे लगा हुआ हो वह वनस्पतिकाय म्रक्षित है ।

अचित्तम्रक्षित दो तरह का है । गर्हित और अगर्हित । जिस हाथ या दी जाने वाली वस्तु में कोई घृणित वस्तु लगी हो तो वह गर्हित है । घी वगैरह लगा हुआ हो तो वह अगर्हित है ।

इनमे सचित्तम्रक्षित साधु के लिये सर्वथा अकल्प्य । घृतादि वाला अगर्हित अचित्तम्रक्षित कल्प्य है । घृणित वस्तु वाला गर्हित अकल्प्य है ।

३ निक्खित्त—(निक्षिप्त) दी जाने वाली वस्तु

सचित्त के ऊपर रक्खी हो तो निक्षिप्त दोष लगता है। इसके पृथ्वी काय आदि छह भेद हैं।

४ पिहिय—(पिहित) देय वस्तु सचित्त के द्वारा ढ़की हुई हो। इसके भी पहिले की तरह छह भेद हैं।

५ साहरिय—जिस बर्तन मे असूजती वस्तु पडी हो उससे असूजती वस्तु निकाल कर उसी से आहारादि देना।

६ दायक—बालक आदि दान देने से अनधिकारी से आहारादि लेना दायक दोष है। पिंडनियुक्ति मे ४० प्रकार के दायक दोष बतलाये हैं। वे निम्नलिखित हैं।

बाले बुड्ढे मत्ते उम्मत्ते थेविरे य जरिए य।
अ धिल्लए पगरिए आरूढे पाडयाहिं च।
हत्थिदुनियलद्धे विवज्जिए चेव हत्थपाएहिं।
तेरासि गुव्विणी बालवच्छ भु जति भुसुलिंति।
भज्जती य दलतो कडती चेव त य पीसती।
पीजती रु चती कत्त ति पमद्दमाणी य।
छक्कायवग्गहत्था समणट्ठा निक्खिवितु ते चेव।
ते चेवोगाहती सघट्टता रभति य॥

ससत्तेण य दव्वेण लित्तहत्था य लित्तमत्ता य।
उव्वत्तती साहारण व दीती य चोरियय॥

पाहुडिय च ठवती सपच्चवाया पर च उद्दिस्स।
आभोगमणाभोगेण दलती वज्जणिज्जा ए॥

१ वाला—वालक के नासमझ और घर मे अकेले होने पर उससे आहार लेना वर्जित है ।

२ वृद्ध—जिसके मुंह मे लाला वगैरह पड रही हो।

३ मत—शराब वगैरह पिया हुआ ।

४ उन्मत्त—घमण्डी या पागल जो ग्रह, वात, या और किसी बिमारी से अपनी विचार-शक्ति खो चुका हो ।

५ वेपमान—जिसका शरीर काप रहा हो ।

६ ज्वरित—ज्वर रोग से पीड़ित ।

७ अन्ध—जिसकी नजर चली गई हो ।

८ प्रगलित—गलित कुष्ट वाला ।

९ आरूढ—खडाऊं या जूते वगैरह पहिना हुआ ।

१०–११ वद्ध—हथकडी या बेडियो से बधा हुआ । बधा हुआ दायक जब भिक्षा देता है तो देने और लेने वाले दोनों को दुःख होता है इस कारण से आहार लेने की तर्जना है । दाता को अगर देने मे प्रसन्नता हो या साधु का ऐसा अभिग्र हो तो लेने मे दोष नही है ।

हाथ वगैरह सुविधा पूर्वक नही धो सकने के कारण उसके अशुचि होने की भी आशका है । अशुचिता से होने वाली लोकनिन्दा से बचना भी ऐसे आहार को वर्जने का कारण है ।

१२ छिन्न—जिसके हाथ या पैर कटे हुए हो ।

१३ त्रैराशिक—नपुसक । नपुसक से परिचय साधु के लिए वर्जित है । इसलिए उससे बार-बार भिक्षा नही लेना चाहिये । लोकनिन्दा से बचनें के लिये उससे भिक्षा लेना वर्जित है ।

१४ गर्बिणी—गर्भवती ।

१५ बाल-वत्सा—दूध पीते बच्चे वाली । छोटे बच्चे के लिये माता को हर वक्त सावधान रहना चाहिये । अगर वह बालक को जमीन या चारपाई वगैरह पर सुला कर भिक्षा देने के लिए जाती तो बिल्ली आदि से बालक को हानि पहुचने का भय है । उस समय आहार वर्जने का यही कारण है ।

१६ भुञ्जाना—भोजन करती हुई । भोजन करते समय भिक्षा देने के लिए कच्चे पानी से हाथ धोने मे हिंसा होती है । नही धोने पर जूठे हाथो से भिक्षा लेने मे लोक निन्दा है । भोजन करते हुए से भिक्षा न लेने का यही कारण है ।

१७ घुसुलिन्त—दही वगैरह बिलौती हुई । उस समय भिक्षा देने के लिये उठने मे हाथ से दही टपकता रहता है । इससे नीचे चलती हुई कीडी आदि की हिंसा होने का भय है । इसी कारण से उस समय आहार लेना वर्जित है ।

१८ भर्जमाना—कडाही वगैरह मे चने आदि भूनती हुई ।

१९ **दलयन्ती**—चक्की मे गेहू वगैरह पीसती हुई।

२० **कण्डयन्ती**—ऊखली मे धान वगैरह कूटती हुई।

२१ **पिषन्ती**—शिला पर तिल–आमले वगैरह पीसती हुई।

२२ **पिंजयन्ती**—रूई वगैरह पीजती हुई।

२३ **रुंचन्ती**—चरखी (कपास से बिनौले अलग करने की मशीन) द्वारा कपास बेलती हुई।

२४ **कृतंन्ती**—कातती हुई। भिक्षा देकर हाथ धोने के कारण।

२५ **प्रमृन्दती**—हाथो से रुई को पोला करती हुई। भिक्षा देकर हाथ धोने के कारण।

२६ **षट्कायव्यग्रहस्ता**-जिसके हाथ पृथ्वी, जल, अग्नि वायु वनस्पति या त्रसजीवो मे रूधे हुए हो।

२७ **निक्षियन्ती**—साधु के लिए उन जीवो को भूमि पर रख आहार देती हुई।

२८ **अवगाहमाना**—उन जीवो को पैरो से हटाती हुई।

२९ **संघट्टयन्ती**—शरीर के दूसरे अंगो से छूती हुई।

३० **आरंभमाला**—षट्काय की विराधना करती

हुई । कुदाली आदि से जमीन खोदना पृथ्वीकाय का आरम्भ है । स्नान करना, कपड़े धोना, वृक्ष बेल वगैरह सीचना अप्काय का आरम्भ है । आग मे फूक मारना अग्नि और वायुकाय का आरम्भ है । सचित्त वायु से भरे हुए गोले वगैरह को इधर-उधर फेंकने से भी वायुकाय का आरम्भ होता है । वनस्पति (लीलोती) काटना या धूप मे सुखाना, चावल, मूग वगैरह बीनना वनस्पति काय का आरम्भ है । त्रस जीवो की विराधना त्रसकाय का आरम्भ है । इसमे से कोई भी आरभ करते हुए से भिक्षा लेने मे दोष है ।

३१ लिप्तहस्ता—जिसके हाथ दही वगैरह चिकनी वस्तु से भरे हो ।

३२ लिप्तमाला—जिसका बर्तन चिकनी वस्तु से लिप्त हो । इन दोनो मे चिकनापन रहने से ऊपर के जीवो की हिंसा का भय है ।

३३ उद्वर्तयन्ती—किसी बडे मटके या बर्तन को उलट कर उसमे से कुछ देती हुई ।

३४ साधारणदात्री—बहुतो के अधिकार की वस्तु देती हुई ।

३५ चौरितदात्री—चुराई हुई वस्तु को देती हुई ।

३६ प्राभृतिकां स्थापयन्ती—साधु को देने के लिए पहिले से ही आहारादि को बड़े बर्तन से निकाल कर छोटे बर्तन मे अलग रखती हुई ।

३७ सप्रत्यपाया—जिस देने वाली मे किसी तरह के दोष की सभावना हो।

३८ अन्यार्थ स्थापिदात्री—विवक्षित साधु के अतिरिक्त किसी दूसरे साधु के लिए रखे हुए अशनादि को देने वाली।

३९ अभोगेन ददती—'साधुओ को इस प्रकार का आहार नही कल्पता' यह जानकर भी दोषवाला आहार देती हुई।

४० अनाभोगेन ददती—बिना जाने दोषवाला आहार बहराती हुई।

इन चालीस मे से आरम्भ के पच्चीस दायको से आहार लेने की भजना है। अर्थात् अवसर देख कर उन से भी आहार लेना कल्पता है। बाकी पन्द्रह से आहार लेना साधु को बिल्कुल नही कल्पता।

७ उन्मिश्र—अचित्त के साथ सचित्त या मिश्र मिला हुआ अथवा सचित्त या मिश्र के साथ अचित्त मिला हुआ आहार।

८ अपरिणत—जो वस्तु पूरे पाक के बाद निर्जीव न हुई हो अर्थात् आधी कच्ची और आधी पकी हुई हो।

९ लिप्त—चिकनी चुपडी गरिष्ट वस्तुए जिन्हे खाने से सयम-पालन मे बाधा हो और जिन्हे देने के बाद हाथ वगैरह धोने पड़े।

१० छर्दित—जिसके छीटे नीचे पड रहे हो ऐसा आहार ।

नोट—एषरणा के दस दोष साधु और गृहस्थ दोनो के निमित्त से होते हैं ।

ग्रासैषणा (माडला) के पाच दोष सजोयणा पवाण च । इगाल, धूम कारण ।

धर्मसग्रह ३ अ, २३ गाथा (टीका)
पिंडनियुक्ति १ गाथा

१ **सयोजना**—अच्छा स्वाद या गन्ध उत्पन्न करने के लिए खाद्य वस्तुओ को मिलाना सयोजना दोष है ।

२ **प्रमाण**—तृष्णा और जिह्वास्वाद के लिए खुराक से अधिक आहार करना प्रमारग दोष है । प्रत्येक व्यक्ति को उदर मे छह भाग करने चाहिए । उनमे से तीन भाग अन्न से भरे, दो पानी से और एक हवा के लिए खाली छोड दे ।

३ **इंगाल**—भोजन मे गृद्ध होकर उसके स्वाद वगैरह की प्रशसा करते हुए खाना इगाल दोष है । यह गृद्धपना सयम को कोयले की तरह जला देता है ।

४ **धूम**—प्रतिकूल रूप, रस और गन्ध की निन्दा करते हुए भोजन से घृणा करके खाना । यह दोष चारित्र रूपी ईधन के धूए की तरह है ।

५ **कारण**—सयमादि की रक्षा के लिये साधु छह

कारणो से आहार करे। उन कारणो के न होने पर भी आहार करने से कारण दोष लगता है।

१ **वेदना**—क्षुधावेदनीय की शान्ति के लिये।

२ **वैयावृत्य**—अपने से वडे आचार्यादि की वैयावृत्य करने के लिये।

३ **ईर्यापथ**—मार्गादि की शुद्धि के लिये।

४ **सयमार्थ**—प्रेक्षादि सयम की रक्षा के लिये।

५ **प्राणप्रत्ययार्थ**—अपने प्राणो की रक्षा के लिये।

६ **धर्मचिन्तार्थ**—शास्त्र पठन-पाटन आदि धर्मचिन्ता के लिए। ऊपर लिखे छह कारणो से साधु भोजन करे। नीचे लिखे छह कारण उपस्थित होने पर छोड दे।

१ **आतंक**—बीमार होने पर।

२ **उपसर्ग**—राजा, स्वजन, देव, तिर्यञ्च आदि द्वारा उपसर्ग किए जाने पर।

३ **ब्रह्मचर्यगुप्ति**—ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये।

४ **प्राणिदयार्थ**—प्राण, भूत, जीव और सत्वो की रक्षा के लिये।

५ **तपोहेतु**—तप करने के लिये।

६ संलेखना—अन्तिम समय मे सथारे से शरीर छोडने के लिये ।

पिडनियुक्ति गा. ६३५-६६८

ये पांच ग्रासैषणा अर्थात् माडला के दोष साधुओ को लगते हैं ।

॥ इति आहारादि के ४७ दोष ॥

भाग २

तैंतीस बोल

उपयोग का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र २६ वा पद)

उपयोग के दो भेद—साकार-उपयोग और अनाकार-उपयोग । साकार-उपयोग आठ प्रकार का है—पाच ज्ञान और तीन अज्ञान । पाच ज्ञान-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान । तीन अज्ञान-मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान, विभंगज्ञान । अनाकार-उपयोग के चार भेद-चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन । समुच्चय जीव मे दोनो उपयोग पाये जाते हैं—साकार-उपयोग और अनाकार-उपयोग । समुच्चय जीव मे साकार-उपयोग आठ प्रकार का और अनाकार-उपयोग चारो प्रकार का पाया जाता है । नैरयिक, देव और तिर्यंच पचेन्द्रियो

मे दोनो उपयोग-साकार-उपयोग, अनाकार-उपयोग पाये जाते हैं, साकार-उपयोग मे तीन ज्ञान और तीन अज्ञान और अनाकार-उपयोग मे तीन दर्शन पाये जाते है। पाच स्थावरो मे दोनो उपयोग होते हैं। साकार-उपयोग मे दो अज्ञान (मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान) और अनाकार उपयोग मे एक अचक्षुदर्शन पाया जाता है। विकलेन्द्रियो मे दोनो उपयोग पाये जाते हैं। साकार-उपयोग मे दो ज्ञान, दो अज्ञान और अनाकार उपयोग मे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय मे एक अचक्षुदर्शन तथा चतुरिन्द्रिय में दो चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन पाये जाते है। मनुष्य मे समुच्चय जीव की तरह कहना। सिद्ध भगवान् मे दोनो उपयोग पाये जाते है। साकार-उपयोग मे केवलज्ञान और अनाकार-उपयोग मे केवलदर्शन जानना चाहिये।

पश्यत्ता (पासणया) का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र ३० वा पद)

'पश्यत्ता' शब्द दृशिर्—देखना धातु से बना है किन्तु रूढ़िवश 'पश्यत्ता' शब्द यहा साकार अनाकार ज्ञान का तपादक है। पश्यत्ता के दो भेद हैं—साकारपश्यत्ता और नाकारपश्यत्ता। त्रैकालिक अर्थात् तीनो काल विषयक ज्ञान साकारपश्यत्ता है और स्पष्ट रूप से देखना अनाकार-पश्यत्ता है। साकार पश्यत्ता के छह-भेद-हैं—श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान और श्रुतअज्ञान, विभगज्ञान। अनाकारपश्यत्ता के तीन भेद हैं- चक्षुदर्शन,

अवधिदर्शन और केवलदर्शन । समुच्चय जीव और चौबीस दण्डक मे दोनो-साकारपश्यत्ता और अनाकारपश्यत्ता पाई जाती है । समुच्चय जीव मे साकारपश्यत्ता के छहो भेद और अनाकारपश्यत्ता के तीनो भेद पाये जाते हैं । नैरयिक, देव और तिर्यंच पचेन्द्रियो मे साकारपश्यत्ता के चार भेद–श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, श्रृत-अज्ञान, विभगज्ञान पाये जाते जाते हैं और अनाकारपश्यत्ता के दो भेद–चक्षुदर्शन, अवधि-दर्शन-पाये जाते हैं । पाच स्थावर मे साकारपश्यत्ता का एक भेद-श्रुत अज्ञान पाता है । द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय मे साकारपश्यत्ता के दो भेद–श्रुतज्ञान और श्रुत-अज्ञान पाये जाते हैं । इनके चक्षुरिन्द्रिय न होने से अनाकारपश्यत्ता नही पायी जाती है । चतुरिन्द्रिय मे साकारपश्यत्ता के दो भेद–श्रुतज्ञान और श्रुत-अज्ञान पाये जाते हैं और अनाकार-पश्यत्ता का एक भेद-चक्षुदर्शन पाया जाता है । मनुष्य मे समुच्चय जीव की तरह कहना चाहिये । सिद्ध भगवान् मे दोनो पश्यत्ता पाई जाती हैं । साकारपश्यत्ता मे केवलज्ञान और अनाकारपश्यत्ता मे केवलदर्शन पाया जाता है ।

---

३. संज्ञीपद का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, ३१ वा पद)

नेरइय-तिरिय-मणुया य, वणयरसुराय सण्णीऽसण्णी य । वेगलिंदिया असण्णी, जोइस-वैमाणिया सण्णी ॥

समुच्चय जीव सज्ञी×असज्ञी और नोसज्ञी-नोअसंज्ञी है। समुच्चय जीव की तरह मनुष्य भी सज्ञी, असज्ञी और नो-सज्ञी-नोअसज्ञी हैं। नैरयिक, दस भवनपति, व्यन्तर, तिर्यंच पचेन्द्रिय संज्ञी और असज्ञी हैं, किन्तु नोसज्ञी-नो-असज्ञी नही हैं। पाच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय असज्ञी है। ज्योतिषी और वैमानिक देव संज्ञी है। सिद्ध भगवान् सज्ञी नही, असंज्ञी नही, किन्तु नोसज्ञी-नोअसज्ञी है।

—❀—

४. संयती पद का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, ३२ वां पद)

सजय अस्सजय मीसगा य, जीवा तहेव मणुया य।
सजतरहिया तिरिया, सेसा अस्सजता होंति॥

× यहा सज्ञी मे से आकार उत्पन्न होने वाले को सज्ञी माना है और असंज्ञी मे से उत्पन्न होने वाले को असज्ञी कहा है। ज्योतिषी, वैमानिक असज्ञी में से उत्पन्न ही होते, सज्ञी मे से ही उत्पन्न होते हैं, अत इन्हे सज्ञी है। नैरयिक, भवनपति, व्यन्तर देव, तिर्यंच, पचेन्द्रिय र मनुष्य सज्ञी और असज्ञी दोनो मे से उत्पन्न होते हैं, त इन्हे संज्ञी, असंज्ञी दोनों कहा है। पाच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय मन वाले नही हैं, अत इन्हे असज्ञी कहा है।

समुच्चय जीव संयत, असयत, सयतासयत, नोसयत, नोअसयत, नोसयतासयत होता है। तिर्यंच, पचेन्द्रिय और मनुष्य के सिवाय शेष २२ दण्डक के जीव असयत होते हैं। तिर्यंच पचेन्द्रिय असयत और सयतासयत होते हैं और मनुष्य सयत, असयत और सयतासयता होते है। सिद्ध भगवान् न सयत होते हैं, न असयत होते है और न सयतासयत होते है किन्तु तेवे नोसयत, नो असयत और नो सयतासयत होते हैं।

५. अवधिपद का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, ३३ वाँ पद)

भेद विसय सैठाणे, अब्भतर-बाहिरे य देसोही।
ओहिस्स य खय-वुड्ढी, पडिवाई चेवऽपडिवाई॥

इस थोकडे मे आठ द्वारो से अवधिज्ञान का वर्णन किया जाता है-१ भेदद्वार, २ विषयद्वार, ३. सस्थानद्वार, ४ आभ्यन्तर-वाह्यद्वार, ५ देश-अवधि सर्व-अवधिद्वार, ६ हीयमान, वर्धमान, अवस्थितद्वार, ७ अनुगामी अननुगामीद्वार, ८ प्रतिपाती-अप्रतिपातीद्वार।

(१) भेदद्वार—अवधिज्ञान के दो भेद हैं—भवप्रत्यय और क्षायोपशमिक। नैरयिक और देव के भवप्रत्यय अवधिज्ञान होता है। मनुष्य और तिर्यंचपचेन्द्रिय के क्षायोपशमिक अवधिज्ञान होता है।

(२) विषयद्वार—नैरयिक के अवधिज्ञान का विषय जघन्य आधे कोश (गउ) का और उत्कृष्ट चार कोश का है। पहली नरक से सातवी नरक तक के नैरयिक के अवधिज्ञान का विषय इस प्रकार है—

नाम	जघन्य विषय	उत्कृष्ट विषय
१. रत्नप्रभा	साढे तीन कोश	चार कोश
२. शर्कराप्रभा	तीन कोश	साढे तीन कोश
३ वालुकाप्रभा	ढाई कोश	तीन कोश
४ पकप्रभा	दो कोश	ढाई कोश
५ धूमप्रभा	डेढ कोश	दो कोश
६ तम प्रभा	एक कोश	डेढ कोश
७. तमस्तम प्रभा	आधा कोश	एक कोश

असुरकुमार देव× के अवधिज्ञान का विषय जघन्य पचीस योजन, उत्कृष्ट असख्यात द्वीप-समुद्र है। इतना विशेष जानना कि पल्योपम की आयु वाले असुरकुमार देवो के अवधिज्ञान का विषय सख्यात द्वीप-समुद्र है और सागरोपम की आयुवाले असुरकुमार देवो के अवधिज्ञान का विषय असख्यात द्वीप-समुद्र है नागकुमार आदि नव निकाय× के देवो और व्यन्तर देवो× के अवधिज्ञान का विषय जघन्य २५ योजन, उत्कृष्ट सख्यात द्वीप-समुद्र है।

× भवनपति और वाणव्यतर देवो मे अवधिज्ञान का विपय जघन्य पचीस योजन कहा है, वह दस हजार वर्ष की स्थिति वाले असुरकुमार देवो की अपेक्षा समझना।

तिर्यंचपचेन्द्रिय के अवधिज्ञान का विषय जघन्य अगुल का असख्यातवा भाग, उत्कृष्ट असख्यात द्वीप-समुद्र है। मनुष्य के अवधिज्ञान का विषय जघन्य अगुल का असख्यातवा भाग, उत्कृष्ट सपूर्ण लोक है तथा अलोक के लोक-प्रमाण असख्यात खण्ड जानने का सामर्थ्य है, किन्तु अलोक मे अवधिज्ञान के विषय रूपी द्रव्य नही हैं।

ज्योतिषी देवो के अवधिज्ञान का विषय जघन्य उत्कृष्ट सख्यात द्वीप-समुद्र है। पहले, दूसरे देवलोक के देवो+के अवधिज्ञान का विषय जघन्य अगुल का असख्यातवा भाग, उत्कृष्ट नीचे रत्नप्रभापृथ्वी का नीचे का चरमान्त, तिर्छे असख्यात द्वीप-समुद्र तथा ऊपर अपने-अपने विमान की ध्वजा-पताका तक है। तीसरे, चौथे देवलोक के देवो के अवधिज्ञान का विपय पहले, दूसरे देवलोक के देवो के समान है किन्तु इतना अन्तर है कि नीचे दूसरी शर्कराप्रभापृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक जानते-देखते हैं। पाचवें, छठे देवलोक के देव नीचे तीसरे वालुकाप्रभापृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक, सातवें, आठवें देवलोक के देव नीचे चौथी पकप्रभापृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक, नौवें से बारहवें देवलोक के देव, नीचे पाचवी धूमप्रभापृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक, नवग्रैवेयक के नीचे की और बीच की त्रिक के देव नीचे छठी तम प्रभापृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक

+वैमानिकदेव जघन्य अगुल के असख्यातवें भाग को जानते देखते हैं जो कहा है, वह पूर्वभव की अपेक्षा से कहा है।

और ऊपर की त्रिक के देव नीचे सातवी तमस्तमप्रभापृथ्वी के नीचे चरमान्त तक जानते-देखते है। ये सभी तिर्छे असंख्यात द्वीप-समुद्र और ऊपर अपने-अपने विमान की ध्वजा-पताका तक जानते-देखते है। पाच अनुत्तर विमान के देव-संभिभलोकनाडी अर्थात् पूरी चौदह राजू प्रमाण लोकनाड़ी को जानते-देखते है।

(३) सस्थानद्वार—नेरयिक के अवधिज्ञान का संस्थान आकार तप्र×जैसा होता है। भवनपतिदेवो के अवधिज्ञान का सस्थान पल्लग+(पल्लक-पाला) जैसा होता है। तिर्यंचपचेन्द्रिय और मनुष्य के अवधिज्ञान का संस्थान नाना प्रकार का होता है। व्यन्तरदेवो के अवधिज्ञान का सस्थान पटह (ढोल) सरीखा और ज्योतिपोदेवों के अवधिज्ञान का सस्थान झल्लरी (झालर) जैसा होता है। बारह देवलोक के देवो के अवधिज्ञान का सस्थान खडी मृदग के आकार का होता है। नवग्रैवेयक के देवों के

X तप्र का अर्थ टीका मे 'नदी के प्रवाह मे दूर से बहता हुआ काष्ठ समुदाय' बताया है। यह काष्ठसमुदाय लम्बा और त्रिकोण होता है, इसी तरह नैरयिक के अवधिज्ञान का सस्थान भी लम्बा और त्रिकोण होता है। थोकडे जानने वाले तिपाई का आकार कहते हैं।

+ 'पल्लग' लाट देश मे प्रसिद्ध धान्य रखने का विशेष प्रकार का पात्र है। जो नीचे और ऊपर लम्बा होता है और उपरिभाग मे कुछ सकरा होता है।

अवधिज्ञान का संस्थान गूंथे हुए फूलो के शिखर वाला—फूलो की चंगेरी जैसा तथा अनुत्तर विमान के देवो के अवधिज्ञान का संस्थान जवनालिका अर्थात् कन्या की चोली (कंचुक) जैसा होता है।

(४) आभ्यन्तर-बाह्यद्वार—जो अवधिज्ञान निरन्तर अवधिज्ञानी के साथ रहता है और सभी दिशाओ मे अपने जानने योग्य क्षेत्र को जानता हैं, उसे आभ्यन्तर-अवधिज्ञान कहते हैं। जो अवधिज्ञान सदा अवधिज्ञानी के साथ नही रहता, बीच-बीच मे विच्छिन्न हो जाता है, वह बाह्य-अवधिज्ञान है। आभ्यन्तर-अवधिज्ञान जन्म से साथ आता है और बाह्य-अवधिज्ञान पीछे से उत्पन्न होता है। नैरयिक और देव के तेरह दण्डक मे आभ्यन्तर–अवधिज्ञान होता है। तिर्यंचपंचेन्द्रिय मे बाह्य–अवधिज्ञान होता है। मनुष्य मे आभ्यन्तर और बाह्य दोनो अवधिज्ञान होते हैं।

(५) देश-अवधि सर्व-अवधिद्वार—नैरयिक तथा देव के १३ दण्डक मे तथा तिर्यंचपंचेन्द्रिय मे देश–अवधि होता है, सर्व-अवधि इनमे नही होता। मनुष्य मे देश–अवधि भी होता है और सर्व–अवधि भी होता है।

(६) हीयमान, वर्धमान और अवस्थित अवधिज्ञान-द्वार—नैरयिक तथा देव के १३ दण्डक मे अवस्थित अवधिज्ञान होता है। तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य मे तीनो प्रकार का—हीयमान, वर्धमान और अवस्थित–अवधिज्ञान होता है।

(७) अनुगामी अननुगामी अवधिज्ञानद्वार—जो अवधि-ज्ञान ज्ञानी के साथ जाता है, वह अनुगामी—अवधिज्ञान है। जैसे मनुष्य दीपक साथ मे लेकर चलता है तो प्रकाश उसके साथ—साथ जाता है । जो अवधिज्ञान जहां उत्पन्न हुआ है वही रहता है, ज्ञानी के उस स्थान से चले जाने पर जो ज्ञानी के साथ नही जाता और ज्ञानी के वापिस वहां आने पर जो पुन· हो जाता है, वह अननुगामी—अवधिज्ञान है । जैसे धूणी का प्रकाश धूणी के आसपास रहता है, धूणी से दूर जाने पर धूणी का प्रकाश साथ मे नही जाता और धूणी पर लौट आने पर पुन. प्रकाश प्राप्त होता है । नैरयिक तथा देव के १३ दण्डक मे अनुगामी-अवधिज्ञान होता है । तिर्यंच—पचेन्द्रिय और मनुष्य में अनुगामी और अननुगामी दोनो प्रकार का अवधिज्ञान होता है ।

(८) प्रतिपाति—अप्रतिपातिद्वार—नैरयिक और देव के १३ दण्डक मे अप्रतिपाति—अवधिज्ञान होता है । तिर्यंच-पचेन्द्रिय और मनुष्य मे प्रतिपाती और अप्रतिपाति दोनो अवधिज्ञान होते हैं ।

७. वेदना का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र ३५ वा पद)

सीता य दव्व सारीर, साता तह वेदणा भवति दुक्खा
अब्भुवगमोवक्कमिया, निदा य अणिदा य नायव्वा
सायमसायं सव्वे सुह च, दुक्खं अदुक्खमसुह च
माणसरहिय विगलिंदिया, उ सेसा दुविहमेव ।

१–वेदना तीन प्रकार की होती है—शीत, उष्ण और शीतोष्ण । २–द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से वेदना चार प्रकार की है । ३–वेदना के शारीरिक, मानसिक और शारीरिक-मानसिक के भेद से तीन प्रकार हैं । ४–साता, असाता और साता-असाता के भेद से वेदना तीन प्रकार की है । ५–सुखा, दु खा और अदु ख-सुखा (सुख-दु खरूप) के भेद से भी वेदना तीन प्रकार की है । ६–आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी के भेद से वेदना के दो भेद है । ७–निदा और अनिदा के भेद से वेदना के दो प्रकार है । इस तरह सात तरह से यहा वेदना के भेद बताये हैं ।

(१) पहली, दूसरी और तीसरी नरक मे शीतयोनि वाले नैरयिक होते है । ये उष्णवेदना वेदते है । चौथी नरक मे शीतयोनि वाले और ऊष्णयोनि वाले नैरयिक होते हैं । शीतयोनि वाले उष्णवेदना वेदते हैं और उष्णयोनि वाले शीतवेदना वेदते हैं । इस नरक मे शीतयोनि वाले बहुत हैं और उष्णयोनि वाले थोडे हैं, इसलिये उष्णवेदना वाले अधिक हैं और शीतवेदना वाले थोडे हैं । पाचवी नरक मे भी दोनो तरह के–शीतयोनि वाले और उष्ण-योनि वाले नैरयिक हैं । शीतयोनि वाले उष्णवेदना वेदते हैं और उष्णयोनि वाले शीतवेदना वेदते हैं । इसमे शीत-योनि वाले थोडे हैं और उष्णयोनि वाले बहुत हैं, अत उष्णवेदना वाले थोडे, शीतवेदना वाले बहुत हैं । छठी नरक मे उष्णयोनि वाले नैरयिक हैं उन्हे शीत की वेदना होती है । सातवी नरक मे महा उष्णयोनि वाले नैरयिक है और उन्हे शीत की प्रचण्ड वेदना होती है । इस तरह

नरक मे शीतवेदना और उष्णवेदना होती है। शेष तेईस दण्डक मे तीनो वेदना—शीतवेदना, उष्णवेदना और शीतोष्णवेदना—होती हैं।

(२) द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव रूप सामग्री से उत्पन्न होने वाली वेदना क्रमश द्रव्यवेदना, क्षेत्रवेदना, कालवेदना और भाववेदना है। वेदना का पुद्‌गलद्रव्य के सम्बन्ध की अपेक्षा से जब विचार करते हैं तब वह द्रव्यवेदना है। नरकादि उत्पत्ति के क्षेत्र की अनेक्षा से जब वेदना का विचार किया जाता है तब वह क्षेत्रवेदना है। इसी तरह नैरयिक के भव सम्बन्धी काल की अपेक्षा से जब वेदना का विचार किया जाता है तब वह काल वेदना है। वेदनीयकर्म के उदय की अपेक्षा जब वेदना का विचार किया जाता है तब वह भाववेदना है। चौबीस दण्डक मे चारो वेदना—द्रव्यवेदना, क्षेत्रवेदना, कालवेदना और भाववेदना वेदते है।

(३) नैरयिक, १३ देव, तिर्यंचपचेन्द्रिय और मनुष्य इन सोलह दण्डको मे तीनो प्रकार की—शारीरिकवेदना, मानसिकवेदना और शारीरिक-मानसिकवेदना होती है। पाच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय मे एक शारीरिकवेदना ही होती है।

(४) सुखरूप*साता वेदना है, दु.खरूप असाता-

---

* साता और असाता तथा सुख और दु ख मे क्या अन्तर है? साता, असाता, साता-असातारूप जो वेदना कही गई है, वह क्रम से उदयप्राप्त वेदनीयकर्म पुद्‌गलो

वेदना है और सुख-दु खरूप साता–असातावेदना है । चौबीस दण्डक मे साता, असाता और साता–असाता रूप तीनो प्रकार को वेदना होती है ।

(५) सुखा, दु खा, अदु ख-सुखा (सुख-दु खरूप)– यह तीनो वेदना भी चौवीसो दण्डको में पाई जाती है ।

(६) आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी वेदना जो वेदना स्वय अ गीकार को जाती है । वह आभ्युपग–मिकीवेदना है, जैसे केशलु चन, आतापना लेना । स्वय उदय हुए या उदीरणा द्वारा उदय मे लाये वेदनीयकर्म के अनुभव से होने वाली वेदना औपक्रमिकीवेदना है । तिर्यंचपचेन्द्रिय और मनुष्य आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी दोनो वेदना वेदते है । शेष २२ दण्डक के जीव एक औपक्रमिकी वेदना वेदते हैं ।

(७) निदा, अनिदावेदना—जिस वेदना मे मानसिक ज्ञान होता है वह निदावेदना है और जिस वेदना मे मान-सिक ज्ञान नही होता वह अनिदावेदना है । नैरयिक, भवन-पति, व्यन्तर, तिर्यचपचेन्द्रिय और मनुष्य ये चौदह दण्डक सज्ञीभूत और असज्ञीभूत होते हैं, यानी सज्ञी से उत्पन्न होते है और असज्ञी मे उत्पन्न होते है । जो सज्ञीभूत हैं, वे निदावेदना वेदते है और जो असज्ञीभूत हैं, वे अनिदावेदना वेदते है । पाच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय असज्ञीभूत

के अनुभव से होती है और सुखा, दु खा और अदु ख-सुखा-वेदना दूसरो द्वारा दी जाती है ।

है, अत अनिदावेदना वेदते है। ज्योतिषी और वैमानिक दो प्रकार के होते है—मायीमिथ्यादृष्टि और अमायी सम्यग्दृष्टि। मायीमिथ्यादृष्टि अनिदावेदना वेदना वेदते हैं और अमायी सम्यग्दृष्टि निदावेदना वेदते है।

△

८. काल विशेषण का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, छठा शतक, उद्देशा सातवा)

१ अहो भगवन्! कोठा मे, खाई आदि मे बन्द किये हुए, छादण दिये हुए (छंदित–मुद्राकित किये, सील लगाकर रखे) धान की योनि (अकुर उत्पन्न करने की शक्ति) कितने काल तक रहती है? हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त सचित्त रहती है, *बाद मे अचित्त-अबीज हो जाती है, उत्कृष्ट शालि (कलमी आदि अनेक जाति के चावल), व्रीहि (सामान्य जाति के चावल), गेहू, जव, जवार की योनि ३ वर्ष तक सचित्त रहती है।

कलाय (मटर), मसूर, तिल, मूग, उडद, चवला, कुलथ, (चोला के आकार वाला चपटा धान–कलथी) तूर, चना आदि की योनि (उत्कृष्ट) ५ वर्ष तक सचित्त रहती

* जघन्य सब धान की योनि अन्तर्मुहूर्त तक सचित्त रहती है।

है । अलसी, कुसुम्भ, कोद्रव, कागणी, वरटी, राल, सण, सरसो आदि की योनि (उत्कृष्ट) ७ वर्ष तक सचित्त रहती है, वाद मे अचित्त हो जाती है ।

२—अहो भगवन् ? एक मुहूर्त के कितने श्वासोच्छ्वास होते हैं ? हे गौतम ! एक मुहूर्त मे ३७७३ श्वासोच्छ्वास होते हैं । एक समय से लेकर शीर्षप्रहेलिका तक गणित है । इसके वाद पल्योपम, सागरोपम यावत् कालचक्र तक उपमाकाल है ।

३—अहो भगवन् ! अवसर्पिणीकाल के सुषमासुषम आरा मे इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे कैसा भाव था ? हे गौतम ! भूमिभाग वहुत सम-रमणीय था यावत् देवकुरु, उत्तरकुरु क्षेत्र के जुगलियो की तरह यहा ६ प्रकार के उत्कृष्ट सुख वाले मनुष्य निवास करते थे—१ पद्म समान गन्ध वाले, २ कस्तूरी समान गन्ध वाले, ३ ममत्वरहित, ४ तेजस्वी, रूपवन्त, ५ सहनशील, ६ उतावलरहित गम्भीर गति से चलने वाले मनुष्य निवास करते थे ।

❀

६. पृथ्वी आदि का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, छठा शतक, उद्देशा आठवा)

तमुकाए कप्पपणए अगणी पुढवी य, अगणि पुढवीसु ।
आऊ-तेऊ-वणस्सइ, कप्पुवरिम—कण्हराईसु ॥

१—अहो भगवन् ! पृथ्विया कितनी हैं ? हे

गौतम ! पृथ्वियां ८ हैं (७ नरक, १ ईषत्प्राग्भा सिद्धशिला) ।

२—अहो भगवन् ! क्या ७ नरक, १२ देव नव ग्रैवेयक, पाच अनुत्तरविमान, १ सिद्धशिला, इन स्थानो के नीचे घर, हाट, ग्रामादि है ? हे गौतम ! है ।

३—अहो भगवन् ! नारकी और देवलोको के नी गाज, बीज, मेघ, बादल, वृष्टि कौन करते है ? हे गौतम पहली दूसरी नारकी के नीचे गाज, बीज, मेघ, बाद और वृष्टि देव, असुरकुमार और नागकुमार ये ३ कर है । तीसरी नरक, पहले दूसरे देवलोक के नीचे देव औ असुरकुमार, ये दो करते है । शेष ४ नरक और तीस देवलोक से बारहवे देवलोक तक, इन १४ के नीचे देव (वैमानिक देव) करते है (असुरकुमार, नागकुमार नही) । नवग्रैवेयक, पाच अनुत्तरविमान और सिद्धशिला के नीचे कोई नही करता । सात नरको के नीचे बादर अग्निकाय नही है, परन्तु विग्रहगति वाले जीव पाये जाते हैं । देव-लोको से लेकर सिद्धशिला तक १५ स्थानो के नीचे बादर पृथ्वीकाय, बादर अग्निकाय नही है परन्तु विग्रहगति वाले जीव पाये जाते हैं । नवमे देवलोक से लेकर सिद्धशिला तक इन नौ स्थानो के नीचे बादर अप्काय भी नही है परन्तु विग्रहगति वाले जीव पाये जाते है । २२ ही स्थानो के नीचे चन्द्र सूर्य आदि नही है, चन्द्र सूर्य आदि की प्रभा भी नही है ।

❀

१०. 'आयुष्यबन्ध' का थोकड़ा

(भगवती सूत्र छठा शतक, उद्देशा आठवा)

१—अहो भगवन् ! आयुष्यबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ? हे गौतम ! आयुष्यबन्ध छह प्रकार का कहा गया है—१ जातिनामनिधत्तायु, २ गतिनामनिधतायु ३ स्थितिनामनिधत्तायु, ४ अवगाहनानामनिधत्तायु, ५ प्रदेश-नामनिधत्तायु, ६ अनुभागनामनिधत्तायु । ये ६ निधत्त (ढीला) बन्ध की अपेक्षा से हैं और ६ निकाचित (गाढा-मजबूत) बन्ध की अपेक्षा से हैं । ये १२ एक जीव की अपेक्षा से और १२ बहुत जीव की अपेक्षा से, ये २४ आलापक भटा हुए । २४ समुच्चय के और २४ नीचगोत्र के साथ बधने वाले तथा २४ उच्चगोत्र के साथ बधने वाले, ये ७२ आलापाक हुए । इनको समुच्चय जीव और २४ दण्डक, इन २५ से गुणा करने से १८०० आलापक होते हैं ।

११. जीवपरिणाम का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, १३ वा पद)

परिणमन—एक रूप से अन्य रूप मे परिवर्तित होना परिणाम है । द्रव्यास्तिक और पर्यायास्तिक नय की अपेक्षा परिणाम का स्वरूप इस प्रकार है । द्रव्यास्तिकनय

की अपेक्षा अपना अस्तित्व रखते हुए उत्तरपर्याय प्राप्त करना परिणाम है। इसमे एक रूप से पूर्वपर्याय न कायम ही रहती है, न उसका नाश ही होता है। पर्यायास्तिकनय की अपेक्षा विद्यमान पूर्व पर्याय का नाश होना और अविद्यमान उत्तर पर्याय का प्रगट होना परिणाम है।

परिणाम के दो प्रकार हैं—जीवपरिणाम और अजीवपरिणाम। अजीवपरिणाम का वर्णन अगले थोकडे मे किया जायगा। यहा जीवपरिणाम का वर्णन है। जीवपरिणाम के १० भेद है—१. गतिपरिणाम, २. इन्द्रियपरिणाम ३ कषायपरिणाम, ४ लेश्यापरिणाम, ५. योगपरिणाम, ६ उपयोगपरिणाम, ७ ज्ञानपरिणाम, ८ दर्शनपरिणाम, ९. चारित्रपरिणाम, १० वेदपरिणाम।

१ गति—चार गति, २. इन्द्रिय—पाच इन्द्रिय और एक अनिन्द्रिय, ३ कषाय—चार कषाय और एक अकषायी, ४ लेश्या—छह लेश्या और एक अलेशी, ५. योग—तीन योग, एक अयोगी, ६ उपयोग—दो उपयोग—साकार-उपयोग, अनाकार-उपयोग, ७ ज्ञान—आठ, पाच ज्ञान और तीन अज्ञान, ८ दर्शन—तीन, सम्यग्दर्शन, मिथ्यादर्शन और सम्यगमिथ्या (मिश्र) दर्शन, ९ चारित्र-पाच चारित्र, असयती और सयतासयती, १० वेद—तीन वेद और एक अवेद। कुल ५० वोल हुए।

नरक मे इन ५० वोलो मे से २९ वोल पाये जाते है—गति १, इन्द्रिय ५, कपाय ४, लेश्या ३, योग ३,

उपयोग २, ज्ञान ३, अज्ञान ३, दर्शन ३, चारित्र १ (असयती), वेद १, नपुसक=२६ ।

भवनपति और व्यन्तर मे ३१-३१ वोल पाये जाते हैं । उपर्युक्त २६ मे से नपुसक वेद कम करना और तेजोलेश्या और दो वेद—स्त्रीवेद पुरुषवेद वढाना । ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक मे २८-२८ वोल पाये जाते हैं । उक्त ३१ मे से पहली तीन लेश्या नही होती है । तीसरे देवलोक से वारहवें देवलोक मे २७-२७ वोल पाये जाते हैं, उक्त अट्ठाईस मे से स्त्रीवेद कम करना चाहिये । तीसरे, चौथे, पाचवें देवलोक मे तेजोलेश्या के वदले पद्म-लेश्या कहना और छठे से वारहवे देवलोक मे शुक्लालेश्या कहना नवग्रैवेयक मे २६ वोल पाये जाते है—उक्त २७ मे से मिश्रदर्शन नही होता है । पाच अनुत्तर विमान मे २२ वोल पाये जाते है । उक्त २६ मे से मिथ्यादर्शन (मिथ्यात्व) और तीन अज्ञान नही होते हैं ।

पृथ्वीकाय, अप्पकाय, वनस्पति काय मे १८-१८ वोल होते हैं—गति १, इन्द्रिय १, कषाय ४, लेश्या ४, योग १, उपयोग २, अज्ञान २, दर्शन १ (मिथ्यादर्शन), चारित्र १ (असयती), वेद १ (नपुसक)=१८ । तेजस्काय और वायुकाय मे १७ वोल हैं, तेजोलेश्या नही होती है । द्वीन्द्रिय मे २२ वोल पाये जाते हैं—उक्त १७ वोल तथा रसनाइन्द्रिय, वचनयोग, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और सम्यग्द-दर्शन=२२ । त्रीन्द्रिय मे २३ वोल हैं—उक्त २२ वोलो मे घ्राणेन्द्रिय वढी । चतुरिन्द्रिय मे २४ वोल हैं—उक्त २३ वोलो मे चक्षुइन्द्रिय वढी । तिर्यचपचेन्द्रिय मे ३५ वोल हैं—

गति १, इन्द्रिय ५, कषाय ४, लेश्या ६, योग ३, उपयोग २, ज्ञान ३, अज्ञान ३, दर्शन ३, चारित्र २ (असयती और सयतासयती) वेद ३=३५। मनुष्य मे ४७ बोल पाये जाते है—तीन गति नही पायी जाती है।

११. अजीवपरिणाम का थोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र, १३ वा पद)

अजीवपरिणाम दस प्रकार का है—१. बधपरिणाम २ गतिपरिणाम, ३ सस्थानपरिणाम, ४ भेदपरिणाम, ५. वर्णपरिणाम, ६. गधपरिणाम, ७ रसपरिणाम, ८ स्पर्शपरिणाम, ९ अगुरुलघुपरिणाम, १० शब्दपरिणाम।

१. बधपरिणाम दो प्रकार का है—स्निग्धबधपरिणाम और रूक्षबधपरिणाम। समस्निग्ध और समरूक्ष होने पर परस्पर बध नही होता, किन्तु यदि परस्पर स्निग्धता और रूक्षता की विषममात्रा होती है तब स्कन्ध का बन्ध होता है। आशय यह है कि समगुण स्निग्धपरमाणु आदि का समगुण स्निग्धपरमाणु आदि के साथ बध नही होता और इसी तरह समगुण रूक्षपरमाणु आदि का समगुण रूक्षपरमाणु आदि के साथ बध नही होता, किन्तु यदि स्निग्ध स्निग्ध के साथ और रूक्ष रूक्ष के साथ विषमगुण वाला होता है तो विषममात्रा होने से परस्पर बध हो जाता है। यह विषमात्रा एकगुण अधिक न होकर दो गुण अधिक, तीन गुण अधिक आदि होनी चाहिए। एकगुण स्निग्ध और एक गुण स्निग्ध का बध नही होता, एक गुण स्निग्ध

और दो गुण स्निग्ध का बंध नही होता, दो गुण स्निग्ध और दो गुण स्निग्ध का तथा दो गुण स्निग्ध और तीन गुण स्निग्ध का वन्ध नही होता किन्तु दो गुण स्निग्ध और चार गुण स्निग्ध का वन्ध हो जाता है। स्निग्ध और रूक्ष का आपस मे वन्ध तभी होता है जव दोनो जघन्य गुण न हो। जघन्य गुण से अधिक होने पर सममात्रा मे या विषममात्रा वन्ध हो सकता है, जैसे दो गुण स्निग्ध और दो गुण रूक्ष का वन्ध होता है, दो गुण स्निग्ध और तीन गुण रूक्ष का वन्ध होता है।

२ गतिपरिणाम—गति के दो भेद—स्पृशद्गतिपरिणाम (फुसमाणगतिपरिणाम) और अस्पृशद्गतिपरिणाम (अफुसमाण गतिपरिणाम)। दूसरी वस्तु को स्पर्श करते हुए जो गतिपरिणाम होता है वह स्पृशद्गतिपरिणाम हैं, जैसे प्रयत्न पूर्वक जल पर फेंकी हुई ठीकरी जल का स्पर्श करती हुई जाती है। जो वस्तु गति करते हुए बीच मे किसी के साथ स्पृष्ट नही होती, वह अस्पृशद्गतिपरिणाम है, जैसे आकाश मे उडता हुआ पक्षी उडते हुए किसी का स्पर्श नही करता। अथवा गतिपरिणाम के दो भेद—दीर्घगतिपरिणाम और ह्रस्वगतिपरिणाम। दूर के देशान्तर की प्राप्ति का परिणाम दीर्घगतिपरिणाम है। इसके विपरीत समीप के देशान्तर की प्राप्ति का परिणाम ह्रस्वगतिपरिणाम है।

३ सस्थानपरिणाम के पाच भेद—परिमडलसस्थान वृत्त (वट्ट गोलाकार) सस्थान, त्र्यस्र (तस-त्रिकोण) सस्थान,

चतुरस्र (चउरस-चतुष्कोण) संस्थान, आयत (लंबा) संस्थान ।

४ भेदपरिणाम के पाच भेद - खंडभेदपरिणाम, प्रतरभेदपरिणाम, चूर्णिकाभेदपरिणाम, अनुतरिकाभेदपरिणाम और उत्करिकाभेदपरिणाम । भापा के थोकडे मे इनका स्वरूप बताया जा चुका है ।

५. वर्णपरिणाम के पाच भेद - काला, नीला, लाल, पीला और सफेद । ६. गन्ध परिणाम के दो भेद—सुरभि-गन्ध और दुरभिगन्ध । ७ रसपरिणाम के पाच भेद—तीखा, कड़वा, कषैला, खट्टा और मीठा । ८ स्पर्शपरिणाम के आठ भेद—कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष ।

९. अगुरुलघुपरिणाम (न हल्का न भारी)—चार स्पर्श वाले कर्म, मन और भाषा के द्रव्य तथा अमूर्त आकाश आदि अगुरुलघुपरिणाम वाले है । अष्ट स्पर्शी औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस गुरुलघुपरिणाम वाले होते है ।

१०. शब्दपरिणाम के दो भेद—सुरभिशब्द (शुभ-शब्द) और दुरभिशब्द (अशुभशब्द) ।

१२. कषाय का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, १४ वां पद)

आयपइट्ठिय खेत्तं, पडुच्चऽणताणुवधि आभोगे ।
चिव उवचिए वध उदीर, वेद तह निज्जरा चेव ।।

कपाय चार हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ । समुच्चय जीव और चौवीस दडक मे चारो कषाय पाये जाते हैं ।

क्रोध चार स्थानो मे रहा हुआ है । १ आत्म-प्रतिष्ठित—अपने आचरण का ऐहिक कुफल जानकर अपनी आत्मा पर क्रोध करना । २. परप्रतिष्ठित—किसी के गाली देने पर उस पर क्रोध करना । ३. तदुभयप्रतिष्ठित दोनो यानी अपनी आत्मा पर और दूसरे पर क्रोध करना । ४ अप्रतिष्ठित—क्रोधवेदनीय के उदय होने पर निष्कारण क्रोध करना ।

चार प्रकार से क्रोध उत्पन्न होता है—क्षेत्र, वस्तु, शरीर और उपाधि । क्षेत्र—खेत कुआ आदि । वास्तु—हाट, हवेली आदि । शरीर—दास, दासी आदि । उपधि—भण्डोपकरण, आभूपण, वस्त्र आदि । इन चार बोलो से क्रोध की उत्पत्ति होती है ।

क्रोध चार प्रकार का होता है—अनन्तानुवन्धीक्रोध, अप्रत्याख्यानीक्रोध, प्रत्याख्यानावरणीयक्रोध और सज्वलन-क्रोध । अनन्तानुवधीक्रोध सम्यक्त्व का घात करता है ।

अप्रत्याख्यानीक्रोध देशविरति का घात करना है। प्रत्याख्यानावरणीयक्रोध सर्वविरति का घात करता है। संज्वलनक्रोध यथाख्यातचारित्र का घात करता है।

क्रोध के चार प्रकार—१. आभोगनिर्वतित (आभोग निव्वत्तिए) क्रोध—क्रोध का कारण और क्रोध का फल जानकर क्रोध करना। २. अनाभोगनिर्वतित (अणभोगनिव्वत्तिए) क्रोध—गुण-दोष जाने बिना परवश होकर क्रोध करना। ३. उपशांत क्रोध—जो क्रोध अन्दर हो पर ऊपर से शात दिखाई दे, उदय मे नही आया हुआ है। ४. अनुपशान्तक्रोध—उदय मे आया हुआ क्रोध। इसी तरह मान, माया और लोभ के स्थान, कारण और प्रकार जानना चाहिये। ४×४=१६×२५=४००।

चार स्थान - क्रोध, मान, माया और लोभ के वश होकर जीव ने भूतकाल मे आठ कर्मों का चय किया है, उपचय किया है, आठ कर्म बाधे हैं, आठ कर्मो की उदीरणा की है, आठ कर्म वेदे है और आठ कर्म की निर्जरा की है। वर्तमान मे भी आठ कर्मों का चय, उपचय, बध, उदीरणा, वेदन और निर्जरा करता है और भविष्य में भी करेगा।

१ चय—कषायपरिणत आत्मा का कर्मपुद्गल ग्रहण करना। उपचय—अबाधाकाल समाप्त हो जाने पर ज्ञाना-

वरणीयादि आठ कर्मों का निषेक+करना। ३ वध–निका–

चितवध करना। ४ उदीरणा—उदय मे नही आये हुए कर्मों का तप आदि प्रयत्न द्वारा उदयावलि मे प्रवेश कराना। ५ वेदन—अवाधाकाल के पश्चात् उदयप्राप्त तथा उदीरणा द्वारा उदयावलि मे आये हुए कर्मों का फल-भोग करना। ६ निर्जरा—कर्मों का फल भोगकर उन्हे अकर्मरूप करना अर्थात् पूर्वकृत कर्मों का फल भोगकर उन्हे नाश करना।

चय, उपचय आदि को समझाने के लिए स्थूल दृष्टि से कडो (छाणा) का दृष्टान्त दिया जाता है, जैसे–कडो को इकट्ठा करना (चय), जमाना (उपचय), जमे हुए कडो को गोवर या मिट्टी से लीपना (वध), वापिस विखेरना (उदीरणा), एक-एक करके जलाना (वेदन), सभी कडे जलाकर जगह साफ कर देना (निर्जरा) है।

+ कर्मविशेष का अवाधाकाल समाप्त होने पर प्रथम समय मे वहुत प्रदेशो का उदय मे आना और दूसरे, तीसरे आदि समयो मे हीन, हीनतर प्रदेशो का उदय मे आना निषेक है। असत्कल्पना से २५ समय की स्थिति वाले कर्मविशेष के १०५० परमाणु वाधे। पाच समय का अवाधाकाल समाप्त होने पर छठे समय मे १००, सातवें समय मे ९५, आठवें समय मे ९० यावत् २५ वें समय मे पाच कर्मपरमाणु उदय आकर यह कर्म नि शेष हो जाता है।

ये छह बोल समुच्चय जीव और चौबीस दडक की अपेक्षा ६×२५=१५० हुए। तीन काल की अपेक्षा १५०×३=४५० हुए। एक जीव और अनेक जीव की अपेक्षा ४५०×२=९०० हुए। ये ९०० तथा ऊपर कहे हुए ४०० कुल १३०० आलापक हुए। १३०० क्रोध के, १३०० मान के, १३०० माया के और १३०० लोभ के कुल १३००×४=५२०० आलापक (भग) हुए।

१३. 'अणगार वैक्रिय' का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, तीसरा शतक, उद्देशा पाचवा)

गाथा—इत्थी असि पडागा, जण्णोवइए य होइ बोद्धव्वे।
पल्हत्थिय पलियंके, अभिओग विकुव्वणा मायी॥

१—अहो भगवन्! लब्धिवत भावितात्मा अनगार बाहर के पुद्गल लेकर अनेक स्त्री, पुरुष, हाथी, घोडा, सिंह, व्याघ्र आदि रूप यावत् शिविका (पालखी), स्यन्दमाणी (म्याना) का रूप, ढाल और तलवार वाले मनुष्य के रूप, एक जनेऊ, दो जनेऊ वाले मनुष्य के रूप, एक तरफ पलाठी (पालखी मार कर बैठना), दोनो तरफ पलाठी, एक तरफ पर्यंकासन, दोनो तरफ पर्यंकासना इत्यादि रूप बनाकर आकाश मे उडने मे समर्थ है? युवति युवा के दृष्टान्त से, चक्रनाभि के दृष्टान्त से वैक्रियरूप बनाकर जम्बूद्वीप को भरने मे समर्थ है? हा, गौतम! समर्थ है, विषय की

अपेक्षा से ऐसी शक्ति है, परन्तु कभी ऐसा किया नही, करते नही और करेगे नही ।

इसी तरह बाहर के पुद्गल ग्रहण करके हाथी, घोडा, सिंह, व्याघ्र आदि के रूप बनाकर अनेक योजन जाने मे समर्थ हैं । उनको हाथी, घोडा आदि नही कहना, किन्तु अनगार कहना । वे आत्मऋद्धि, आत्मकर्म और आत्मप्रयोग से जाते हैं, किन्तु परऋद्धि, परकर्म और पर-प्रयोग से नही जाते । ऐसी विकुर्वणा मायी (प्रमादी) अनगार करते है, अमायी (अप्रमादी) अनगार नही करते । मायी अनगार उस बात की आलोयणा (आलोचना) किये बिना काल करे तो आभियोगिक (दास-सेवक) देव उत्पन्न होते हैं, कोई देवपदवी नही पाते । अमायी (अप्रमादी) अनगार आलोयणा करके काल करें तो आभियोगिक (सेवक) देवपने उत्पन्न नही होते किन्तु अनाभियोगिक (इन्द्र सामानिक, तायतिसक, लोकपाल, अहमिन्द्र) नवग्रैवेयक, अनुत्तर विमानो मे देवपने उत्पन्न होते हैं ।

—❀—

१४. 'विस्मय' का थोकड़ा

(भगवती सूत्र दसवा शतक, उद्देशा तीसरा)

१—अहो भगवन् ! क्या देव चार पाच आवास (देवो के रहने के स्थान) तक अपनी ऋद्धि से (मूल रूप से) जाते है और उसके आगे पराई ऋद्धि से (उत्तर-वैक्रिय बनाकर) जाते हैं ? हा गौतम ! देव चार पाच

ये छह बोल समुच्चय जीव और चौवीस दंडक की अपेक्षा ६ × २५ = १५० हुए। तीन काल की अपेक्षा १५० × ३ = ४५० हुए। एक जीव और अनेक जीव की अपेक्षा ४५० × २ = ९०० हुए। ये ९०० तथा ऊपर कहे हुए ४०० कुल १३०० आलापक हुए। १३०० क्रोध के, १३०० मान के, १३०० माया के और १३०० लोभ के कुल १३०० × ४ = ५२०० आलापक (भग) हुए।

१३. 'अणगार वैक्रिय' का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, तीसरा शतक, उद्देशा पाचवा)

गाथा—इत्थी असि पडागा, जण्णोवइए य होइ बोद्धव्वे।
पल्हत्थिय पलियंके, अभिओग विकुव्वणा मायी ॥

१ – अहो भगवन् ! लब्धिवंत भावितात्मा अनगार बाहर के पुद्गल लेकर अनेक स्त्री, पुरुष, हाथी, घोडा, सिंह, व्याघ्र आदि रूप यावत् शिविका (पालखी), स्यन्दमाणी (म्याना) का रूप, ढाल और तलवार वाले मनुष्य के रूप, एक जनेऊ, दो जनेऊ वाले मनुष्य के रूप, एक तरफ पलाठी (पालखी मार कर बैठना), दोनो तरफ पलाठी, एक तरफ पर्यंकासन, दोनो तरफ पर्यंकासना इत्यादि रूप बनाकर आकाश मे उड़ने मे समर्थ है ? युवति युवा के दृष्टान्त से चक्रनाभि के दृष्टान्त से वैक्रियरूप बनाकर जम्बूद्वीप को भरने मे समर्थ हैं ? हा, गौतम ! समर्थ हैं, विषय की

अपेक्षा से ऐसी शक्ति है, परन्तु कभी ऐसा किया नही, करते नही और करेंगे नही ।

इसी तरह बाहर के पुद्गल ग्रहण करके हाथी, घोडा, सिह, व्याघ्र आदि के रूप बनाकर अनेक योजन जाने मे समर्थ हैं । उनको हाथी, घोडा आदि नही कहना, किन्तु अनगार कहना । वे आत्मऋद्धि, आत्मकर्म और आत्मप्रयोग से जाते हैं, किन्तु परऋद्धि, परकर्म और पर-प्रयोग से नही जाते । ऐसी विकुर्वणा मायी (प्रमादी) अनगार करते है, अमायी (अप्रमादी) अनगार नही करते । मायी अनगार उस बात की आलोयणा (आलोचना) किये बिना काल करे तो आभियोगिक (दास-सेवक) देव उत्पन्न होते हैं, कोई देवपदवी नही पाते । अमायी (अप्रमादी) अनगार आलोयणा करके काल करें तो आभियोगिक (सेवक) देवपने उत्पन्न नही होते किन्तु अनाभियोगिक (इन्द्र सामानिक, तायतिसक, लोकपाल, अहमिन्द्र) नवग्रैवेयक, अनुत्तर विमानो मे देवपने उत्पन्न होते हैं ।

—❀—

१४. 'विस्मय' का थोकड़ा

(भगवती सूत्र दसवा शतक, उद्देशा तीसरा)

१—अहो भगवन् ! क्या देव चार पाच आवास (देवो के रहने के स्थान) तक अपनी ऋद्धि से (मूल रूप से) जाते हैं और उसके आगे पराई ऋद्धि से (उत्तर-वैक्रिय बनाकर) जाते हैं ? हा गौतम ! देव चार पाच

आवास तक अपनी ऋद्धि से जाते है और उसके आगे पराई ऋद्धि से जाते है ।

२—अहो भगवन् ! क्या अल्पऋद्धि (अल्प शक्ति) वाला देव महाऋद्धि (महाशक्ति) वाले देव के बीचोबीच होकर जाता है ? हे गौतम ! नो इणट्ठे समट्ठे (नही जा सकता है) ।

३—अहो भगवन् ! क्या समऋद्धि (समानशक्ति) का देव समऋद्धि वाले देव के बीचोबीच होकर जा सकता है ? हे गौतम ! जाने की शक्ति नही, किन्तु वह (सामने वाला) देव प्रमाद मे हो तो चला जाता है ।

४—अहो भगवन् ! वह देव विस्मय उत्पन्न कर जाता है या विस्मय उत्पन्न किए बिना ही जाता है ? हे गौतम ! विस्मय उत्पन्न कर जाता है । (धूवर, अन्धकार आदि करके सामने वाले देव को आश्चर्य मे डाल देता है । फिर उसके बिना देखे ही चला जाता है) विस्मय उत्पन्न किये बिना नही जाता ।

५—अहो भगवन् ! पहले विस्मय उत्पन्न करता है पीछे जाता है या पहले जाता है पीछे विस्मय उत्पन्न करता

नोट—भगवतीसूत्र शतक दसवा का पहिला उद्देशा, ग्यारहवा शतक का दसवा उद्देशा और सोलहवा शतक का आठवां उद्देशा, ये तीनो उद्देशो का ? थोकडा करने का उद्देश्य यह है कि सीखने वाले को सुगम रहे, क्योकि तीनो शतक के भागे प्राय एक माफिक ही है ।

है ? हे गौतम ! पहले विस्मय उत्पन्न करता है, पीछे जाता है, किन्तु पहले जाता है पीछे विस्मय उत्पन्न करता है यह बात नहीं है ।

६—अहो भगवन् ! क्या महाऋद्धिवाला देव अल्प-ऋद्धि के देव के बीचोबीच होकर जाता है ? हा, गौतम ! जाता है । अहो भगवन् ! विस्मय उत्पन्न कर जाता है या विस्मय उत्पन्न किये बिना ही जाता है ? हे गौतम ! विस्मय उत्पन्न कर भी जाता है और विस्मय उत्पन्न किये बिना भी जाता है । अहो भगवन् ! विस्मय उत्पन्न कर जाता है तो क्या पहले विस्मय उत्पन्न करता है, पीछे जाता है या पहले जाता है, पीछे विस्मय उत्पन्न करता है ? हे गौतम ! जाने वाले देव की जैसी इच्छा हो, उस तरह से जाता है (पहले विस्मय उत्पन्न करता है, पीछे जाता है या पहले जाता है पीछे विस्मय उत्पन्न करता है) । इस तरह १३ दण्डक देव के कह देना । समुच्चय देव और १३ दण्डक देव के, ये १४ आलापक हुए ।

७—अहो भगवन् ! क्या अल्पऋद्धि देव महाऋद्धि के देव के बीचोबीच होकर जाता है ? हे गौतम ! नो इणट्ठे समट्ठे (नहीं जा सकता) । यावत् ऊपर की तरह कहना चाहिये । समुच्चय देव और १३ दण्डक के देव, इन चौदह मे तीन अलापक (१ अल्पऋद्धिक के साथ महा-ऋद्धिक, २ समऋद्धिक के साथ समऋद्धिक, ३ महा-ऋद्धिक के साथ अल्पऋद्धिक) करने से ४२ (१४ × ३= ४२) आलापक हुए । ४२ आलापक देव का देवता के साथ कहना, ४२ आलापक देव का देवी के साथ कहना, ४२

आलापक देवी का देव के साथ कहना, ४२❀ आलापक देवी का देवी के साथ कहना। कुल १६८ (४२X४=१६८) आलापक हुए।

१५. 'वृक्ष' आदि का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, दसवा शतक, उद्देशा तीसरा)

१. अहो भगवन्! वृक्ष कितने प्रकार के है! हे गौतम! वृक्ष तीन प्रकार के हैं—सख्यातजीवी, असख्यातजीवी, अनन्तजीवी। सख्यातजीवी (सख्यात जीव वाले)—ताल, तमाल, तक्कली, तेतली, नारियल आदि हैं। असख्यातजीवी (असख्यात जीव वाले) के दो भेद—एगट्ठिया और वहुबीजा। एगट्ठिया मे एक बीज (गुठली) होता है-जैसे-नीम, आम, जामुन आदि अनेक भेद है। बहुबीजा (एक फल मे वहुत वीज)-बड, पीपल, उबर आदि। अनत जीवी (अनत जीव वाले)—आलू, मूला आदि जमीकन्द हैं।

२—अहो भगवन्! कछुआ, कछुए की श्रेणी, गोह,

❀ ससुच्चय देव के ४२, देव का देव के साथ ४२, देव का देवी के साथ ४२, देवी का देव के साथ ४२, देवी का देवी के साथ ४२, ये कुल २१० आलापक (भग) होते है ऐसा कोई थोकडा वाले कहते है। तत्त्व केवली-गम्य है।

गोह की श्रेणी, गाय, गाय की श्रेणी, मनुष्य, मनुष्य की श्रेणी, महिष (भैंसा), महिष की श्रेणी, इन सब के दो तीन यावत् सख्यात खण्ड किये हो तो क्या बीच मे जीव के प्रदेश फरसते हैं ? हा- गौतम ! फरसते हैं ।

३—अहो भगवन् ! क्या शस्त्रप्रहार, अग्निताप आदि से उन प्रदेशो को बाधा पीडा होती है ? हे गौतम ! बाधा, पीडा नही होती है×।

४—अहो भगवन् ! पृथ्विया कितनी हैं ? हे गौतम ! पृथ्विया आठ हैं—१ रत्नप्रभा, २ शर्कराप्रभा, ३. वालुकाप्रभा, ४ पकप्रभा, ५ धूमप्रभा, ६ तमप्रभा, ७ तमतमाप्रभा, ८ ईसिपब्भारा (सिद्धशिला) ❀ ।

△

१६. 'आजीविक' का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, आठवा शतक, उद्देशा पाचवा)

१—अहो भगवन् ! कोई श्रावक घर की सब वस्तुओ को वोसिरा (त्याग) कर सामायिक, पौषध आदि

X वृक्षो का तथा कछुए आदि का विस्तार श्री पन्नवणा सूत्र के प्रथम पद से जानना ।

❀ रत्नप्रभा चरम है या अचरम है इत्यादि विस्तार श्री पन्नवणा सूत्र के थोकडो के प्रथम भाग से जानना ।

व्रत करके उपाश्रय मे बैठा है। कोई चोर उसकी वस्तु को चुरा ले गया। सामायिक, पौषध पार कर वह श्रावक उस वस्तु की खोज करे तो क्या वह वस्तु उसी की है या दूसरे की है ? हे गौतम ! वह वस्तु उस श्रावक की ही है, क्योकि उस वस्तु पर श्रावक की ममता है ममता छूटी नही। इसी तरह कोई श्रावक सब कुटुम्ब परिवार को वोसिरा कर सामायिक, पौषध आदि व्रत कर उपाश्रय मे बैठा है, उस वक्त कोई व्यभिचारी लम्पट पुरुष उस श्रावक की स्त्री को भोगता है, तो क्या वह जाया (श्रावक की स्त्री को) भोगता है, या अजाया (श्रावक की स्त्री नही) को भोगता है ? हे गौतम ! उस श्रावक की जाया को भोगता है, अजाया को नही। क्योकि श्रावक का उस पर प्रेमबन्ध है, प्रेमबन्ध छूटा नही।

श्रावक के त्याग-पच्चक्खाण के करण (करना, कराना, अनुमोदना), योग (मन, वचन, काया) सबन्धी ४९ भांगे हैं। अतीतकाल (भूतकाल) के पाप से निवृत्त होता है, वर्तमान मे सवर करता है, और आगामी काल के पच्चक्खाण करता है। इस तरह तीन काल सबन्धी ४९×३=१४७ भांगे होते है। पाच अणुव्रत सबन्धी १४७×५=७३५ मूल भागे होते है। ४९ भागो के ४९×४९=२४०१ उत्तर भागे होते हैं।

अहो भगवन् ! इस तरह कारण, योग के भागे गोशावलक के श्रावको के होते हैं ? हे गौतम ! नही होते

अहो भगवन् ! गोशालक के मुख्य श्रावक कितने हैं ? हे गौतम ! १२ हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं—१. ताल, २ तालप्रलम्ब, ३ उद्विध, ४ सविध, ५. अवविध, ६ उदय, ७ नामोदय, ८ नर्मोदय, ९ अनुपालक, १०. शखपालक, ११ आयबुल, १२ कातर । ये गोशालक को देव मानते हैं । माता-पिता की सेवा करते हैं । पाच प्रकार के फल नही खाते—१ उबर का फल, २ बड का फल, ३ बोर, ४ सत्तर (शहतूत) का फल, ५ पीपल का फल । वे लहसुन, कादा आदि कन्दमूल नही खाते । वे अनिर्लांछित (नपुसक नही बनाये हुए) तथा नाक नही बिंधे हुए बैलो से त्रसप्राणी की हिंसारहित व्यापार करके आजीविका करते हैं ।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के श्रावको को १५ कर्मादान करना, कराना, अनुमोदना नही कल्पता है ।❀

❀ पन्द्रह कर्मादान

जिन धधो और कार्यों (कर्म) से उत्कट ज्ञानवरणीय आदि कर्मों का बन्ध होता है उन्हे कर्मादान कहते हैं । कर्मादान श्रावको के जानने योग्य हैं पर आचरण योग्य नही हैं । ये कर्मादान पन्द्रह हैं —

१—इ गालकम्मे (अ गारकर्म)—जगल को खरीदकर व ठेके लेकर कोयले बनाने और बेचने का धन्धा करना अ गारकर्म है । इस मे छ काय के जीवो का वध है ।

१५ कर्मादानो के नाम—१. इगालकम्मे, २. वणकम्मे, ३. साडीकम्मे. ४. भाडीकम्मे, ५. फोडीकम्मे, ६ दतवाणिज्जे, ७ लक्खवाणिज्जे, ८. केसवाणिज्जे, ९ रसवाणिज्जे, १० विसवाणिज्जे, ११. जतपीलणकम्मे, १२. निल्लछणकम्मे, १३ दवग्गिदावणया, १४ सरदहतलायसोसणया १५. असईजणपोसणया । ये श्रावक त्याग-पच्चक्खाण का निर्मल पालन करके किसी एक देवलोक मे उत्पन्न होते हैं ।

अहो भगवन् ! देवलोक कितने प्रकार के है ? हे गौतम ! चार प्रकार के हैं—भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक ।

२—वणकम्मे (वनकर्म)—जगल को खरीदकर वृक्षो को काटकर बेचना और इससे आजीविका करना वनकर्म है ।

३—साड़ीकम्मे (शाकटिककर्म)—वाहन सहित गाडी, तागा, इक्का आदि बनाने और बेचने का धधा कर आजीविका करना शाकटिककर्म है ।

४—भाडीकम्मे (भाटीकर्म)—गाडी आदि से दूसरो का समान भाडे पर ले जाना तथा बैल, घोडे आदि को भाड़े देना—इस प्रकार भाड़े से आजीविका करना भाटीकर्म है ।

५—फोडीकम्मे (स्फोटककर्म) हल, कुदाली, सुरग आदि से भूमि, खान आदि फोडना और निकले हुए पत्थर आदि को बेचकर आजीविका करना अथवा जमीन

खोदने का ठेका लेकर जमीन खोदना और इस प्रकार आजीविका करना स्फोटककर्म है।

६—दतवाणिज्जे (दतवाणिज्य)—हाथीदात, शख, चर्म, चामर आदि खरीदने बेचने का धधा कर आजीविका करना दन्तवाणिज्य है। ये धन्धे करने वाले लोग हाथीदात आदि निकालने वालो को पहले इनके लिये अग्रिम मूल्य दे देते हैं और वे लोग हाथी आदि की हिसा कर हाथीदात आदि लाकर देते हैं। इस प्रकार ये व्यापार महा हिसाकारी है।

७—लक्ख वाणिज्जे (लाक्षा वाणिज्य)—लाख का क्रय विक्रय कर आजीविका करना लाक्षा वाणिज्य है। इसमे त्रस जीवो की बडी हिसा होती है।

८—रसवाणिज्जे (रसवाणिज्य)—मदिरा आदि बनाने और बेचने का कलाल आदि का धधा कर आजीविका करना रसवाणिज्य है। मदिरा बनाने मे हिसा तो होती ही है, किन्तु इसके पीने से अन्य बहुत से दोष सभव हैं।

९—विषवाणिज्जे (विषवाणिज्य)—विष शखिया आदि बेचने का धधा करना विषवाणिज्य है। इसमे बहुत जीवो की हिसा होती है।

१०—केशवाणिज्जे (केशवाणिज्य)—दासी को खरीद कर दूसरी जगह अधिक मूल्य मे बेचने का धन्धा करना केशवाणिज्य है।

११—जतपीलणकम्मे (यन्त्रपीडनकर्म)—तिल, ईख आदि पीलने के यन्त्र कोल्हू, चरखिये आदि से तिल आदि पीलने का धधा करना यन्त्रपीडनकर्म है। उस समय मे प्राय यही यन्त्र प्रसिद्ध थे। आज के युग के महा-रम्भपोषक जितने भी यन्त्र है, उनको भी उपलक्षण से यत्रपीडनकर्म मे शामिल किया जा सकता है।

१२—निल्लक्षणकम्मे (निलाञ्छनकर्म)- बैल, घोडे आदि को नपुंसक बनाने का धधा करना निर्लाञ्छनकर्म है।

१३—दवग्गिदावणया (दावग्निदापनता)—क्षेत्रादि साफ करने के लिये जगल मे आग लगा देना दावाग्नि-दापनता है। इसमे लाखो जीवो की हिसा होती है।

१४—सरदहतलायसोसणया (सरोह्रदतडागशोषणता)—गेहू आदि धान बोने के लिये सरोवर, ह्रद और तालाब को सुखाना सरोह्रदतडागशोषणता है।

१५—असईजणपोसणया (असतीजनपोषणता)—आजीविका के लिये दुश्चरित्र स्त्रियो का पोषण करना असतीजन पोषणता है।

१७. 'श्रमण निर्ग्रन्थों के सुख की तुल्यता का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, शतक चौदहवा, उद्देशा नौवां)

१—अहो भगवन् ! जो श्रमण-निर्ग्रन्थ आर्यपने–पापकर्म रहितपने विचरते हैं, उनका सुख कैसा होता है ? हे गौतम ! एक मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख वाणव्यन्तर देवो के सुख से बढकर होता है। दो मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख असुरेन्द्र के सिवाय बाकी भवनपतिदेवो (नव निकाय के देवो) के सुखसे बढकर होता है। तीन मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख असुरकुमारो से बढकर होता है। चार मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख ग्रह, नक्षत्र, तारा इन तीन ज्योतिषी देवो के सुख से बढकर होता है। पाच मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख सूर्य, चन्द्र ज्योतिषी देवो के सुख से बढ़कर होता है। छह मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख सौधर्म-ईशान देवलोक के देवो के सुख से बढकर होता है। सात मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख सनत्कुमार–माहेन्द्र देवलोक के देवो के सुख से बढकर होता है। आठ मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख ब्रह्मदेवलोक-लातकदेवलोक के देवो के सुख से बढकर होता है। नौ मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख महाशुक्र-सहस्रार देवलोक के देवो के सुख से बढकर होता है। दस मास की दीक्षापर्याय वाले

श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख आणत-प्राणत, आरण-अच्युत देव-लोको के देवो के सुख से वढकर होता है। ग्यारह मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण निर्ग्रन्थ का सुख ग्रैवेयकदेवो के सुख से बढकर होता है। वारह मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ का सुख पाच अनुत्तरविमान के देवो के सुख से बढ़कर होता है। इसके वाद अधिकाधिक शुद्ध (शुद्ध और शुद्धतर) परिणाम वाला होकर सिद्ध होता है यावत् सव दु.खों का अन्त करता है।

---

१८. 'केवली और सिद्ध' का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक चौदहवा, उद्देशा दसवा)

१ - अहो भगवन् ! क्या केवलज्ञानी छद्मस्थ को जानते और देखते है ? हा, गौतम ! जानते और देखते है। इसी तरह सिद्ध भगवान् भी छद्मस्थ को जानते और देखते हैं।

२—अहो भगवन् ! क्या केवलज्ञानी आधोवधिक (नियत क्षेत्र विषयक अवधिज्ञानी) को, परमावधिज्ञानी को, केवलज्ञानी को और सिद्धो को जानते और देखते है ? हा, गौतम ! जानते और देखते हैं। इसी तरह सिद्ध भगवान् भी इन सब को जानते और देखते है।

३—अहो भगवन् ! क्या केवलज्ञानी बोलते और प्रश्न का उत्तर देते हैं ? हा गौतम ! बोलते और प्रश्न का उत्तर देते हैं।

४—अहो भगवन् ! क्या केवलज्ञानी की तरह सिद्ध-भगवान् भी बोलते और प्रश्न का उत्तर देते हैं ? हे गौतम ! नही, सिद्ध भगवान् बोलते नही और प्रश्न का उत्तर भी नही देते हैं। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! केवलज्ञानी उत्थान (खडा होना), कर्म (गमनादि क्रिया करना) बल, वीर्य, पुरुषकार-पराक्रम सहित हैं और सिद्ध भगवान् उत्थान, कर्म, बल, वीर्य पुरुषकार-पराक्रम रहित हैं। इसलिये वे केवलज्ञानी की तरह बोलते नही और प्रश्न का उत्तर भी नही देते है।

५—अहो भगवन् ! क्या केवलज्ञानी अपनी आख को खोलते और बन्द करते हैं, शरीर को सकोचते और पसारते हैं, खडे रहते और बैठते हैं, शय्या (वसति) और नैषेधिकी (थोड़े समय के लिये वसति) क्रिया करते हैं ? हा गौतम ! ये सब क्रियाए करते हैं।

६—अहो भगवन् ! क्या केवलज्ञानी रत्नप्रभा पृथ्वी को 'यह रत्नप्रभा पृथ्वी है' इस तरह जानते और देखते हैं ? हा, गौतम ! जानते और देखते हैं। इसी तरह सिद्ध भगवान् के लिये कह देना चाहिए। इसी तरह शर्करा-पृथ्वी यावत् तमतमाप्रभापृथ्वी, बारह देवलोक, नवग्रैवेयक, पाच अनुत्तर विमान, ईषत्प्राग्भारापृथ्वी को भी जानते और देखते हैं।

७—अहो भगवन् ! क्या केवलीज्ञानी परमाणु पुद्-गल को, 'यह परमाणु पुद्गल है' इस तरह जानते और देखते हैं ? हा गौतम ! जानते और देखते हैं। इसी तरह

दो प्रदेशी, तीन प्रदेशी यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध को जानते और देखते है । इसी तरह सिद्ध भी परमाणु यावत् अनन्त प्रदेशी स्कध को जानते और देखते हैं ।

१६. तीन जागरणा का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक १२ वां, उद्देशा पहला)

१ अहो भगवन् ! जागरणा कितने प्रकार की है ? हे गौतम ! जागरणा तीन प्रकार की है❀ १ धर्म जागरणा, २ अधर्मजागरणा, ३ सुदक्खु जागरणा । (१) धर्म जागरणा के ४ भेद—१ आचार धर्म, २. क्रिया धर्म, ३ दया धर्म, ४ स्वभाव धर्म । आचार धर्म के ५ भेद—१. ज्ञानाचार, २, दर्शनाचार, ३ चारित्राचार, ४ तपाचार, ५, वीर्याचार । ज्ञानाचार के ८ भेद, दर्शनाचार के ८ भेद, चारित्राचार के ८ भेद, तपाचार के १२ भेद, वीर्याचार के ३ भेद, ये सब मिलाकर ३९ भेद हुए ।

ज्ञानाचार के आठ भेद—

(१) कालाचार—शास्त्र मे जिस समय जो सूत्र पढने की आज्ञा है, उस समय ही उसे पढना ।

(२) विनयाचार—ज्ञानदाता गुरु का विनय करना ।

❀ भेदानुभेद अन्य ग्रन्थो से लिये गये है ।

(३) बहुमानाचार—ज्ञानी और गुरु के प्रति हृदय मे भक्ति और श्रद्धा के भाव रखना ।

(४) उपधानाचार—ज्ञान सीखते हुए यथाशक्ति तप करना ।

(५) अनिह्नवाचार—ज्ञान पढाने वाले गुरु का नाम नही छिपाना ।

(६) व्यञ्जनाचार—सूत्र के पाठ का शुद्ध उच्चारण करना ।

(७) अर्थाचार—सूत्र का शुद्ध एव सत्य अर्थ करना ।

(८) तदुभयाचार—सूत्र और अर्थ दोनो को शुद्ध पढना और समझना ।

दर्शनाचार के ८ भेद—

(१) निशकिय (निशंकित)—वीतराग सर्वज्ञ के वचनो मे सदेह न करना ।

(२) निकखिय (नि काक्षित)—परदर्शन (मिथ्यामत) की वाछा नही करना ।

(३) निव्वितिगिच्छा (निर्विचित्सा)—क्रिया के फल मे (धर्मफल की प्राप्ति के विषय मे) सन्देह न करना ।

(४) अमूढदिट्ठि (अमूढदृष्टि)—पाखण्डियो का

(मिथ्यामत का) आडम्बर देखकर उसमें मोहित(मूच्छित) न होना।

(५) उववूह—गुणी पुरुषो को देखकर उनके गुणो की प्रशसा करना तथा स्वय भी उन गुणो को प्राप्त करने का प्रयत्न करना।

(६) थिरीकरणे (स्थिरीकरण)—धर्म से डिगते प्राणी को धर्म मे स्थिर करना।

(७) वच्छल (वात्सल्य)—अपने धर्म से तथा स्व-धर्मी बन्धुओ से प्रेम रखना।

(८) प्रभावना—वीतरागप्ररूपित धर्म की उन्नति करना, प्रचार करना, दिपाना, कृष्ण वासुदेव और श्रेणिक राजा की तरह।

चारित्राचार के ८ भेद—१. ईर्यासमिति, २. भाषा-समिति, ३ एषणासमिति, ४. आयाणभडमत्तनिखेवणासमिति, (आदानभडामात्रनिक्षेपणासमिति), ५ उच्चार–पासवण–खेल–जल्लसिघाणपरिठावणियासमिति (उच्चार–प्रश्रवण–खेल–जल्लसिघाणपरिस्थापनिकासमिति), ६. मनगुप्ति, ७. वचनगुप्ति, ८. कायगुप्ति।

तपाचार के १२ भेद—छह बाह्यतप, छह आभ्यन्तर[illegible] । छह बाह्यतप के नाम—१. अनशन, २. ऊनोदरी, ३. [illegible], ४ रसपरित्याग, ५ कायक्लेश, ६. प्रतिसली-[illegible]। आभ्यन्तरतप के ६ भेद—१. प्रायश्चित्त, २. विनय, ३. वैयावच्च, ४. स्वाध्याय, ५. ध्यान, ६. कायोत्सर्ग। तप

के ये १२ भेद हैं। इसलोक और परलोक मे सुख प्राप्ति आदि की वाछा रहित तप करना अथवा आजीविका रहित तप करना। ये तप के १२ आचार हैं।

वीर्याचार के ३ भेद—धर्मके कार्य में बल- वीर्य को गोपे (छिपावे) नही, २ पूर्वोक्त ३६ बोलो मे उद्यम करे, ३ शक्ति अनुसार धर्मकार्य करे। ये सब मिलाकर आचार-धर्म के ३९ भेद हुए।

२ क्रियाधर्म—करणसत्तरि के ७० बोल—

गाथा-पिंडविसोही समिई, भावणा पडिमा इ दियनिग्गहो य।
पहिलेहण गुत्तीओ, अभिग्गह चेव करण तु॥

अर्थ—४ चार प्रकार की पिण्डविशुद्धि, ५ पाच समिति १२ बारह भावना, १२ बारह भिक्षुपडिमा, ५ पाच इन्द्रियो का निरोध, २५ पच्चीस प्रकार की पडिलेहणा, ३ तीन गुप्ति, ४ चार अभिग्रह, ये सब मिलाकर ७० भेद हुए।

चरण सत्तरि के ७० बोल—

वय समणधम्म, सजम वेयावच्च च वभगुत्तीओ।
नाणाइत्तीय तव, कोइ निग्गहाइ चरणमेय॥

अर्थ—५ महाव्रत, १० यतिधर्म, १७ प्रकार का सयम १० प्रकार की वेयावच्च, ९ ब्रह्मचर्य की नव वाड, ३ तीन रत्न (ज्ञान, दशन, चारित्र), १२ बारह प्रकार का तप, ४ चार कषाय का निग्रह, ये सब मिलाकर चरणसत्तरि के ७० भेद हुए।

३ दयाधर्म के ८ भेद—१ स्वदया–अपनी आत्मा

को—पाप से बचाना, २ परदया—दूसरे जीवो की रक्षा करना, ३ द्रव्यदया—देखादेखी दया पालना या शर्म से जीवो की रक्षा करना अथवा कुलाचार से दया पालना, ४. भावदया—ज्ञान से जीव को जीवात्मा जानकर उस पर अनुकम्पा लाकर बचाना (जीव की रक्षा करना), ५. व्यवहार-दया—श्रावक के लिये जिस तरह दया पालना कहा है उसी तरह दया पालना, घर का कार्य करते हुए यतना रखना, ६. निश्चयदया—अपनी आत्मा को कर्मबन्धन से छुडाना, पुद्गल पर-वस्तु है, उस पर से ममता उतार कर, उसका परिचय छोडकर आत्मगुण मे रमण करना जीव का कर्म-रहित शुद्ध स्वरूप प्रकट करना, यह निश्चयदया चौदहवें गुणस्थान के अन्त मे पूर्णरूप से प्राप्त होती है। ७ स्वरूप-दया—किसी जीव को मारने के लिए पहले उसको खूब खिला पिला कर मोटा ताजा करे, सार-सभाल करे। यह दया ऊपर से दिखावा मात्र है, क्योकि पीछे उसको मारने के परिणाम है। जैसे कि उत्तराध्ययन सूत्र के सातवे अध्ययन मे बकरे का दृष्टान्त दिया गया है। ८ अनुबन्ध-दया—जीव को ऊपर से तकलीफ देवे किन्तु अन्दर के परिणाम उसको साता (सुख-शाति) पहुचाने के हैं। जैसे—माता पुत्र का रोग मिटाने के लिये उसे कडवी औषधि पिलावे। यद्यपि वह ऊपर से कडवी औषधि पिलाती है, किन्तु अन्दर मे उसका भला चाहती है। जैसे पिता पुत्र [illegible]ो अच्छी शिक्षा देने के लिये ऊपर से ताड़ना तर्जना [illegible]ता है, मारता-पीटता है, किन्तु अन्दर मे उसका भला [illegible]ता है, गुण वढाना चाहता है। जैसे—डाक्टर रोगी [illegible]ा चीरा-फाडा करता है। ऊपर से देखने मे वह भयकर

दिखता है, किन्तु अन्दर का परिणाम उसका रोग मिटाकर अच्छा करने का है।

४ स्वभावधर्म—जीव अथवा अजीव की परिणति को स्वभावधर्म कहते हैं। इसके २ भेद हैं—एक तो शुद्ध स्वभाव से शुद्ध परिणति। दूसरी कर्म के सयोग से अशुद्ध परिणति। इसको विभावपरिणति कहते हैं। जीव और पुद्गल के विभाव-परिणाम को दूर करके जीव अपने ज्ञानादि गुण मे रमण करे, वह जीव का स्वभावधर्म है। एक वर्ण, एक गध, एक रस, दो स्पर्श यह पुद्गल का शुद्ध स्वभाव धर्म है। धर्मास्तिकाय का चलनगुण, अधर्मास्तिकाय का स्थिरगुण, आकाशस्तिकाय का अवकाशगुण और काल का वर्तनागुण है। यह चारो स्वभावधर्म है, परन्तु विभावधर्म नही है। ये चारो अपने स्वभाव को नही छोडते। इसलिये यह इनका शुद्ध स्वभावधर्म है। यह चार प्रकार की धर्मजागरणा कही गई है।

(२) अधर्मजागरणा—ससार मे धन, कुटुम्ब, परिवार का सयोग मिलाना, उनके लिए आरम्भादिक करना, धन की रक्षा करना, उसमे एकाग्रदृष्टि रखना। यह अधर्मजागरणा है।

(३) सुदुक्खुजागरणा—'सु' का मतलव है भली (अच्छी) 'दक्खु' का मतलव है चतुराई वाली जागरणा। यह जागरणा श्रावक के होती है, क्योकि श्रावक सम्यग्ज्ञानदर्शन सहित है। वह धन, कुटुम्वादिक को तथा विषय, कषाय को वुरा समझता है। इनसे देशत (किंचित् अ श

से) निवर्ता है। उदयभाव से उदासीनपने रहता है, तीन मनोरथ चिंतवता है। यह सुदक्खु जागरणा है।

—꧁—

२०. जयन्तीबाई का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक १२ वां, उद्देशा दूसरा)

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में कौशाम्बी नाम की नगरी थी। चन्द्रावतरण नाम का बगीचा था। कौशाम्बी नगरी मे सहस्रानीक राजा का पौत्र, शतानीक राजा का पुत्र, चेडा(चेटक)राजा का दोहिता, मृगावती देवी का अंगजात, जयन्ती श्रमणोपासिका का भतीजा उदायन नाम का राजा राज्य करता था। सहस्रानीक राजा की पुत्रवधू (बेटे की बहू), शतानीक राजा की पत्नी, चेडा राजा की पुत्री, उदायन राजा की माता, जयन्ती श्रमणोपासिका की भोजाई, मृगावती नाम की रानी थी। वह सुकुमाल यावत् सुरूप वाली श्रमणोपासिका थी। सहस्रानीक राजा की पुत्री, शतानीक राजा की बहन, उदायन राजा की भुआ, मृगावती रानी की ननद, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के साधुओ की प्रथम शय्यातर (मकान देने वाली) जयन्ती नाम की श्रमणोपासिका थी। वह सुकुमाल यावत् जीवाजीव के स्वरूप को जानने वाली थी।

नोट—तीन जागरणा तो भगवती मे कही है, लेकिन इस थोकड़े का विस्तार दूसरी जगह से लिया है।

एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहा पधारे। यह समाचार सुनकर सब हर्षित हुए। राजादि सव वन्दनार्थ गये। जयन्ती श्रमणोपासिका भी मृगावती रानी के साथ वन्दना करने के लिए गई। भगवान् ने धर्म-कथा फरमाई। धर्मकथा सुनकर परिषद् वापिस चली गये। उस समय जयन्ती श्रमणोपासिका ने भगवान् को वन्दना नमस्कार करके विनय पूर्वक प्रश्न पूछे—

१—अहो भगवन्! किस कारण से जीव हल्का होता है और किस कारण से भारी होता है? हे जयन्ती! १८ पापो से निवर्तने से जीव हल्का होता है और १८ पापो मे प्रवर्तने से जीव भारी होता है।

२—अहो भगवन्! किस कारण से जीव ससार घटाता है और किस कारण से ससार बढाता है? हे जयन्ती! १८ पापो से निवर्तने से जीव ससार घटाता है और १८ पापो मे प्रवर्तने से जीव ससार बढाता है।

३—अहो भगवन्! किस कारण से जीव स्थिति (कर्मों की स्थिति) घटाता है और किस कारण से जीव स्थिति बढाता है? हे जयन्ती! १८ पापो से निवर्तने से जीव स्थिति घटाता है और १८ पापो मे प्रवर्तने से जीव स्थिति बढाता है।

४—अहो—भगवन्! किस कारण से जीव ससार सागर तिरता है और किस कारण से जीव ससार मे परि-भ्रमण करता है? हे जयन्ती! १८ पापो से निवर्तने से

जीव ससारसागर तिरता है और १८ पापों मे प्रवर्तने से जीव ससार मे परिभ्रमण करता है ।

५—अहो भगवन् ! जीवो के भवसिद्धिपना स्वभाव से है या परिणाम से ? हे जयन्ती ! जीवो के भवसिद्धिपना ❀ स्वभाव से है, परिणाम से नही ।

६—अहो भगवन् ! क्या सब भवसिद्धिक जीव मोक्ष जावेगे ? हा, जयन्ती × सब भवसिद्धिक जीव मोक्ष जावेगे ।

७—अहो भगवन् ! सब भवसिद्धिक जीव मोक्ष मे चले जावेगे तो क्या लोक भवसिद्धिक जीवो से रहित हो जायगा ? हे जयन्ती ! णो इणट्ठे समट्ठे अर्थात् सब भवसिद्धिक जीव मोक्ष जावेगे तो भी यह लोक भवसिद्धिक जीवो से रहित नही होगा ।

अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? यथा दृष्टान्त

❀ स्वाभाविकभाव को स्वभाव कहते हैं । जैसे पुद्गल मूर्तत्व (मूर्तपना) स्वाभाविक भाव है । रूपान्तर एक रूप से दूसरे रूप मे बदल जाने को परिणाम कहते हैं । जैसे बचपन, जवानी, बुढापा आदि परिणाम हैं ।

X भवी जीव तीन प्रकार के होते है—१. जातिभवी, २ दुर्भवी, ३ निकटभवी । जाति भवी तो कभी मोक्ष मे [illegible] जाते है । दुर्भवी भवस्थिति पकने पर मोक्ष जावेगे । [illegible] जल्दी ही मोक्ष जावेंगे । यहा पर निकटभवी के [illegible]ये यह प्रश्न समव होता है । तत्त्व केवलीगम्य ।

–जैसे सर्वआकाश की श्रेणी अनादि-अनन्त है। उसमे से एक-एक परमाणुखण्ड एक-एक समय अपहरे (निकाले)। इस तरह निकलते-निकलते अनन्ती अवसर्पिणी उत्सर्पिणी पूरी हो जावे तो भी वह आकाशश्रेणी खाली नही होती। इसी तरह भवसिद्धिक जीव मोक्ष जावें तो भी यह लोक भवसिद्धिक जीवो से खाली नही होगा।

८—अहो भगवन्! क्या जीव सोते हुए अच्छे या जागते हुए अच्छे? हे जयन्ती! कोई जीव सोते हुए अच्छे और कोई जीव जागते हुए अच्छे। अहो भगवन्! इसका क्या कारण? हे जयन्ती! जो जीव अधर्मी हैं, अधर्म का काम करते हैं, अधर्म का उपदेश देते हैं, अधर्म मे आनन्द मानते हैं यावत् अधर्म से आजीविका करते हैं, वे जीव सोते हुए अच्छे हैं। सोते हुए वे सर्व प्राणभूत, जीव, सत्त्व को दुःख नही उपजाते यावत् परितापना नही उपजाते। अपनी तथा दूसरो की आत्मा को अधर्म नही जोड़ते, इस कारण से अधर्मी जीव सोते हुए अच्छे हैं। जो जीव धर्मी हैं यावत् धर्म से आजीविका करते हैं वे जागते हुए अच्छे हैं, क्योंकि जागते हुए वे सर्व प्राण, भूत, जीव, सत्त्व को सुख उपजाते हैं यावत् अपनी तथा दूसरो की आत्मा को धर्म मे जोडते हैं।

९–१०–जिस तरह सोते, जागते का कहा उसी तरह बलवान् और निर्बल का तथा उद्यमी और आलसी का कह देना चाहिए, सिर्फ इतनी विशेषता है कि जो उद्यमी होगा वह आचार्य उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी यावत् स्वधर्मी की वैयावच्च मे अपनी आत्मा को जोडेगा।

११—अहो भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय के वश हुआ जीव क्या बांधता है ? हे जयन्ती ! आयुष्यकर्म को छोडकर बाकी ७ कर्मों की प्रकृति ढीली हो तो गाढी करता है, थोड़े काल की स्थिति हो तो बहुत काल की स्थिति करता है। मन्दरस हो तो तीव्र रस करता है, अल्पप्रदेश हो तो बहुप्रदेश करता है। आयुष्य बांधता है, अथवा नही बाधता है। असातावेदनीयकर्म बारम्बार बांधता है, चार गति रूप ससार मे परिभ्रमण करता है।

१२-१५—जिस तरह श्रोत्रेन्द्रिय का कहा, उसी तरह से चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय का कह देना चाहिए।

प्रश्नो का उत्तर सुनकर जयन्तीबाई श्रमणोपासिका हर्ष, सन्तोष को प्राप्त हुई यावत् देवानन्दाजी की तरह दीक्षा लेकर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गई।

❀

२१. तेतीस बोल का थोकड़ा

पहले बोले—एक प्रकार का असयम-सर्व आस्रव से नही होना।

दूसरे बोले—दो प्रकार का बन्धन–रागबन्धन और द्वेषबन्धन।

तीसरे बोले—१ तीन प्रकार का दण्ड—१ मनदण्ड, २ वचनदण्ड, ३ कायदण्ड ।

२ तीन प्रकार की गुप्ति—१ मनगुप्ति, २ वचन-गुप्ति, ३ कायगुप्ति ।

३ तीन प्रकार का शल्य—१ मायाशल्य, २ नियाण (निदान) शल्य, ३ मिथ्यादर्शनशल्य ।

४ तीन प्रकार का गर्व—१ ऋद्धिगर्व, २ रसगर्व ३ सातागर्व ।

५ तीन प्रकार की विराधना—१ ज्ञान-की विरा-धना, २ दर्शन की विराधना, ३ चारित्र की विराधना ।

चौथे बोल—चार कषाय-१ क्रोधकषाय, २ मान-कषाय, ३ मायाकषाय, ४ लोभकषाय ।

चार सज्ञा—१ आहारसज्ञा, २ भयसज्ञा, ३ मैथुन-सज्ञा, ४ परिग्रहसज्ञा ।

चार कथा—१ राज्यकथा, २ देशकथा, ३ स्त्रीकथा, ४ भातकथा (इन चारो सम्बन्धी कथा) ।

चार ध्यान—१ आर्तध्यान, २ रौद्रध्यान, ३ धर्म-ध्यान, ४ शुक्लध्यान तथा १ पदस्थ, २ पिण्डस्थ, ३ रूप-स्थ और ४ रूपातीतध्यान ।

पाचवें बोले—पाच क्रिया—१ कायिकी, २ अधिकर-णिकी, ३ प्रद्वेषिकी, ४ पारितापनिकी, ५ प्राणातिपातिकी ।

पाच कामगुण– शब्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्श।

पाच महाव्रत—१ सर्वथा प्राणातिपात से निवृत्ति, २ सर्वथा मृषावाद से निवृत्ति, ३ सर्वथा अदत्तादान से निवृत्ति, ४ सर्वथा मैथुन से निवृत्ति ५ सर्वथा परिग्रह से निवृत्ति (सर्वथा त्रिकरण त्रिजोग से)।

पाच समिति—१ ईर्यासमिति, २ भाषासमिति, ३ एषणासमिति, ४ आदानभडमत्तनिक्षेपनासमिति, ५ उच्चार-प्रस्त्रवणखेलजतश्लेष्मपरिस्थापनिकासमिति) (इन कामो मे शुद्ध उपयोग)।

पाच प्रमाद—१ मद, २ विषय, ३ कषाय, ४ निद्रा, ५ विकथा।

छठे बोले छह काय १ पृथ्वीकाय, २ अप्काय, ३ तेजस्काय, ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय, ६ त्रसकाय।

छह लेश्या—१ कृष्णलेश्या, २ नीललेश्या, २ कापोतलेश्या, ४ तेजोलेश्या, ५ पद्मलेश्या, ६ शुक्ललेश्या।

सातवें बोले—सात भय—१ इहलोकभय—मनुष्य से मनुष्य को भय।

२ परलोकभय – मनुष्य को देवता या तिर्यंच से भय।

३ आदानभय—धन–दौलत के नष्ट होने का भय।

४ अकस्मात् भय—कही से अनधारी आपत्ति आ ावे—अचानक दु ख आ जावे ऐसा भय।

५ आजीविकाभय—भविष्य मे खाने-पीने को मिलेगा या नही, सुख से गुजर होने मे बाधा न आ जावे, ऐसा भय ।

६ अपयशभय—किसी तरह इज्जत मे हरकत पहुचे या यशकीर्ति जैसी है वैसी कैसे बनी रहेगी, ऐसा भय ।

७ मरणभय—मौत का डर - कब मरु गा यह निश्चित नही होने से हर समय मरण की शका रखना ।

आठवें बोले—आठ मद—१ जातिमद, २ कुलमद, ३ बलमद, ४ रूपमद, ५ तपमद, ६ लाभमद, ७ सूत्रमद, ८ ऐश्वर्यमद (अहकार) ।

नववें बोले—ब्रह्मचर्य की नव गुप्ति—रक्षा-वाडें—(१) ब्रह्मचारी पुरुष ऐसे स्थान मे न रहे जहा स्त्री, पशु, नपु सक रहते है वा वारम्बार आते-जाते हो और रहे तो चूहे और बिल्ली का दृष्टान्त—जिस जगह बिल्ली रहती हो उस जगह चूहे, चाहे जितनी सावधानी से रहे, तो भी उनके मारे जाने का सभव है । तैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष, स्त्री वगैरह सहित स्थान भोगवे तो उसके ब्रह्मचय के खण्डित होने का सभव है । (२) ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री सम्बन्धी का कामराग बढाने वाली कथा-वार्ता करे नही और करे तो निम्बू और रसना (जीभ) का दृष्टान्त । जैसे—निम्बू रस का जानकार जब निम्बू का नाम लेता है कि उसके मु ह मे पानी—छूटने लगता है—आ जाता है तैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री सम्बन्धी वार्ता करे तो शीलरत्न

के भंग होने की संभावना रहती है, (३) स्त्री जिस स्थान पर कुछ देर बैठी होवे उस स्थान पर ब्रह्मचारी को कुछ समय तक बैठना नहीं तथा स्त्री के साथ भी बैठना नहीं और बैठे तो कोरा और कणक का दृष्टान्त जैसे कोरे का फल कणक (भिजा हुवा आटा) के पास रखा जावे तो वह कणक ज्यादा-ज्यादा गीला होता जाता है और उसका रसकस घटता जाता है, तैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष का स्त्री के आसन पर बैठने से ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है। (४) ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री के अंगोपाग, रूपलावण्य निरखे नही-बारम्बार नजर-भरके देखे नही, देखे तो कच्ची आख और सूय का दृष्टान्त। जैसे जन्मता बालक सूर्य को देखे तो अन्धा हो जाता है या उसका दृष्टिविषय घट जाता है, तैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री के अग उपाग निरखे तो ब्रह्मचर्य का नाश होने का संभव है। (५) ब्रह्मचारी पुरुष स्त्री के रुदन, गीत, हास्य, आक्रद, कूजित इत्यादि शब्द सुनाई पडे, वैसी भीत या टाटी की आड़ में वास करे नही (पास के मकान मे से भी इनकी ध्वनि कानो मे आती हो, वहा न रहे) और रहे तो मेघ और मोर का दृष्टान्त। मेघ के वादल के गर्जने पर मोर (मयूर) अवश्य बोलता है —कोकाट करता है, तैसे ही स्त्री के हास्यादि शब्द सुनने पर कामराग वढ़ता और ब्रह्मचर्य खण्डित होने का सभव रहता है। (६) ब्रह्मचारी पुरुष पूर्वकाल के स्त्री के साथ भोगे हुवे भोगो को याद न करे और करे तो ननरक्ख और रयणादेवी का दृष्टान्त जैसे जिनरक्ख रय-णादेवी के साथ के कामभोग याद करके ललचा गया और प्राण खोये, तैसे ब्रह्मचारी पुरुप पूर्व के कामभोग का

वारम्बार स्मरण करे तो शीलरत्न गुमा देता है। (७) ब्रह्मचारी पुरुष हमेशा सरस-स्वादिष्ट आहार करे नही और करे तो सन्निपात के रोगी का दूध-मिश्री का दृष्टान्त, अर्थात् जिसको सन्निपात-शीत हो गया है उसे दूध मिश्री पिलाई जावे तो वह मर जाता है, तैसे ही हमेशा सरस पुष्ट आहार करने वाला ब्रह्मचारी अपना ब्रह्मचर्य खो बैठता है। (८) ब्रह्मचारी पुरुष लूखा नीरस आहार भी दाब-दाब के करे नही, अधिक करे तो सेर की हाडी मे सवा सेर का दृष्टान्त, अर्थात् जिस गारे की (कच्ची मिट्टी की) हाडी मे सेर धान्य पकता है, उसमे सवासेर राधा जावे तो हाडी का नुकसान होता है—फट जाती है, तैसे ब्रह्मचारी अधिक भोजन करे तो ब्रह्मचर्य गुमा देता है—नष्ट कर देता है।

(९) ब्रह्मचारी पुरुष को स्नान श्रृंगार करना नही, शरीर का मण्डन-विभूषा करना नही और करे तो रंक के हाथ मे रत्ना का दृष्टान्त—जिस प्रकार रक पुरुष मे रत्न रखने की योग्यता न होने से उसे बाजार मे हाथो मे उछालता चलता है, देखने वाले का मन चल जाता है और रत्न खोस लिया जाता है, वह मूर्ख उसे पेटी मे वन्द नही रखता है, तैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष नहावे, धोवे श्रृगार करे तो उसमे भी शील रत्न को रखने की अयोग्यता है, स्त्री वगैर का मन शीलरत्न को लुटाने का हो जाता है और ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है।

दसवें बोल—दस प्रकार का यतिधर्म—(१) खन्ति—अपराधी पर वैरभाव नही रखना, क्षमा धारना (२) मुत्ति—

लोभरहित बनना, (३) अज्जवे—सरलता, निष्कपटता, (४) मद्दवे—मार्दव, नम्रता, अहकार का त्याग, (५) लाघवे–भण्डोपगरणा की उपाधि थोडी होना, (६) सच्चे-सचाई से, प्रामाणिकता से बोलना व आचरण करना,(७) सयमे—शरीर, मन और इन्द्रियो को काबू मे रखना, वश करके नियम मे रखना, (८) तवोआत्मशक्ति वढे, इच्छा-शक्ति बढे, मनोबल दृढ होवे, उस विधि से उपवास वगैरह तप करना, (९) चियाए—ममता का त्याग करना, (१०) बम्भ चेरवासे—शुद्ध आचार पाले, मैथुन से सपूर्ण निवृत्ति करे, पराङ्मुख रहे । दश प्रकार की समाचारी (१)आव-स्सिया—उपाश्रय (स्थानक) बाहर जाने का होवे तब बडे मुनि से अर्ज करे कि मुझे बाहर जाना जरूरी है । (२) निसीहिया—उपाश्रय मे पीछा लौटते वख्त गुर्वादिसे कहे मैं अपने काम से निवृत्त होकर आ गया हू । (३)आपुच्छणा-खुद के काम होवे तो गुरु से पूछे । (४) पडिपुच्छणा—अन्य मुनियो के काम होवे तो गुरु से बारम्बार पूछे ।(५) छन्दणा—अपनी लाई हुई वस्तु बडो को धामे, देने को कहे । (६) इच्छाकार—गुरु से अर्ज करे कि अगर आपकी इच्छा होवे तो मुझे सूत्रार्थज्ञानदान दीजिये । (७)मिच्छा-कार—पाप कर्म को गुरु के सामने मिथ्या दुष्कृत कहे । (८) तहक्कार—गुरु के वचन को प्रमाण करे । स्वीकार करे अथवा आप जैसा कहते हो वैसा ही है, ऐसा कहे । (९) अब्भुट्ठाण—गुरु तथा बडे मुनिवर आवे तब सात आठ कदम-पग सामा जावे और पीछा लौटे तब उतना ही पहुचाने जावे, (१०) उवसपया—गुरुजनो से सूत्रार्थ लक्ष्मी पाने के वास्ते हमेशा सावधान रहे और गुरु के पास मे

रहे ।

इग्यारहवें बोल—श्रावक की ग्यारह प्रतिमा—(१) दर्शन-प्रतिमा-एक मास की, शुद्ध अतिचार रहित समकित धर्म पाले । (२) व्रत-प्रतिमा—दो मास की, नाना प्रकार के व्रत नियम अतिचार रहित पाले, (३) सामायिक प्रतिमा—तीन मास की अतिचार रहित हमेशा सामायिक करे, (४) पौपधप्रतिमा—चार मास की, अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा वगैरह को पौषध अतिचार रहित करे, (५) कायोत्सर्गप्रतिमा—मास की, हमेशा रात्रि के अन्दर कायोत्सर्ग करे और पाच बातो का पालन करे—१ स्नान न करे, २ रात्रिभोजन त्यागे, ३ धोती की लाग खुली रखे, ४ दिन को ब्रह्मचर्य पाले ५ रात्रि को ब्रह्मचर्य का परिमाण करे" (६) ब्रह्मचर्यप्रतिमा—छह मास की, निरतिचार पूर्ण ब्रह्मचर्य पाले । (७) सचित्तप्रतिमा—जघन्य (कमती से कमती) एक दिन की उत्कृष्ट (ज्यादा से ज्यादा) सात मास की, सचित्तवस्तु नही भोगे ।(८)आरभ प्रतिमा—जघन्य एक दिन की उत्कृष्ट आठ मास की, आप खुद आरभ करे नही । (९) प्रेष्यप्रतिमा—जघन्य एक दिन की उत्कृष्ट नव मास की, दूसरे से भी आरभ करावे नही । (१०) उद्दिष्टत्त्यय प्रतिमा—जघन्य एक दिन की उत्कृष्ट दस मास की, इनके वास्ते आरभ करके कोई वस्तु देवे तो लेवे नही, खुरमुण्डन करावे-शिखा रखे कोई उनसे कुछ बात एक वक्त पूछे या वारम्बार पूछे जानते होवे तब तो हा कहे और नही जानते होवे तो ना कहे । (११) श्रमणभूतप्रतिमा—उत्कृष्ट ग्यारह मास की, खुरमुण्डन करे या लोच करे, साधु जितना ही

उपकरण पात्र रजोहरण रखे, स्वज्ञाति की गोचरी करे और कहे कि मैं श्रावक हू, साधु माफक उपदेश देवे। सर्व प्रतिमा मे साढे पाच वर्ष लगे।

बारहवें बोले—भिक्षु की बारह प्रतिमा—निचे लिखी हुई तेरह कलमे हरएक प्रतिमाधारी पाले, (१) पहेली प्रतिमा एक मास की–जिसमे (१) शरीर पर ममता रखे नही, शरीर की शुश्रुषा करे नही, देव मनुष्य तिर्यच सम्बन्धी उपसर्ग सम परिणाम से सहन करे।

(२) एक दाति आहार और एक दाति पाणी—प्रासुक तथा ऐषणिक लेवे। (दाति=धार=एक साथ, धार खण्डित हुवे बिना जितना पात्र मे पड़े इतने को दाति कहते है।

(३) प्रतिमाधारी साधु गौचरी के वास्ते दिन के तीन विभाग करे और तीन भागो मे से चाहे जिस एक विभाग मे गोचरी करे।

(४) प्रतिमारी साधु छह प्रकार से गोचरी करे। (१) पेटी के आकारे, (२) अर्धपेटी के आकारे, (३) बैल के मूत्र के आकारे, (४) पतग उड़े उस तरह, (५) शखावर्तन, (६) जावतां करे तो आवता नही करे और आवता करे तो जावतां नहीं करे।

(५) गाम के लोगो को मालूम पड़ जावे कि यह यह प्रतिमाधारी मुनि है तो वहा एक रात ही रहे और ऐसा मालूम नही पड़े तो दो रात्रि रहे, उपरान्त जितनी

रात रहे उतना प्रायश्चित का भागी बने ।

(६) प्रतिमाधारी साधु चार कारण से बोलते हैं । १ याचना करने को, २ मार्ग पूछने को, ३ आज्ञा पाने को, ४ प्रश्न के उत्तर देने को ।

(७) प्रतिमाधारी साधु तीन स्थान मे निवास करे— १ बागबगीचा, २ श्मशान–छत्री, ३ वृक्ष का तला, इनकी याचना करे ।

(८) प्रतिमाधारी साधु को तीन प्रकार की शय्या— १ पृथ्वी. २ शिला, ३ काष्ट ।

(९) प्रतिमाधारी साधु जिस स्थान मे है, वहा स्त्री प्रमुख आवे तो भय के मारे बाहर निकले नही, कोई जबरन् हाथ पकड कर काढे तो ईर्यासमिति सहित बाहर हो जावे तथा वहा आग लगे तो भी भय से बाहर आवे नही, कोई बाहर काढे तो ईर्यासमिति पूर्वक बाहर निकल जावे ।

(१०) प्रतिमाधारी साधु के पग मे काटा लग जावे और आख मे काटा (धूल-तृण प्रमुख) पड जावे तो आप उसे अपने हाथो से काढे नही ।

(११) प्रतिमाधारी साधु सूर्योदय से सूर्य के अस्त होने तक विहार करे, बाद मे एक पग भी चले नही ।

(१२) प्रतिमाधारी साधु को सचित्त पृथ्वी पर बैठना, सोना कल्पे नही तथा सचित्त रज लगे हुवे पैरो से

(पग से) गृहस्थ के यहा गोचरी जाना कल्पे नही।

(१३) प्रतिमाधारी साधु प्रासुक जल से भी हाथ पग मुह प्रमुख धोवे नहीं, अशुचि का लेप दूर करने को धोना कल्पता है।

(१४) प्रतिमाधारी साधु के मार्ग मे हाथी, घोडा अथवा जगली जानवर सामने आया होवे तो भी मुनि भय से रास्ता छोडे नही—जानवर की दया खातिर अलग हो जाते हैं तथा रास्ते चलते तडके से छाया मे और छाया से तडके मे आवे नही, शीत-उष्णता को सम परिणाम से सहन करे।

(२) दूसरी प्रतिमा एक मास की, जिसमे दो दाति अन्न और दो दाति पानी का लेना कल्पता है।

(३) तीसरी प्रतिमा एक मास की, जिसमे तीन दाति अन्न और तीन पानी लेना कल्पे। इस तरह चौथी, पाचवी, छट्ठी, सातवी प्रतिमा भी एक—एक मास की। उनमें चार दाति, पांच दाति, छह दाति, सात दाति आहार-पानी लेना कल्पे।

(८) आठवी प्रतिमा सात दिन। की चौविहार एकान्तर तप करे, ग्राम के बाहर रहे। तीन आसन करे—चित्ता सुवे, करवट (एक बाजु पर) सुवे, पलाठी (पालखी) लगाकर सुवे, परिसह से डरे नही।

(६) नवमी प्रतिमा सात दिन की ऊपर प्रमाणे,

इतना विशेष की तीन आसन करे–दण्ड–आसन, लकुट–आसन, उत्कट–आसन ।

(१०) दशमी प्रतिमा सात दिन की। उपर प्रमाणे, इतना विशेष की तीन मे से एक आसन करे—गोदुह–आसन, वीरासन, अम्बकुब्ज–आसन ।

(११) ग्यारहवी प्रतिमा एक दिन की । चौविहार वेला करे, गाम वाहर पग सकोचकर, हाथ पसारकर कायोत्सर्ग करे ।

(१२) वारहवी प्रतिमा एक दिन की। चौविहार तेला करे, गाम वाहर शरीर त्याग के, नेत्र खुले रख कर, पग सकोच, हाथ पसार, अमुक वस्तु पर दृष्टि लगाकर ध्यान करे । देव–मनुष्य–तिर्यंचसम्बन्धी उपसर्ग सहे । इस प्रतिमा के आराधन से अवधि–मन पर्यय–केवल–ज्ञान इन तीन मे का एक ज्ञान होता है और आसन से चल जावे तो पागल वन जावे, दीर्घकाल का रोग पावे, केवलीप्ररूपित धर्म से भ्रष्ट वने ।

इन कुल वारह प्रतिमाओ का काल आठ मास का है ।

तेरहवें वोले—तेरह क्रियास्थान—(१) अर्थदण्ड–खुद के लिये हिंसादि करे, (२) अनर्थदण्ड–निरर्थक वा कुत्सित अर्थ के वास्ते हिंसादि करे, (३) हिंसादण्ड—उसने मुझे मारा था, मारता है वा मारेगा । इस भाव से उसे मारना, (४) अकस्मात्दण्ड, मारना किसे था और बीच

में मर जाने दूसरा, (५) दृष्टिविपर्यासदृष्टि - दुश्मन जानकर मित्र को मार डालना, (६) मृषावाददण्ड—असत्य-भाषण करना, (७) अदत्तादान—दण्ड–चोरी करना, (८) अभ्यस्थदण्ड—मन मे दुष्ट कल्पना करना, (९) मान–दण्ड-गर्व करना, (१०) मित्रदण्ड माता-पिता, मित्रवर्ग को अल्प अपराध पर भी भारी दण्ड देना, (११) मायादण्ड, कपट करना, (१२) लोभदण्ड— लोभ करना, (१३) ईर्यापथिकदण्ड—रास्ते चालता जीव- हिंसा होवे ।

चौदहवें बोले—जीव के चौदह भेद । (१) सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, (२) सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, (३) बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, (४) बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, (५) द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, (६) द्वीन्द्रिय पर्याप्त, (७) त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, (८) त्रीन्द्रिय पर्याप्त, (९) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, (१०) चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, (११) असज्ञी पचेन्द्रिय अपर्याप्त (१२) असज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त, (१३) सज्ञी पचेन्द्रिय अपर्याप्त, (१४) सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त ।

पन्दरहवें बोले - पन्दरह परमाधर्मीदेव—(१) आम्र, (२) आम्ररस, (३) शाम, (४) सबल, (५) रुद्र, (६) वैरुद्र, (७) काल, (८) महाकाल, (९) असिपत्र, (१०) धनुष, (११) कुंभ, (१२) वालुक, (१३) वैतरणी, (१४) खरस्वर, (१५) महाघोष ।

सोलहवें बोले—सूत्रकृताग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह अध्ययन–नाम—(१) स्वसमय–परसमय, (२) वैदारिक, (३) उपसर्गप्रज्ञा, (४) स्त्रीप्रज्ञा, (५) नरकविभक्ति,

(६) वीरस्तुति, (७) कुशीलपरिभाषा, (८) वीर्याध्ययन, (६) धर्मध्यान, (१०) समाधि, (११) मोक्षमार्ग, (१२) समवसरण, (१३) अथातथ्य, (१४)ग्रन्थी, (१५)यमतिथि, (१६) गाथा ।

सत्तरहवें बोले—सत्तरह प्रकार का सयम,(१)पृथ्वीयसयम, (२) अप्कायसयम,(३) तेजस्कायसयम,(४) वायुकायसयम, (५) वनस्पतिकायसयम, (६) द्वीन्द्रियसयम, (७)त्रीन्द्रिय-सयम, (८) चतुरिन्द्रियसयम, (६) पचेन्द्रियसयम, (१०) अजीवकाय्यसयम, (११) प्रेक्षासयम, (१२) उत्प्रेक्षासयम, (१३) अपहृत्य-(पढाना) सयम, (१४) प्रमार्जनासयम, (१५) मन सयम, (१६) वचनसयम, (१७) शरीर-सयम ।

अठारहवें बोले—अठारह प्रकार का ब्रह्मचर्य—१-मन करके, वचन करके, काया करके औदारिक-शरीरसम्बन्धी भोग सेवे नही, सेवावे नही और जो सेवन करते हैं, उन्हे अनुमोदे (प्रशसे) नही (३×३=६ हुए) तैसे ही नव भेदे वैक्रियशरीरसम्बन्धी त्रिकरण त्रिजोग के हैं ।

उन्नीसवें बोले—उन्नीस (१६) ज्ञातासूत्र के अध्ययन हैं—१ उत्क्षिप्त मेघकुमार का, २ धन्नासार्थवाह और विजय चोर का, ३ मोर के अण्डो का, ४ काचवा(कूर्म) का, ५ शैलक राजर्षि का, ६ तुवडे का, ७ धन्नासार्थ-वाह और चार वहूओ का, ८ मल्लीभगवती का, ६ जिनपाल और जिनरक्षित का, १० चन्द्र की कला का, ११ दावानल का, १२ जितशत्रु राजा और सुबुद्धिप्रधान

का, १३ नन्दमणिकार का, १४. तेतलीपुत्र प्रधान और सुनार की पुत्री पोटिला का, १५. नदीफल का, १६. अमरकका का, १७. समुद्रअश्व का, १८ सुसीमा दारिका का, १६. पुंडरीक कुंडरीक का।

बीसवें बोले—बीस असमाधि के स्थानक—१. उतावले से चाले, २ पुज्या बिना चाले, ३. अयोग्य रीति से पूंजे, ४ पाट-पाटला ज्यादा रखे, ५. वड़ो के, गुरुजनो के सामे बोले, ६. वृद्धस्थविर-गुरु का उपघात करे, (मृतप्राय. करे), ७ साता-रस-विभूषानिमित्त एकेन्द्रिय जीव हणे, ८. पल-पल मे क्रोध करे, ६ हमेशा क्रोध मे जलता रहे, १०. दूसरे के अवगुण खोले, चुगली–निंदा करे, ११. निश्चयकारी भाषा बोले, १२ नया क्लेश खडा करे, १३ उपशमे (मिटे) हुए क्लेश को पीछा चेतावे, १४ अकाले स्वाध्याय करे, १५. सचित्त पृथ्वी से भरे हुए हाथो से गोचरी करे, १६ एक प्रहर रात्रि बीतने पर भी जोर-जोर से बोले, १७ गच्छ मे भेद पाडे, १८. क्लेश फैलाकर गच्छ मे परस्पर दुःख उपजावे, १६ दिन उगने से अस्त होने तक हरदम आहार लिया ही करे, २० अनेषणिक अप्रासुक ०१ लेवे।

एकवीसवें बोले—एकवीस प्रकार के सबल (भारी) —१ हस्तकर्म करे, २ मैथुन सेवे, ३ रात्रिभोजन करे, ४ आधाकर्मी भोगवे, ५ राजपिण्ड भोगवे, ६. पाच बोले सेवे—खरीद किया हुआ, उधार लिया हुआ, जबरन खोसा (लिया) हुआ, खास मालिक की रजा बिना लिया हुआ, स्थानपर सामा लाया हुआ आहार वगैरह देवे और

साधु उसे लेवे (साधु को देने वास्ते खरीदा होवे, स्वाभाविक तो सब खरीदा जाता है), ७ वारवार त्याग करे और भागे, ८ एक मास मे तीन वक्त कच्चा जल का स्पर्श करे—नदी उतरे, ६ छह-छह महीना मे गण-सप्रदाय पलटे, पलटना नही चाहिये, १० एक मास मे तीन वक्त माया-कपट करे, ११ जिसके मकान मे रहे हो उसी के यहा से आहार करे—शय्यातर पिण्ड भोगवे, १२ इरादा पूर्वक हिंसा करे, १३ इरादा पूर्वक झूठ बोले, १४ इरादा पूर्वक चोरी करे, १५ इरादा पूर्वक सचित्त पृथ्वी पर शयन आसन करे, १६ इरादा पूर्वक सचित्त मिश्र पृथ्वी शय्या वगैरह करे, १७ सचित्त शिला तथा जिसमे छोटे-छोटे जन्तु रहें, वैसे काष्ट प्रमुख वस्तु पर अपना शयन आसन लगावे, १८ इरादा पूर्वक दस जात की सचित्त वस्तु खावे—मूल, कद, स्कध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल, वीज, १९ एक साल मे दस वक्त सचित्त जल का स्पर्श करे—नदी उतरे, २० एक साल मे दस माया-कपट सेवे, २१ सचित्त जल से भीगे हुए हाथ से आहारादि गृहस्थ देवे, उसे इरादा पूर्वक लेकर भोगवे।

वावीसवें बोले—वावीस प्रकार के परीषह—१ क्षुधा, २ तृषा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ डास-मच्छर, ६ अचेल (वस्त्ररहित), ७ अरति, ८ स्त्री, ९ चलनेका, १० स्थिर आसन लगाकर एक जगह वैठे रहने का, ११ शय्या-उपाश्रय का १२ आक्रोश, १३ वध-प्राणनाश, १४ याचना १५ अलाभ—मागी हुई वस्तु का नही मिलना, १६ रोग, १७ तृणस्पर्श, १८ जलमैल-पसीना तथा मैल,

१९ सत्कार-पुरस्कार, २० प्रज्ञा २१ अज्ञान, २२. अदर्शन-श्रद्धा रहित बनने का।

तेवीसवे बोले—सूत्रकृताग के २३ अध्ययन-प्रथम श्रुत-स्कध के १६ अध्ययन सोलहवे बोलवत्, दूसरे श्रुत-स्कध के सात अध्ययन—१ पुण्डरीक कमल, २ क्रियास्थान, ३ आहारप्रतिज्ञा, ४ प्रत्याख्यानप्रज्ञा, ५ अनगारसुत, ६ आर्द्रकुमार, ७. उदक (पेढाल पुत्र)।

चौवीसवें बोले—चौवीस प्रकार के देवता—१० भवनपति, ८ व्यन्तर, ५ ज्योतिषी, १ वैमानिक, कुल २४ हुए।

पच्चीसवे बोले—पच महाव्रत की पच्चीस भावना। पहले महाव्रत की पाच—१ ईर्यासमितिभावना, २ मन. समितिभावना, ३ वचनसमितिभावना, ४ ऐषणासमिति-भावना, ५ आदानभण्डमात्रनिक्षेपनासमितिभावना। दूसरे महाव्रत की पाच भावना—१ बिना विचार किये बोलना नही, ३. लोभ से बोलना नही, ४ भय से बोलना नही, ५ हास्य से बोलना नही। तीसरे महाव्रत की पाच भावना। १. निर्दोष स्थानक माग के लेना, २. तृण वगैरह माग के लेना, ३ स्थानक वगैरह सुधारना नही, ४ स्वधर्मी का अदत्त लेना नही और आहार का सविभाग करना, ५ तपस्वी, ग्लान आदि की वैयावच्च करना। चौथे महाव्रत की पाच भावना—१ स्त्री, पशु, नपुंसक सहित स्थानक में ठहरना नही, २ स्त्री के हाव-भाव व स्त्री सम्बन्धी कथा वार्ता करना नही, ३ स्त्री के अग-उपाग रागदृष्टि से

देखना नही, ४ पहले के कामभोग याद करना नही, ५. सरस तथा बलवान आहार करना नहीं। पाचवें महाव्रत की पाच भावना—१ भले शब्द पर राग, भुडे शब्द पर द्वेष करना नही, तैसे ही २ रूप पर, ३ गन्ध पर, ४ रस पर और ५ स्पर्श पर रागद्वेष नही करना।

छब्बीसवें बोले—छब्बीस अध्ययन—दस दशाश्रुतस्कध के, छह बृहत्कल्प के और दश व्यवहारसूत्र के। (इनमे साधु का विधिवाद है)।

सत्तावीसवें बोले—सत्तावीस साधु के गुण—पाच महाव्रत, पाच इन्द्रिय का निग्रह करना, चार कषाय का विजय करना, (५, ५, ४=१४) १५ भावसत्य, १६ करणसत्य, १७ जोगसत्य, १८ क्षमा, १९ वैराग्य, २० मन समाधारणता, २१ वचनसमाधारणता, २२ कायसमाधारणता, २३ ज्ञान, २४ दर्शन, २५ चारित्र, २६ वेदनासहिष्णुता २७ मरणसहिष्णुता।

अट्ठावीसवें बोले—अट्ठावीस आचारकल्प—१ एक-मास का प्रायश्चित, २ दूसरा एक मास और पाच दिन का, ३ तीसरा एक मास और दस दिन का, इस तरह पाच पाच दिन बढाते हुए पाच महीने तक कहना। इस प्रकार पचीस उपघातिक हैं २६ अनुपघातिक आरोपण, २७ कृत्स्न—सपूर्ण, २८ अकृत्स्न—अपूर्ण।

गुनतीसवें बोले-२९ पापसूत्र—१ भूमिकम्पशास्त्र, २ उत्पातशास्त्र, ३ स्वप्नशास्त्र, ४ अतरीक्ष-आकाशशास्त्र, ५ अगस्फुरणशास्त्र, ६ स्वरशास्त्र, ७ व्यजन-

तल—मसादि चिह्नशास्त्र, ८ लक्षणशास्त्र। ये आठ सूत्र-रूप, आठ वृत्तिरूप, आठ वार्तिकरूप, कुल चौवीस हुए। २५ विकथा—अनुयोग २६ विद्या-अनुयोग, २७ मन्त्र-अनुयोग, २८ भोग-अनुयोग, २९ अन्यतीर्थिक प्रवृत्त-अनुयोग।

तीसवें बोले—महामोहनीयकर्म बन्धने के तीस स्थान का—१ त्रसजीव को जल मे डुबाकर मारे तो, २ त्रस-जीव को श्वास रूंध के मारे तो, ३ त्रसजीवो को बाडे मे बद करके मारे तो, ४ तलवारादि से (शस्त्र से) मस्तकादि अगोपाग काटे तो, ५ मस्तक पर गीला चमडा बाध कर मारे तो, ६ ठग होकर गले मे फासा डालकर मारे, विश्वासघात करे, ७ कपट कर के अपना अनाचार, दुष्ट-आचार छिपावे, सूत्रार्थ छिपावे तो, ८ आप कुकर्म करे और दूसरे निरपराधी मनुष्य पर आरोप लगावे तथा दूसरे की यशकीर्ति घटाने को झूठा कलक लगावे तो, ९ लोक मे अच्छा दिखने के वास्ते, क्लेश बढाने के वास्ते सभा के बीच मे मिथ्रभाषा बोले तो, १० राजा का भडारी, राजा की लक्ष्मी हरण करना चाहे, राजा राणी से कुशील सेवन करना चाहे, राजा के प्रेमीजनो के मन को पलटना चाहे तथा राजा को राज्याधिकार से बाहर करना चाहे तो, ११ विषयलम्पटी बनकर परणा हुवा होकर भी कुवारा होने का कहे तो, १२ ब्रह्मचारी नही होते हुए भी ब्रह्मचारी कहलावे तो, १३ नौकर मालिक की लक्ष्मी लूटे तथा लुटावे तो, १४ जिस पुरुष ने अपने को धनवान इज्जतवान अधिकारी बनाया, उस उपकारी की ईर्ष्या परि-णाम से बुराई करे, हलका बनाने की चेष्टा करे, उपकार

का बदला अपकार से देवे तो, १५ भरणपोषण करनेवाले राजादि को तथा ज्ञानदाता गुरु को हणे तो, १६ १ राजा, २. नगरसेठ तथा ३ मुखिया-बहुल यशवाले इन तीन जनो को हणे तो, १७ बहुत से मनुष्यो का आधारभूत जो मनुष्य है उसे हणे तो, १८ सयम लेने को तैयार हुआ है, उसका दिल हटावे तो तथा सयम लिए हुए को धर्म से भ्रष्ट करे तो, १९ तीर्थंकर के अवर्णवाद बोले तो, २० तीर्थङ्कर प्ररूपित न्यायमार्ग का द्वेषी बनकर (उस मार्ग की) निन्दा करे तथा उस मार्ग से लोगो का मन दूर हटावे तो, २१ आचार्य उपाध्याय—सूत्र, विनय के सिखाने वाले पुरुषो की निन्दा करे, उपहास करे तो, २२ आचार्य उपाध्याय के मन को आराधे नही तथा अहकारभाव से भक्ति नही करे तो, २३ अल्प शास्त्रज्ञान का जानकार होते हुए भी खुद की तारीफ करे तथा स्वाध्याय का वाद करे तो, २४ तपस्वी नही होते हुए भी तपस्वी कहलावे तो, २५ शक्ति होते हुए भी गुर्वादि तथा स्थविर, ग्लान मुनि का विनय, वैयावच्च करे नही और कहे कि इन्होंने मेरी वैयावच्च नही की थी, ऐसा अनुकम्पारहित होवे तो, २६ चार तीर्थ मे भेद पड़े ऐसी कथा—क्लेशकारी वार्ता करे तो, २७ अपनी तारीफ के वास्ते तथा दूसरे के साथ मित्रता करने का, अधर्मयोग—वशीकरणादि प्रयोग करे तो, २८ मनुष्य तथा देव सम्बन्धी भोग अतृप्तपने से—अत्यन्त आसक्त परि-णाम से सेवे तो, २९ महाऋद्धिवान-महायश के धणी देवता है, उनके बल वीर्य का अवगुण—अपवाद बोले तो, ३० अज्ञानी जीव लोगो से पूजा का गरजी चार जाति के देवता-ओ को नही देखता है तो भी कहे कि मैं उन्हे देखता हू ।

इकतीसवें बोले—इकतीस गुण सिद्ध महाराज के आठ कर्म की इकतीस प्रकृति नष्ट होने से ये गुण प्रगट होते हैं वास्ते उन इकतीस प्रकृति को बताते है। ज्ञानावरणीयकर्म की पांच-१ मतिज्ञानावरणीय, २ श्रुतज्ञानावरणीय, ३. अवधिज्ञानावरणीय, ४ मन पर्ययज्ञानावरणीय, ५. केवलज्ञानावरणीय । दर्शनावरणीयकर्म की नव—१. निद्रा, २ प्रचला, ३ निद्रा-निद्रा, ४ प्रचला-प्रचला, ५ थीणद्धि–स्त्यानगृद्धि, ६. चक्षुदर्शनावरणीय, ७ अचक्षुदर्शनावरणीय, ८. अवधिदर्शनावरणीय, ९. केवलदर्शनावरणीय। वेदनीयकर्म की दो प्रकृति—१ सातावेदनीय, २. असातावेदनीय । मोहनीयकर्म की दो प्रकृति—१. दर्शनमोहनीय, २ चारित्रमोहनीय । आयुकर्म की चार प्रकृति—१ नरकआयुष् २. तिर्यग्आयुष्, ३. मनुष्य-आयुष्, ४ देवआयुष्, नामकर्म की दो प्रकृति-१. शुभनाम, २ अशुभनाम। गोत्रकर्म की दो प्रकृति—१. उच्चगोत्र, २. नीचगोत्र। अन्तरायकर्म की पांच प्रकृति-१. दानान्तराय, २ लाभान्तराय, ३ भोगान्तराय, ४ उपभोगान्तराय, ५ वीर्यान्तराय ।

बत्तीसवें बोले—बत्तीस प्रकार का योग सग्रह—१. लगे हुए पापो का प्रायश्चित लेने का सग्रह करना, २ दूसरे के लिये हुए प्रायश्चित को और किसी को नही कहने का संग्रह करना, ३ विपत्ति आने पर भी धर्म मे दृढ रहने का सग्रह करना, ४ निरपेक्ष तप करने का सग्रह करना, ५ सूत्रार्थ ग्रहण करने का सग्रह करना, ६ शुश्रुषा टालने का सग्रह करना, ७ अज्ञात कुल की गोचरी करने का सग्रह करना, ८ निर्लोभी होने का

संग्रह करना, ९ बावीस परीषह सहने का संग्रह करना, १० साफ दिल—सरल रहने का संग्रह करना, ११ सत्य संयम रखने का संग्रह करना, १२ सम्यक्त्व निर्मल रखने का संग्रह करना, १३ समाधि सहित रहने का संग्रह करना, १४ पंच आचार पालने का संग्रह करना, १५ विनय करने का संग्रह करना, १६ धैर्य रखने का संग्रह करना, १७ वैराग्य रखने का संग्रह करना, १८ शरीर को स्थिर रखने का संग्रह करना, १९ विधिपूर्वक अच्छे अनुष्ठान का संग्रह करना, २० आस्रव रोकने का संग्रह करना, २१ आत्मा के दोष टालने का संग्रह करना, २२ सब विषयों से विमुख रहने का संग्रह करना २३ प्रत्याख्यान (पच्चक्खाण) करने का संग्रह करना, २४ द्रव्य से उपाधि, भाव से गर्वादि के त्याग का संग्रह करना, २५ अप्रमादी बनने का संग्रह करना, २६ काल-काले क्रिया करने का संग्रह करना, २७ धर्मध्यान का संग्रह करना, २८ संवर-योग का संग्रह करना, २९ मरण, आतंक, रोग उपजने पर मन को क्षुभित नहीं बनाने का संग्रह करना, ३० स्वजनादि को त्यागने का संग्रह करना, ३१ लिये हुए प्रायश्चित्त को संग्रह करना, ३२ आराधिक पण्डित मरण होवे वैसी आराधना करने का संग्रह करना, यानि अप्रशस्त योगों का निरोध करना।

तेतीसवें बोले—तेतीस प्रकार की आसातना—१ गुरु या बड़ों के सामने शिष्य अविनय से चाले तो, २ गुरु आदि के बराबर चाले तो, ३ गुर्वादि के पीछे भी अविनय से चाले तो ४ ५ ६ गुर्वादि के आगे, पीछे या बराबर अविनय से खड़ा रहे तो, ७ ८ ९ गुर्वादि के आगे, पीछे

या बराबर अनिनय से बैठे तो, १०. शिष्य बड़े लोगों के साथ बाहर-जगल फिरागत जावे और वहां से पहले शौच-कर्म से निवृत्त होकर आगे चला आवे तो, ११ शिष्य गुरु के साथ बाहर गया हो और पीछा लौटने पर ईर्यापथिक पहले प्रतिक्रमे तो, १२ कोई पुरुष उपाश्रय मे आवे तब पहले वडे गुरु आदि को बोलना उचित है, तथापि पहले शिष्य बोले और गुरु पीछे बोले तो, १३ रात्रि के समय जब गुरु कहे—अहो आर्य ! कौन नीद में है और कौन जागते हैं ? तब आप जागता होते हुए भी उत्तर देवे नही तो, १४ जो आहारादि लाया है, उस बाबत पहले अन्य मुनि से कहे और बाद मे गुरु से कहे तो, १५ आहारादि पहले अन्य मुनि को बतावे और बाद मे गुरु को बतावे तो, १६ आहारादि पहले अन्य मुनि को आमत्रे और पीछे गुरु को धामे तो, १७ आहारादि गुरुजनों को पूछे बिना ही अन्य मुनियो को जिन पर कि उसका प्रेम है थोडा-थोडा दे देवे तो, १८ वडो के साथ भोजन करते समय सरस-मनोज्ञ आहार झट-झट करे तो, १९ गुर्वादि के पुकारने पर मौन रहे तो, २० गुर्वादि के बुलाने पर अपने आसन पर वैठा-वैठा कहे मैं यहा हू, परन्तु आसन छोड उनके पास जावे नही इस डर से कि कही कुछ काम बता-वेंगे, २१ गुरु के बुलाने पर जोर से तथा अविनय से कहे कि क्या कहते हो ? २२ गुर्वादि कहे हे शिष्य ! यह काम (वैयावच्चादि) तेरे लाभकारी है, इसे कर, तब पीछा कहे अगर लाभकारी है तो आपही क्यो नही कर लेते हो, २३ शिष्य वडो के साथ कठोर कर्कश भाषा वापरे २४ शिष्य गुरुजन के साथ वैसे ही शब्द वापरे (काग मे

लावे), जैसे गुरुजन शिष्य के साथ काम मे लाते हैं, २५ गुरुजन व्याख्यान–धर्मोपदेश देते हो तव सभा के वीच मे कहे कि आप जो कहते हो वैसा व्याख्यान कहा है ? २६ गुरुजन के व्याख्यान मे कहे कि आप तो भूलते हो, यह कहना सत्य नही है। २७ गुरुजन के व्याख्यान से राजी न रहते नाराजी दिखावे (इस विचार से कि इससे ज्यादा अच्छा तो मैं जानता हू)। २७ गुरुजन व्याख्यान देते हो तव सभा मे भेद डालने को, विसर्जन करने जैसा शब्द वोले—महाराज गोचरी का या अमुक काम का समय हो गया है। २६ गुरुजन व्याख्यान देते हैं तव श्रोताजनो के मन को व्याख्यान से नाराज करने की चेष्टा करे। ३० गुरुजन का व्याख्यान पूरा वन्द नही हुवा हो, समास पूरा हुवा न हो, उससे पहले ही आप व्याख्यान शुरु कर देवे तो। ३१ गुर्वादि की शय्या-आसन वगैरह को पग से ठुकरावे तो। ३२ वड़ो की शय्या पर आप उभा रहे, वठे, सोवे तो। ३३ गुरु के शयन–आसन से अपना शयन ऊंचा करे वा वरावर भी करे और उस पर सोवे, वैठे तो आशातना लागे।

— ❀ —

या बराबर अनिनय से बैठे तो, १०. शिष्य बड़े लोगों के साथ बाहर-जगल फिरागत जावे और वहां से पहले शौच-कर्म से निवृत्त होकर आगे चला आवे तो, ११ शिष्य गुरु के साथ बाहर गया हो और पीछा लौटने पर ईर्यापथिक पहले प्रतिक्रमे तो, १२ कोई पुरुष उपाश्रय मे आवे तब पहले बड़े गुरु आदि को बोलना उचित है, तथापि पहले शिष्य बोले और गुरु पीछे बोले तो, १३. रात्रि के समय जब गुरु कहे—अहो आर्य ! कौन नीद मे है और कौन जागते हैं ? तब आप जागता होते हुए भी उत्तर देवे नही तो, १४ जो आहारादि लाया है, उस बाबत पहले अन्य मुनि से कहे और बाद मे गुरु से कहे तो, १५ आहारादि पहले अन्य मुनि को बतावे और बाद मे गुरु को बतावे तो, १६. आहारादि पहले अन्य मुनि को आमत्रे और पीछे गुरु को धामे तो, १७ आहारादि गुरुजनो को पूछे बिना ही अन्य मुनियो को जिन पर कि उसका प्रेम है थोडा-थोडा दे देवे तो, १८ बडो के साथ भोजन करते समय सरस-मनोज्ञ आहार झट-झट करे तो, १९ गुर्वादि के पुकारने पर मौन रहे तो, २० गुर्वादि के बुलाने पर अपने आसन पर बैठा-बैठा कहे मैं यहा हू, परन्तु आसन छोड उनके पास जावे नही इस डर से कि कही कुछ काम बता-वेंगे, २१ गुरु के बुलाने पर जोर से तथा अविनय से कहे कि क्या कहते हो ? २२ गुर्वादि कहे हे शिष्य ! यह काम (वैयावच्चादि) तेरे लाभकारी है, इसे कर, तब पीछा कहे अगर लाभकारी है तो आपही क्यो नही कर लेते हो, २३ शिष्य बडो के साथ कठोर कर्कश भाषा वापरे २४ शिष्य गुरुजन के साथ वैसे ही शब्द बाप रे (काम मे

लावे), जैसे गुरुजन शिष्य के साथ काम मे लाते हैं, २५ गुरुजन व्याख्यान–धर्मोपदेश देते हो तब सभा के बीच मे कहे कि आप जो कहते हो वैसा व्याख्यान कहा है ? २६ गुरुजन के व्याख्यान मे कहे कि आप तो भूलते हो, यह कहना सत्य नही है। २७ गुरुजन के व्याख्यान से राजी न रहते नाराजी दिखावे (इस विचार से कि इससे ज्यादा अच्छा तो मैं जानता हू)। २७ गुरुजन व्याख्यान देते हो तब सभा मे भेद डालने को, विसर्जन करने जैसा शब्द बोले—महाराज गोचरी का या अमुक काम का समय हो गया है। २९ गुरुजन व्याख्यान देते हैं तब श्रोताजनो के मन को व्याख्यान से नाराज करने की चेष्टा करे। ३० गुरुजन का व्याख्यान पूरा बन्द नही हुवा हो, समास पूरा हुवा न हो, उससे पहले ही आप व्याख्यान शुरु कर देवे तो। ३१ गुर्वादि की शय्या-आसन वगैरह को पग से ठुकरावे तो। ३२ बडो की शय्या पर आप उभा रहे, बैठे, सोवे तो। ३३ गुरु के शयन–आसन से अपना शयन ऊचा करे वा बराबर भी करे और उस पर सोवे, बैठे तो आसातना लागे।

—❀—

भाग ३

१. जीव के सुख-दुःखादि का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक छठा, उद्देशा दसवा)

जीवाण य सुह दुक्ख, जीवे जीवति तहेव भविया य।
एगतदुक्ख वेयण, अत्तमायाय केवली ॥

१—अहो भगवन्! अन्यतीर्थी इस प्रकार कहते है कि राजगृह नगर मे जितने जीव है, उन जीवो के सुख-दु ख बाहर निकाल कर हाथ मे लेकर बोर की गुठली प्रमाण यावत् जू लीख प्रमाण भी दिखाने मे कोई समर्थ नही है। अहो भगवन्! क्या यह ठीक है? हे गौतम! अन्यतीर्थियो का यह कहना मिथ्या है। मैं इस तरह से कहता हू कि सम्पूर्ण लोक के जीवो के सुख-दु ख को बाहर निकाल कर हाथ मे लेकर दिखाने मे कोई समर्थ नही है। अहो भगवन्! किस कारण से दिखाने मे समर्थ नही है? हे गौतम! जिस तरह तीन चुटकी बजावे उतने मे इस जम्बूद्वीप की २१ परिक्रमा करे ऐसी शीघ्रगति वाला कोई देव सम्पूर्ण जम्बूद्वीप मे व्याप्त होवे ऐसा गन्ध का डिब्बा खोल कर जम्बूद्वीप की २१ परिक्रमा करे, उतने मे गन्ध उड़ कर जीवो के नाक मे प्रवेश करे, उस गन्ध को अलग निकाल कर बताने मे कोई समर्थ नही है, इसी तरह जीवो के सुख-दु ख को बाहर निकाल कर बताने मे कोई समर्थ नही है।

२—अहो भगवन्! क्या जीव है सो चैतन्य है या

चैतन्य है सो जीव है ? हे गौतम ! जीव है सो चैतन्य है और चैतन्य है सो जीव है, जीव और चैतन्य एक ही है। नारकी का नैरयिक व नियमा जीव है, और जीव है सो नैरयिक अनैरयिक दोनो ही है। इसी तरह २४ ही दण्डक कह देना चाहिए।

३—अहो भगवन् ! जीव है सो प्राण धारण करता है या प्राण धारण करता है सो जीव है ? हे गौतम ! जो प्राण धारण करता है सो नियमा जीव है परन्तु जीव प्राण धारण करता भी है और नही भी करता है, जैसे सिद्ध भगवान्, द्रव्यप्राण धारण नही करते हैं। नारकी का नैरयिक नियमा प्राणधारी है और प्राणधारी है सो नैरयिक अनैरयिक दोनो ही है। इसी तरह २४ ही दण्डक कह देना चाहिए।

४ अहो भगवन् ! भवसिद्धिक (भवी) नैरयिक होता है या नैरयिक भवसिद्धिक होता है ? हे गौतम ! भवसिद्धिक नैरयिक अनैरयिक दोनो ही होता है। इसी तरह नैरयिक भी भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक दोनो होता है। इस तरह २४ ही दण्डक कह देना चाहिए।

५—अहो भगवन् ! अन्यतीर्थी कहते हैं कि सब प्राणी, भूत, जीव, सत्त्व एकान्त दु खरूप वेदना वेदते हैं। क्या यह ठीक है ? हे गौतम ! अन्यतीर्थियो का यह कहना मिथ्या है। मैं इस तरह से कहता हू—नारकी का नैरयिक एकान्त दु खरूप वेदना वेदता है, कदाचित् सुखरूप वेदना भी वेदता है। चारो ही जाति के देवता एकान्त सुखरूप

वेदना वेदते है, कदाचित् दु ख रूप वेदना भी वेदते हैं। औदारिक के १० दण्डक विविध प्रकार की (वेमाया) वेदना वेदते है अर्थात् कदाचित् सुख और कदाचित् दु ख वेदते हैं ।

६ – अहो भगवान् ! क्या नारकी का नैरयिक आत्म-शरीर क्षेत्रावगाढ़ (स्वशरीरक्षेत्र ओघाया) पुद्गलो को ग्रहण कर आहार करता है या अनन्तर क्षेत्रावगाढ (अपने शरीरक्षेत्र ओघाया की अपेक्षा दूसरा क्षेत्र) पुद्गलो को ग्रहण कर आहार करता है या परपरक्षेत्रावगाढ (आत्म-क्षेत्र से अनन्तर क्षेत्र उससे पर क्षेत्र वह परपरक्षेत्र) पुद्गलो को ग्रहण कर आहार करता है ? हे गौतम ! आत्मशरीर क्षेत्रावगाढ पुद्गलो को आत्मा द्वारा ग्रहण कर आहार करता है। अनन्तर क्षेत्रावगाढ और परपरक्षेत्रावगाढ पुद्गलो को आत्मा द्वारा ग्रहण कर आहार नही करता है। इसी तरह २४ ही दण्डक कह देना चाहिए ।

७—अहो भगवन् ! क्या केवली महाराज इन्द्रियो से जानते और देखते हैं ? हे गौतम ! केवली महाराज [illegible]य से नही जानते और नही देखते है । छहो दिशाओ द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव मित (मर्यादासहित) भी जानते-[illegible]ते हैं और अमित (मर्यादारहित) भी जानते-देखते है [illegible]त् केवली का दर्शन निरावरण (आवरणरहित) है ।

२. आहार का थोकड़ा

(भगवतसूत्री, शतक आठवा, उद्देशा पहला)

१—अहो भगवन् ! जीव मर कर परभव मे जाता हुआ कितने समय तक अनाहारक रहता है ? हे गौतम ! परभव मे जाता हुआ जीव पहले, दूसरे, तीसरे समय मे सिय (कदाचित्) आहारक, सिय अनाहारक होता है। चौथे समय मे नियमा (अवश्य) आहारक होता है। समुच्चय जीव और एकेन्द्रिय मे पहले, दूसरे तीसरे समय तक आहार की भजना है, चौथे समय मे आहार की नियमा हैं। त्रस के १९ दण्डक के जीवो मे पहले दूसरे समय आहार की भजना है तीसरे समय आहार की नियमा है।

२ - अहो भगवन् ! जीव किस समय अल्प आहारी होता है ? हे गौतम ! उत्पन्न होते वक्त प्रथम समय मे और मरते वक्त चरम (अन्तिम) समय मे जीव अल्प-आहारी होता है।

३—अहो भगवन् ! लोक का कैसा सठाण (सस्थान) है ? हे गौतम ! लोक का सठाण सुप्रतिष्ठ (सरावला) के आकार है। नीचे चौडा, बीच मे सकडा और ऊपर पतला है। ऐसे शाश्वत लोक मे केवलज्ञान केवल दर्शन के धारक अरिहन्त जिन केवली जीवो को अजीवो को सब को जानते देखते है। फिर वे सिद्ध होते हैं यावत् का अन्त करते हैं।

४—अहो भगवन् ! उपाश्रय में रहकर सामायिक करने वाले श्रावक को ईर्यापथिकी क्रिया लगती है या सापरायिकी ? हे गौतम ! सकषायी होने से उसको साप-रायिकी क्रिया लगती है।

५—अहो भगवन् ! किसी श्रावक के त्रसजीवों को मारने का त्याग किया हुआ है लेकिन पृथ्वीकाय वध का त्याग नही है, वह पृथ्वी खोदे उस वक्त कोई त्रस जीव मर जाये तो क्या उसके व्रत मे अतिचार लगता है ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे। वह श्रावक त्रस जीवो*मारने की प्रवृत्ति नही करता है। इसलिए ग्रहण किये हुए उसके व्रत मे अतिचार नही लगता है, व्रत भंग नही होता है। इसी तरह जिस श्रावक ने वनस्पति छेदने का त्याग किया है, पीछे पृथ्वी खोदते हुए जड़ मूलादि छेदन हो जाये तो उसके गहण किये हुए व्रत मे अतिचार (दोप) नही लगता है, व्रत भग नही होता है ?

६—अहो भगवन् ! तथारूप के (उत्तम) श्रमण माहण को प्रासुक एषणीय आहार पानी बहरावे (देवे) तो क्या लाभ होता है ? हे गौतम ! वह जीव समाधि

---

* सामान्य रीति से देश विरति श्रावक को सकल्प पूर्वक त्रस जीव की हिंसा का त्याग होता है, इसलिए जव तक जिसकी हिंसा का त्याग किया हो उसकी सकल्प पूर्वक हिंसा करने की प्रवृत्ति न करे तब तक उसके ग्रहण किये हुए व्रत मे दोप नही लगता।

प्राप्त करता है, बोध बीज समकित को प्राप्त करता है और अनुक्रम से मोक्ष मे जाता है।

७ अहो भगवन्! क्या कर्म रहित जीव की गति (गमन) होती है? हा गौतम होती है। अहो भगवन्! कर्म रहित जीव की कैसी गति होती है? हे गौतम! ※ तुम्बी, कली धूम (धूआ) बाण के दृष्टान्त से कर्म रहित जीव की गति ऊर्ध्व (ऊची) होती है।

८ अहो भगवन् जीव दुख से व्याप्त होता है? अथवा अदुखी (दुख रहित) जीव दुख से व्याप्त होता है? हे गौतम! दुखी जीव दुख से व्याप्त होता है परन्तु अदुखी जीव दुख से व्याप्त नही होता है। दुखी

※ जैसे कोई पुरुप तुम्बी पर मिट्टी के आठ लेप करके पानी मे डाले तो भारी होने से वह तुम्बी नीचे चली जाये परन्तु वे मिट्टी के सब लेप गलकर उतर जाने से तुम्बी पानी के ऊपर आ जाती है। इसी प्रकार आठ कर्म रहित जीव की भी ऊर्ध्वगति (ऊची गति) होती है।

जैसे एरण्ड का फल सूखने पर उसका वीज उछल कर बाहर पडता है। धूम (धूआ) स्वाभाविक ही ऊपर जाता है। धनुष से छूटा हुआ बाण एकदम सीधा जाता है। इसी तरह आठ कर्मों से छूटे हुए (रहित) जीव की गति ऊर्ध्व (ऊची) होती है, इसलिए वह मोक्ष मे जाता है।

जीव दुःख से व्याप्त होता है, २. दु ख को ग्रहण करता है, ३ दु ख की उदीरणा करता है, ४ दु ख को वेदता है, ५. दु ख की निर्जरा करता है, ये पाच बोल समुच्चय जीव और २४ दण्डक के साथ कहने से १२५ आलापक हुए ।

९. अहो भगवन् ! बिना उपयोग गमन करते, खडे रहते, बैठते, सोते, वस्त्र पात्रादि लेते रखते हुए साधु को ईर्यापथिकी है क्रिया लगती है या सापरायिकी क्रिया लगती है ? हे गौतम ! उसे ईर्यापथिकी क्रिया नही लगती है किन्तु सकषायी होने से उसको सापरायिकी क्रिया लगती है ।

१०—अहो भगवन् ! इ गाल दोष, धूम दोष और सयोजना दोष किसको कहते है ! हे गौतम ! प्रासुक एषणीय आहार पानी लाकर मूच्छित, गृद्ध, आसक्त होकर आहार करे तो इ गाल-(अ गार) दोष लगता है। उसी आहार को क्रोध से खिन्न होकर माथा धुनता धुनता आहार करता है, (खाता है) तो धूमदोष लगता है । प्रासुक एषणीय निर्दोष आहार पानी लाकर उसमे स्वाद उत्पन्न करने के लिये एक दूसरे के साथ सयोग मिला कर आहार करे तो सयोजनादोष लगता है ।

११—अहो भगवन् ! खेत्ताइक्कते (क्षेत्रातिक्रान्त), कालाइक्कते, (कालातिक्रान्त), मग्गाइक्कते (मार्गातिक्रान्त), पमाणाइक्कते (प्रमाणातिक्रान्त) दोष किसे कहते है ? हे गौतम ! कोई साधु साध्वी सूर्य उदय से पहले आहार

पानी लाकर सूर्य उदय से पीछे भोगता है तो उसे खेत्ता-इक्कते दोष लगता है । प्रथम पहर मे लाये हुए आहार पानी को अन्तिम पहर मे भोगता है तो कालाइक्कते दोष लगता है । दो कोस (गाऊ) उपरान्त ले जाकर आहार पानी भोगता है तो मग्गाइक्कते दोष लगता है । प्रमाण से अधिक आहार करता है तो पमाणाइक्कते दोष लगता है ।

१२ – अहो भगवन् ! शस्त्रातीत शस्त्रपरिणत आहार पानी किसे कहते हैं ? हे गौतम ! जो अग्नि वगैरह शस्त्र से अच्छी तरह परिणत होकर अचित्त (जीव रहित) हो गया हो उस आहार पानी को शस्त्रातीत शस्त्रपरिणत कहते हैं ।

साधु को चाहिए कि आहार पानी के सब दोष टाल कर सयम निर्वाह के लिए शुद्ध आहार पानी भोगवे ।

---

३. सुपच्चक्खाण दुप्पच्चक्खाण का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक सातवा, उद्देशा दूसरा)

१—अहो भगवन् ! कोई कहता है कि मुझे सर्व प्राण सर्व भूत सर्व जीव सर्व सत्त्व को हनने का (मारने का) पच्चक्खाण है तो उसके पच्चक्खाण को सुपच्चक्खाण कहना चाहिए या दुपच्चक्खाण कहना चाहिए ! हे

गौतम ! ❀ उसके पच्चक्खाण को सिय (कदाचित्) सुपच्चक्खात कहना चाहिए और सिय दुपच्चक्खाण कहना चाहिए । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! जिसको ऐसा जाणपणा नही है कि ये जीव हैं, ये अजीव है, ये त्रस हैं, ये स्थावर हैं, यदि वह कहता है कि मुझे सर्व प्राण सर्व भूत सर्व जीव सर्व तत्त्व को हनने का त्याग है तो (१) वह मृषावादी है, सत्यवादी नही, २ तीन करण तीन जोग से असयति है, ३ अविरति है, ४ पापकर्म नही पच्चक्खे हैं, ५ वह सक्रिय (आश्रवसहित) है, ६ असवुडा (सवररहित) है, ७ छह काया का दण्डी (दण्ड देने वाला–हिसा-करने वाला) है, ८ एकान्त बाल-अज्ञानी है, उसके पच्चक्खाण दुपच्चक्खाण है, सुपच्चक्खाण नही❀।

जिसको ऐसा जाणपणा (ज्ञान) है कि 'ये जीव हैं, ये अजीव है, ये त्रस हैं, ये स्थावर हैं, यदि वह कहता है कि मुझे सर्व प्राण सर्व भूत सर्व जीव सर्व सत्त्व को हनने (मारने) का त्याग है तो १ वह सत्यवादी है, मृषावादी नही, २ तीन करण तीन जोग से सयति है, ३ विरति है, ४ पापकर्म का पच्चक्खाण किया है, ५ अक्रिय (आश्रवरहित) है, ६ सवुडा (सवर सहित) है, ७ छह काया का रक्षक है, ८ एकान्त पण्डित ज्ञानी है । उसके पच्चक्खाण सुपच्चक्खाण है, दुपच्चक्खाण नही❀ ।

❀ ये दोनो तरह के पच्चक्खाण साधु की अपेक्षा से (साधु के लिए) कहे हैं ।

❀ ये पच्चक्खाण साधु के लिए हैं ।

२—अहो भगवन् ! पच्चक्खाण कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! पच्चक्खाण दो प्रकार के हैं—मूलगुण-पच्चक्खाण और उत्तरगुणपच्चक्खाण । मूलगुणपच्चक्खाण के दो भेद–सर्वमूल गुणपच्चक्खाण और देशमूलगुणपच्च-क्खाण । सर्वमूलगुणपच्चक्खाण के ५ भेद–सर्वथा प्रकार से हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह का त्याग करना अर्थात् पाच महाव्रतो का पालन करना । देशमूलगुणपच्च-क्खाण के ५ भेद—स्थूलप्राणातिपात यावत् स्थूल परिग्रह का त्याग करना अर्थात् पाच अणुव्रतो का पालन करना । उत्तरगुणपच्चक्खाण के दो भेद—सर्वउत्तरगुणपच्चक्खाण, देशउत्तरगुणपच्चक्खाण । सर्वउत्तरगुण पच्चक्खाण के ✻ १० भेद-१ अणागय–(जो तप आगामी काल मे करना है वह पहले कर लेवे), २ अइक्कत–(जो तप पहले करना था वह किसी कारण से नही हो सका तो पीछे करे) ३ कोडी-सहिय–(जैसा तप पहले दिन–आदि मे करे वैसा पिछले दिन (अ त मे) भी करे, बीच मे नाना प्रकार का तप करे) ४ नियटिय (नियमित दिन मे विघ्न आने पर भी धारा हुआ—विचारा हुआ तप अवश्य करे), ५ सागार (आगारसहित तप करे), ६ अणगार (आगाररहित तप करे), ७ परिमाणकड (×दत्तिदात ,कवल–(ग्रास), घर, चीज आदि का परिमाण करे), ८ निरवसेस (चारो प्रकार के आहार का त्याग करे, सथारा करे), ९ सकेय—(मुष्टि आदि सकेत पूर्वक तप करे), १० अद्धा—(काल का परि-

---

+गाथा—अणागय मइक्कत कोडीसहिय नियटिय चेव ।
सागारमणागार परिमाण कड निरवसेस ॥
सकेय चेव अद्धाए, पच्चखाण भवे दसहा ॥

माण कर तप करे) । देशउत्तरगुणपच्चक्खाण के ७ भेद—तीन गुणव्रत (दिशाव्रत, उपभोगपरिभोग परिमाणव्रत, अनर्थदण्डविरमणव्रत) । चार शिक्षाव्रत (सामायिक, देशावकाशिक, पौषधोपवास, अतिथिसविभागव्रत और ❀ सलेखना) ।

३—अहो भगवन् ! क्या जीव मूलगुणपच्चक्खाणी है या उत्तरगुणपच्चक्खाणी है या अपच्चक्खाणी है ? हे हे गौतम! समुच्चय जीव मे भागा तीन होते है । मनुष्य और तिर्यञ्चपञ्चेन्द्रिय मे भागा होते हैं ३-३, बाकी २२ दण्डक अपच्चक्खाणी हैं ।

अल्पवहुत्व—समुच्चय जीव मे सब से थोडे मूलगुणपच्चक्खाणी, उससे उत्तरगुणपच्चक्खाणी असख्यातगुणा, उससे अपच्चक्खाणी अनन्तगुणा । तिर्यञ्चपचेन्द्रिय मे सबसे

×एक साथ एक वार पात्र मे पडा हुवा अन्नादि को १ दात कहते हैं ।

—अद्धा तप के १० भेद है—१ नवकारसी, २ पोरिसी, ३ दो पोरिसी, ४ एकासन, ५ एकलठाण, ६ आयम्वल, ७ नीवि, ८ उपवास, ९ अभिग्रह १० दिवस-चरिम ।

❀ सलेखना का पूरा नाम है—अपश्चिममारणान्तिकसलेखना जोपणाआराधना—सवसे पीछे मरण के समय मे शरीर और कषायो को कृश करने के लिये जो तपविशेष स्वीकार कर आराधन किया जाय, उसे अपश्चिममारणान्तिकसलेखनाजोपणाआराधना कहते हैं ।

थोड़े मूलगुणपच्चक्खाणी, उससे उत्तरगुणपच्चक्खाणी असख्यात गुणा, उससे अपच्चक्खाणी असख्यातगुणा । मनुष्य मे सबसे थोडे मूलगुणपच्चखाणी, उससे उत्तरगुण-पच्चक्खाणी सख्यातगुणा, उससे अपच्चक्खाणी असख्यात-गुणा ।

४—अहो भगवन् ! क्या जीव सर्वमूलगुणपच्चक्खाणी है या देशमूलगुणपच्चक्खाणी है या अपच्चक्खाणी है ? हे गौतम ! समुच्चय जीव मे भागा होते हैं ३ । नारकी से वैमानिक तक मनुष्य और तिर्यंच पचेन्द्रिय वर्ज कर २२ दण्डक मे भागा होता है एक—अपच्चक्खाणी । तिर्यञ्चपचेन्द्रिय मे भागा होते हैं २ (देशमूलगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी) । मनुष्य मे भागा होते हैं ३ ।

अल्पबहुत्व—समुच्चय जीव मे सबसे थोडे सर्वमूल-गुण पच्चक्खाणी, उससे देशमूलगुणपच्चक्खाणी असख्यात-

---

देशउत्तरगुणपच्चक्खाण मे दिशाव्रत आदि ३ गुणव्रत, ४ शिक्षाव्रत ये सात गुणो की गिनती की गई है किन्तु संलेखना की गिनती नही की गई । इसका कारण यह है कि दिशाव्रत आदि सात गुण अवश्य देशोत्तरगुण रूप हैं परन्तु इस सलेखना का नियम नही है क्योकि देशोत्तर गुण वाले को यह देशोत्तरगुण रूप है और सर्वोत्तरगुण वाले के लिए यह सर्वोत्तरगुणरूप है । देशोत्तरगुण वाले को भी अन्त मे यह सलेखना करने योग्य है । यह बात बतलाने के लिए यहा पर आठवी सलेखना कही गई है ।

गुणा, उससे अपच्चक्खाणी अनन्तगुणा । तिर्यंचपंचेन्द्रिय में सबसे थोड़े देशमूलगुणपच्चक्खाणी, उससे अपच्चक्खाणी असख्यातगुणा । मनुष्य मे सबसे थोड़े सर्वमूलगुणपच्चक्खाणी, उससे देशमूलगुणपच्चक्खाणी सख्यातगुणा, उससे अपच्चक्खाणी असख्यातगुणा ।

५—अहो भगवन् ! क्या जीव सर्वउत्तरगुणपच्चक्खाणी है या देशउत्तरगुणपच्चक्खाणी है या अपच्चक्खाणी है ? हे गौतम ! समुच्चय जीव मे भागा होते हैं ३ । मनुष्य और तिर्यंच पचेन्द्रिय मे भागा होते हैं ३-३ । बाकी २२ दण्डक मे भागा होता है एक (अपच्चक्खाणी)।

अल्पबहुत्व—समुच्चय जीव मे सबसे थोड़े सर्वउत्तरगुणपच्चक्खाणी, उससे देशउत्तरगुणपच्चक्खाणी असख्यातगुणा, उससे अपच्चक्खाणी अनन्तगुणा । तिर्यंचपचेन्द्रिय मे सब से थोड़े सर्वउत्तरगुणपच्चक्खाणी, उससे देशउत्तरगुणपच्चक्खाणी असख्यातगुणा, उससे अपच्चक्खाणी असख्यातगुणा । मनुष्य मे सबसे थोड़े सर्वउत्तरगुणपच्चक्खाणी, उससे देशउत्तरगुणपच्चक्खाणी सख्यातगुणा, उससे अपच्चक्खाणी असख्यातगुणा ।

४—अहो भगवन् ! क्या जीव सयति है या असयति है या सयतासंयति है ? हे गौतम ! समुच्च जीव मे भांगा होते है ३ । मनुष्य मे भांगा होते हैं ३ । तिर्यंचपचेन्द्रिय मे भागा होते हैं २ (असयति और सयतासयति) । बाकी २२ दडक मे भांगा होते हैं एक-असंयति ।

अल्पबहुत्व—समुच्चय जीव मे सब से थोडे सयति, उससे सयतासयति असख्यातगुणा, उससे असयति अनन्त-गुणा। तिर्यंचपचेन्द्रिय मे सबसे थोडे सयतासयति, उससे असयति असख्यातगुणा। मनुष्य मे सबसे सयति, उससे सयतासयति सख्यातगुणा, उससे असयति असख्यातगुणा।

७—अहो भगवन्! क्या जीव पच्चक्खाणी है या पच्चक्खाणापच्चक्खाणी है या अपच्चक्खाणी है? हे गौतम! समुच्चय जीव मे भागा होते हैं ३। मनुष्य मे भागा होते हैं ३। तिर्यंचपचेन्द्रिय मे भागा होते हैं २। बाकी २२ दण्डक मे भागा होता है एक—अपच्चक्खाणी।

अल्पबहुत्व—समुच्चय जीव मे सबसे थोडे पच्चक्-खाणी, उससे पच्चक्खाणापच्चक्खाणी असख्यातगुणा, उससे अपच्चक्खाणी अनन्तगुणा। तिर्यंचपचेन्द्रिय मे सबसे थोडे पच्चक्खाणापच्चक्खाणी, उससे अपच्चक्खाणी असख्यात-गुणा। मनुष्य मे सबसे थोडे पच्चक्खाणी, उससे पच्चक्खा-णापच्चक्खाणी सख्यातगुणा, उससे अपच्चक्खाणी असख्यात-गुणा।

८—अहो भगवन्! क्या जीव शाश्वत है या अशा-श्वत है? हे गौतम! जीव द्रव्य की अपेक्षा शाश्वत है और पर्याय की अपेक्षा अशाश्वत है। इसी तरह २४ ही दण्डक कह देना चाहिये।

□

४. छद्मस्थ अवधिज्ञानी का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक सातवां उद्देशा आठवां)

१—अहो भगवन् ! गत अनन्त काल में क्या छद्मस्थ मनुष्य सिर्फ तप, संयम, संवर, ब्रह्मचर्य और आठ प्रवचन माता के पालने से सिद्ध बुद्ध मुक्त हुआ है ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे (ऐसा नही हुआ) । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! गत अनन्त काल मे जो सिद्ध वुद्ध मुक्त हुए है वे सब उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक, अरिहत जिन केवली होकर सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए हैं, होते है और होवेगे । जिस तरह छद्मस्थ का कहा उसी तरह अधोअवधिक और परम अधोअवधिक का भी कह देना चाहिए ।

२—अहो भगवन् ! गत अनन्तकाल मे क्या केवली मनुष्य सिद्ध वुद्ध मुक्त हुए है ? हा, गौतम ! हुए हैं, वर्तमान काल मे होते है और भविष्य काल मे होवेगे ।

३ –अहो भगवन् ! गत अनन्त काल में, वर्तमान काल मे और भविष्यत काल मे जितने सिद्ध वुद्ध मुक्त हुए है, होते हैं, होवेगे क्या वे सभी उत्पन्न ज्ञान-दर्शन केधारक रिहत जिन केवली होकर सिद्ध वुद्ध मुक्त हुए हैं होते हैं और होवेंगे ? हा, गौतम ! वे सव उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक अरिहत जिन केवली होकर सिद्ध वुद्ध मुक्त हुए हैं, होवेंगे ।

४—अहो भगवन् ! क्या उन उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक अरिहत जिन केवली को 'अलमत्थु' (अलमस्तु-पूर्ण) कहना चाहिए ? हा, गौतम ! उन्हे अलमत्थु (अलमस्तु) पूर्ण कहना चाहिए ।

५—अहो भगवन् ! क्या हाथी और कुथुआ का जीव समान है ? हा, गौतम ! ❀दीपक के दृष्टान्त अनुसार समान है, सिर्फ शरीर का फर्क है ।

नारकी के नैरयिक यावत् वैमानिक तक २४ ही दण्डक के जीव जो पापकर्म करते हैं, किये हैं और करेंगे, वे सब दुःख रूप हैं और जो निर्जरा करते हैं, की है और करेंगे वह सब सुख रूप है ।

४—अहो भगवन् ! सज्ञा कितने प्रकार की है ? हे गौतम ! सज्ञा १० प्रकार की है—१ आहार सज्ञा, २

❀ जैसे एक दीपक का प्रकाश किसी एक कमरे मे फैला हुआ है । यदि उसको किसी बर्तन द्वारा ढक दिया जाय तो उसका प्रकाश बर्तन परिमाण हो जाता है ! इसी तरह जब जीव हाथी का शरीर धारण करता है तो उतने बडे शरीर मे व्याप्त रहता है और जब कुथुआ का शरीर धारण करता है तो उस छोटे शरीर मे व्याप्त रहता है । इस प्रकार सिर्फ शरीर मे फर्क रहता है । जीव मे कुछ भी फर्क नही है । सब जीव समान हैं ।

भय संज्ञा, ३ मैथुनसंज्ञा, ४ परिग्रहसज्ञा, ५ क्रोधसज्ञा, ६ मानसज्ञा, ७ मायासज्ञा, ८ लोभसज्ञा, ९ * ओघसज्ञा, — १० लोकसज्ञा । २४ ही दण्डक मे १० सज्ञा पायी जाती है ।

५—अहो भगवन् ! नारकी के नैरयिक कितने प्रकार की वेदना वेदते है ? हे गौतम ! १० प्रकार की क्षेत्र-वेदना वेदते है—१ शीत, २ उष्ण, ३ भूख, ४ प्यास, ५ खाज-खुजली, ६ परतन्त्रता, ७ ज्वर, ८ दाह, ९ भय, १० शोक ।

६—अहो भगवन् ! क्या हाथी और कुथुआ के अपच्चक्खाणियाक्रिया समान (सरीखी) होती है ? हा, गौतम ! अविरति के कारण से (पच्चक्खाण नही होने के कारण से) दोनो के अपच्चक्खाणियाक्रिया समान होती है ।

---

* मतिज्ञानावरणीयादि के क्षयोपशम से शब्द और अर्थ के सामान्य ज्ञान को ओघसज्ञा कहते है ।

— सामान्य रूप से जानी हुई बात को विशेष रूप से जानने को लोकसज्ञा कहते है ।

अर्थात् दर्शनोपयोग को ओघसज्ञा तथा ज्ञानोपयोग को लोकसज्ञा कहते हैं । किसी के मत से ज्ञानोपयोग ओघसज्ञा है और दर्शनोपयोग लोकसज्ञा । सामान्य प्रवृत्ति को ओघसज्ञा कहते है तथा लोकदृष्टि को लोकसज्ञा कहते है, यह भी एक मत है ।

७—अहो भगवन् ! आधाकर्मी आहारादि (आहार, वस्त्र, पात्र, मकान) को सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ क्या बाधता है ? क्या करता है ? क्या चय करता है ? क्या उपचय करता है ? हे गौतम ! आधाकर्मी आहारादि का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ आयुष्यकर्म को छोड कर शिथिल बन्धन मे बधी हुई सात कर्म प्रकृतियो को मजबूत बन्धन मे बाधता है यावत् बारम्बार ससार परिभ्रमण करता है । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! आधाकर्मी आहारादि का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ अपने धर्म का उल्लघन कर जाता है, वह पृथ्वीकाय के जीवो से लेकर त्रसकाय तक के जीवो की घात की परवाह नही करता और जिन जीवो के शरीर का वह भक्षण करता है, उन जीवो पर वह अनुकम्पा नही करता ।

८—अहो भगवन् ! प्रासुक एषणीय आहारादि का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ क्या बाधता है ? यावत् क्या उपचय करता है ? हे गौतम ! आयुष्यकर्म को छोड कर मजबूत बन्धन मे बधी हुई सात कर्मप्रकृतियो को शिथिल बन्धन वाली करता है, आदि सारा वर्णन*सवुडा (सवृत) अनगार की तरह कह देना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि कदाचित् आयुष्यकर्म बाधता है और कदाचित् नही बाधता । इस प्रकार अन्त मे ससार-

---

* भगवतीसूत्र के थोकडो का पहिला भाग पृष्ठ २५ मे विस्तृत वर्णन है ।

सागर को उल्लघन कर जाता है । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! प्रासुक एपणीय आहारादि का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ अपने धर्म का उल्लघन नही करता, वह पृथ्वीकाय से लेकर त्रसकाय तक के जीवो की रक्षा करता है, उन जीवो की अनुकम्पा करता है, इस कारण वह ससारसागर को तिर जाता है ।

९—अहो भगवन् ! क्या अस्थिर पदार्थ बदलता है ? टूटता है और स्थिर पदार्थ नही बदलता, नही टूटता ? हा, गौतम ! अस्थिर पदार्थ बदलता है, टूटता है और स्थिर पदार्थ नही बदलता, नही टूटता है ।

१०—अहो भगवन् ! क्या बालक शाश्वत है और बालकपना अशाश्वत है ? क्या पडित शाश्वत है, पडित-पना अशाश्वत है ? हा, गौतम ! बालक शाश्वत है, बालकपना अशाश्वत है । पण्डित शाश्वत है, पडितपना अशाश्वत है ।

---

५. आयुष्यबंध आदि का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक सातवा, उद्देशा छठा)

अहो भगवन् ! नारकी मे उत्पन्न होने वाला जीव नारकी का आयुष्य क्या इस भव मे बाधता है, या नरक मे उत्पन्न होती वक्त बाधता है या उत्पन्न होने के बाद बाधता है ? हे गौतम ! इस भव मे बाधता है, नरक मे

वेदते है। उत्पन्न होने के बाद वेमाया (विविध प्रकार से) वेदना वेदते है।

३—अहो भगवन् ! क्या जीव आभोग (जाणपणा) से आयुष्य बाधता है या अनाभोग (अजाणपणा) से आयुष्य बाधता है ? हे गौतम ! जीव अनाभोग से आयुष्य बाधता है। इसी तरह २४ ही दण्डक मे कह देना चाहिए।

४—अहो भगवन् ! क्या जीव कर्कशवेदनीय (दुःख से वेदने योग्य) कर्म बाधता है ? हा, गौतम ! बाधता है। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ! हे गौतम ! १८ पाप करने से जीव कर्कश वेदनीयकर्म वाधता है। इसी तरह २४ ही दण्डक मे कह देना चाहिए।

५—अहो भगवन् ! क्या जीव अकर्कशवेदनीय (सुखपूर्वक वेदने योग्य) कर्म बाधता है ? हा, गौतम ! बाधता है। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! १८ पाप का त्याग करने से जीव अकर्कशवेदनीय कर्म वाधता है। इसी तरह मनुष्य मे कह देना। शेष २३ दण्डक के जीव अकर्कश वेदनीयकर्म नही बाधते है ?

६—अहो भगवन् ! क्या जीव सातावेदनीय कर्म बाधता है ? हा, गौतम ! अहो भगवन् ! जीव सातावेदनीय कर्म किस तरह से बाधता है ? हे गौतम ! जीव

सातावेदनीय कर्म* १० प्रकार से बाधता है। इसी तरह २४ ही दण्डक मे कह देना चाहिए।

७—अहो भगवन्! क्या जीव असातावेदनीयकर्म बाधता है? हा, गौतम! बाधता है। अहो भगवन्! जीव असातावेदनीयकर्म किस तरह से बाधता है? हे गौतम! जीव × १२ प्रकार से असातावेदनीयकर्म बाधता है। इसी तरह २४ ही दण्डक मे कह देना चाहिए।

८—अहो भगवन्! इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे इस अवसर्पिणीकाल का दु षमा-दु षम नाम का छठा आरा कैसा होगा? हे गौतम! यह छठा आरा मनुष्य पशु

---

*सातावेदनीयकर्म बन्ध के दस कारण—

१-४ प्राण, भूत, जीव, सत्त्वो पर अनुकम्पा करने से, ५-बहुत प्राण भूत जीव सत्त्वो को दु ख नही देने से, ६-उन्हे शोक नही उपजाने से, ७-खेद नही उपजाने से, ८-वेदना नही उपजाने से, ९-नही मारने से, १०-परिताप नही उपजाने से जीव सातावेदनीयकर्म बाधता है।

× असातावेदनीय कर्म बाधने के १२ कारण—

१-दूसरे जीवो को दु ख देने से, २-शोक उपजाने से, ३-खेद उपजाने से, ४-पीडा पहुचाने मे, ५-मारने से, ६-परिताप उपजाने से, ७-१२-बहुत प्राण, भूत, जीव, सत्त्वो को दु ख देने से, शोक उपजाने से, खेद उपजाने से, पीडा पहुचाने से, मारने से, परिताप उपजाने से, जीव आसातावेदनीयकर्म बाधता है।

पक्षियो के दु ख जनित हाहाकार शब्द मे व्याप्त होगा। इस आरे के प्रारभ मे धूलियुक्त भयकर आधी चलेगी, फिर सवर्तकहवा चलेगी, दिशाए धूल से भर जाए गी, प्रकाश रहित होगी, अरस विरस क्षार खात अग्नि बिजली विप मिश्रित बरसात होगी। वनस्पतिया, × त्रसप्राणी, पर्वत नगर सब नष्ट हो जाए गे। पर्वतो मे एक वैताढ्यपर्वत और नदियो मे गगा, सिन्धु नदी रहेगी। सूर्य खूब तपेगा, चन्द्रमा अत्यन्त शीतल होवेगा। भूमि अगार, भोमर, राख तथा तपे हुए तवे के समान होगी। गगा सिन्धु नदियो का पाट रथ के चीले जितना चौडा रहेगा। उसमे रथ की धुरी प्रमाण पानी रहेगा। उसमे मच्छ कच्छ आदि जलचर जीव वहुत होगे। गगा, सिधु महानदियो के पूर्व पश्चिम तट पर ❀ ७२ विल है। उनमे मनुष्य रहेगे।

× विलो और गगा सिन्धु नदी के सिवा गाव और जगल मे चलने वाले त्रस प्राणी।

❀ वैताढ्यपर्वत के इस तरफ दक्षिण भारत मे ९ बिल पूर्व के तट पर है और ९ विल पश्चिम के तट पर है। इसी तरह १८ विल वैताढ्यपर्वत के उत्तर की तरफ उत्तर भारत मे है। ये ३६ विल गगा नदी के तट पर वैताढ्यपर्वत के पास है। ऐसे ही ३६ विल सिंधु नदी के तट पर वैताढ्यपर्वत के पास है। इन ७२ विलो मे से ३ विलो मे मनुष्य मनुष्यणी रहेगे। ६ विलो मे चौपद पशु रहेगे और वाकी ३ विलो मे पक्षी रहेगे। मनुष्य मच्छ कच्छप का आहार करेगे। पशु पक्षी उन मच्छ

वे मनुष्य खराब रूप वाले, दीन हीन अनिष्ट अमनोज्ञ स्वर वाले काले, कुरूप होगे। उनकी उत्कृष्ट अवगाहना लगते आरे १ हाथ की, उतरते आरे मुण्ड हाथ (१ हाथ से कुछ कम) प्रमाण होगी और आयु लगते आरे २० वर्ष की, उतरते आरे १६ वर्ष की होगी। वे अधिक सन्तान वाले होगे। उनका वर्ण, गध, रस, स्पर्श, सहनन, सस्थान सब अशुभ होगे। वे बहुत रोगी, क्रोधी, मानी, मायी, लोभी होगे। वे लोग सूर्य उदय और अस्त के समय अपने बिलो मे से बाहर निकल कर गगा सिंधु नदियो मे से मच्छ कच्छप पकड कर रेत मे गाड देगे। शाम को गाडे हुए मच्छादि को सुबह निकाल कर खावेगे और सुबह गाडे हुए मच्छादि को शाम को निकाल कर खावेंगे। व्रत, नियम पच्चक्खाण से रहित मासाहारी सक्लिष्ट परिणामी (खराब परिणाम वाले) वे जीव मर कर प्राय नरक,

---

कच्छप आदि की हड्डिया आदि चाट कर रहेंगे। मनुष्यो के शरीर की रचना इस प्रकार होगी—घडे के पीदा (नीचे का भाग) समान शिर होगा, जौ के शालू के समान माथे के केश होगे, कढाई के पींदे के समान ललाट होगा, चींटी के पाखो के समान भाफण होगे, बकरे की नाक के समान नाक होगी, ऊट की नोल के समान होठ होगे सीप मच्छा-लिया के समान नख होगे। उदई की बम्बी के समान शरीर होगा, नाक कान आदि सब ही द्वार बहते रहेंगे। वे माता-पिता की लज्जा से रहित होगे।

तिर्यंच गति मे जावेगे । पशु पक्षी भी मर कर प्राय नरक, तिर्यंच गति मे जावेगे ।

यह आरा इक्कीस हजार वर्ष का होगा ।

६. काम-भोगादि का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक सातवा, उद्देशा सातवा)

१—अहो भगवन् ! उपयोगसहित गमनागमनादि क्रिया करते हुए सवुडा (सवरयुक्त) अणगार को इरियावही (ऐर्यापथिकी) क्रिया लगती है या सापरायिकीक्रिया लगती है ? हे गौतम ! अकषायी सवुडा अणगार सूत्र प्रमाणे चलता है, इसलिए उसे इरियावहीक्रिया लगती है, सापरायिकी क्रिया नही लगती । कषायसहित, उत्सूत्र चलने वाले अणगार को सापरायिकीक्रिया लगती है ।

२—अहो भगवन् ! काम कितने प्रकार के है ? हे गौतम ! काम दो प्रकार के है—शब्द और रूप । अहो भगवन् ! काम रूपी है या अरूपी ? सचित्त है या अचित्त ? जीव है या अजीव ? हे गौतम ! काम रूपी है, अरूपी नही । काम सचित्त भी है और अचित्त भी है, काम जीव भी है और अजीव भी है । अहो भगवन् ! काम जीवो के होते है या अजीवो के होते है ? हे गौतम ! काम जीवो के होते है, अजीवो के नही होते ।

३—अहो भगवन ! भोग कितने प्रकार के है ? हे

गौतम ! भोग कितने प्रकार के है—गध, रस, स्पर्श । अहो भगवन् ! भोग रूपी है या अरूपी ? सचित्त हैं या अचित्त ? जीव है या अजीव ? हे गौतम ! भोग रूपी हैं, अरूपी नही । भोग सचित्त भी है और अचित्त भी हैं। भोग जीव भी है और अजीव भी है । अहो भगवन् ! भोग जीवो के होते है या अजीवो के होते है ? हे गौतम ! भोग जीवो के होते हैं, अजीवो के नही होते ।

४—अहो भगवन् ! नारकी के नैरयिक कामी है या भोगी हैं ? हे गौतम ! कामी भी है और भोगी भी है । अहो भगवन् इसका क्या कारण ? हे गौतम ! श्रोत्रेन्द्रिय चक्षुइन्द्रिय कामी है और घ्राणेन्द्रिय रसेन्द्रिय स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा भोगी हैं । इसी तरह भवनपति, वाणव्यतर, ज्योतिषी, वैमानिक, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्य ये १५ दण्डक कह देना । चौइन्द्रिय चक्षुइन्द्रिय की अपेक्षा कामी हैं, घ्राणेन्द्रिय रसेन्द्रिय स्पर्शेन्द्रिय की अपेक्षा भोगी है । तेइन्द्रिय, बेइन्द्रिय और एकेन्द्रिय (पाच स्थावर) भोगी हैं, कामी नही ।

अल्पबहुत्व—सबसे थोडे कामी, भोगी, उससे नोकामी-नो-भोगी अनतगुणा, उससे भोगी अनतगुणा ।

७. अनगार क्रिया का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक सातवा, उद्देशा सातवा)

१—अहो भगवन् ! किसी भी देवलोक मे उत्पन्न होने योग्य क्षीण भोगी (दुर्बल शरीर वाला) छद्मस्थ मनुष्य क्या उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम द्वारा विपुल भोग (मनोज्ञ शब्दादि) भोगने मे समर्थ नही होता । अहो भगवन् ! क्या आप इस अर्थ को ऐसा ही कहते है❀ ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे (यह अर्थ ठीक नही है) । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! वह उत्थान कर्म बल वीर्य पुरुषकार पराक्रम से कोई भी विपुल भोग (मनोज्ञ शब्दादि) भोगने मे समर्थ है । इसलिए वह भोगी पुरुप भोगो का त्याग पच्चक्खाण करने से महानिर्जरा वाला और महापर्यवसान (महाफल) वाला होता है ।

२—जिस तरह छद्मस्थ का कहा उसी तरह अधो-अवधिज्ञानी (नियत क्षेत्र के अवधिज्ञान वाले) का भी कह देना चाहिए ।

६—अहो भगवन् ! उसी भव मे सिद्ध होने योग्य यावत् सर्व दु खो का अन्त करने योग्य क्षीणभोगी (दुर्बल

❀ इस प्रश्न का आशय यह है कि जो भोग भोगने मे समर्थ नही है, वह अभोगी है, किन्तु अभोगी होने मात्र मे ही त्यागी नही हो सकता । त्याग करने मे त्यागी होता है और त्याग करने से ही निर्जरा होती है ।

शरीर वाला) परम अवधिज्ञानी मनुष्य क्या उत्थान कर्म वल वीर्य पुरुषकार पराक्रम से विपुल भोग भोगने मे समर्थ नही है ? हे गौतम । णो इणट्ठे समट्ठे—वह उत्थानादि से साधु के योग्य विपुल भोग भोगने मे समर्थ है । भोगो का त्याग पच्चक्खाण करने से वह महानिर्जरा और महा-पर्यवसान (महाफल) वाला होता है ।

४—जिस तरह परमावधिज्ञानी का कहा, उसी तरह से केवलज्ञानी का कह देना चाहिये । -- ---- -

अहो भगवन् । क्या--असज्ञी (मनरहित) त्रस और पाच स्थावर अज्ञानी अज्ञान के अन्धकार मे डूबे हुए अज्ञान रूपी मोह जाल मे फसे हुए अकामनिकरण (अनिच्छा पूर्वक) वेदना वेदते है ? हा, गौतम । वेदते है ।

❀ अहो भगवन् । क्या सज्ञी (मनसहित) जीव

— जो जीव असज्ञी (मनरहित) हैं, उनके मन नही होने से इच्छाशक्ति और ज्ञानशक्ति के अभाव मे क्या अकामनिकरण (अनिच्छापूर्वक) अज्ञानपणे वेदना-सुख दुःख का अनुभव करते है ? इस प्रश्न का यह भावार्थ है । इसका उत्तर - हा अनुभव करते है इस तरह दिया है ।

❀ अहो भगवन् । जो जीव इच्छा शक्ति युक्त और सज्ञी (मनसहितसमर्थ) है क्या वह भी अनिच्छापूर्वक अज्ञानपणे से सुख-दुःख का अनुभव करते है ? हा गौतम।

अकामनिकरण वेदना वेदते है ? हा, गौतम ! वेदते है । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! जैसे अन्धकार मे दीपक बिना आखो से देखा नही जा सकता। छहो दिशाओ मे दृष्टि फैला कर देखे बिना रूप देखा नही जा सकता । इस कारण से वे अकामनिकरण वेदना वेदते है ।

७—× अहो भगवन् ! क्या सज्ञी (मनसहित)

करते हैं । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! जैसे कोई पुरुष देखने की शक्ति से युक्त है तो भी वह पुरुष दीपक के बिना अन्धकार मे रहे हुए पदार्थों को नही देख सकता तथा उपयोग बिना ऊचे, नीचे और पीठ पीछे के पदार्थों को नही देख सकता है । वे इच्छाशक्ति और ज्ञानशक्ति युक्त होते हुए भी उपयोग बिना सुख-दु ख का अनुभव करते है । जिस प्रकार असज्ञी जीव इच्छा और ज्ञानशक्ति रहित होने से अनिच्छापणे और अज्ञानदशा मे सुख-दु ख वेदते है, उसी तरह से सज्ञी जीव इच्छा और ज्ञानशक्ति होते हुए भी शक्ति की प्रवृत्ति के अभाव में तीव्र अभिलाषा के कारण अनिच्छा पूर्वक सुख–दु ख वेदते हैं ।

× अहो भगवन् ! क्या सज्ञी (मनसहित) जीव प्रकामनिकरणतीव्र अभिलाषा पूर्वक सुख-दु ख वेदते है ? हा, गौतम ! वेदते है । अहो भगवन् ! किस तरह वेदते हैं ? हे गौतम ! जो समुद्र के पार नही जा सकते, समुद्र के पार रहे हुए रूपो को नही देख सकते, वे तीव्र अभि-

जीव प्रकाम (तीव्रइच्छापूर्वक) वेदना वेदते है ? हा, गौतम ! वेदते हैं । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! वे समुद्र पार नही जा सकते, समुद्र पार के रूपो को नही देख सकते, देवलोक के रूपो को नही देख सकते, इस कारण मे वे प्रकाम (तीव्रइच्छापूर्वक) वेदना वेदते हैं ।

८. काल का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक ग्यारहवा, उद्देशा ग्यारहवा)

वाणिज्य ग्राम के निवासी सुदर्शन श्रावक ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से पूछा—

अहो भगवन् ! काल कितने प्रकार का है ? हे

लाषा पूर्वक सुख-दुःख वेदते हैं । वे इच्छाशक्ति और ज्ञान-शक्ति से युक्त हैं किन्तु उनको प्राप्त करने की शक्ति नही है, केवल तीव्र अभिलाषा है । इसलिए वे सुख-दुःख को वेदते है । असज्ञी जीव इच्छा और ज्ञान शक्ति के अभाव से अनिच्छा और अज्ञानपूर्वक सुख-दुःख वेदते है । सज्ञी जीव इच्छा और ज्ञानशक्ति युक्त होते हुए भी उपयोग के अभाव से अनिच्छा और अज्ञान पूर्वक सुख-दुःख वेदते है तथा सज्ञी जीव सामर्थ्य और इच्छा युक्त होते हुए भी प्राप्त करने की शक्ति की प्रवृत्ति के अभाव मे सिर्फ तीव्र अभिलाषापूर्वक सुख-दुःख वेदते हैं ।

सुदर्शन ! काल ४ प्रकार का है—१ प्रमाणकाल, २ अहाउनिव्वतिकाल (यथायुर्निर्वृत्तिकाल), ३ मरणकाल, ४ अद्धाकाल ।

अहो भगवन् ! प्रमाणकाल के कितने भेद हैं ? हे सुदर्शन ! प्रमाणकाल के २ भेद है दिवसप्रमाणकाल और रात्रिप्रमाणकाल । ४ पहर का दिन, ४ पहर की रात्रि होती है । आषाढी पूर्णिमा के दिन सूर्य कर्कराशि मे आकर प्रथम माँडले मे चलता है उस दिन १८ मुहूर्त का उत्कृष्ट दिन होता है, ४।। मुहूर्त की उत्कृष्ट पोरिसी होती है, और १२ मुहूर्त की जघन्य रात्रि होती है, ३ मुहूर्त की रात्रि की जघन्य पोरिसी होती है । फिर एक मुहूर्त के १२२ भाग मे से एक-एक भाग दिन घटता जाता है और रात्रि बढती जाती है । इस तरह पोस मास की पूर्णिमा के दिन १२ मुहूर्त का जघन्य दिन और १८ मुहूर्त की उत्कृष्ट रात्रि होती है । ३ मुहूर्त की दिन की जघन्य पोरिसी होती है और ४।। मुहूर्त की रात्रि की उत्कृष्ट पोरिसी होती है । इस तरह १।। मुहूर्त दिन की पोरिसी घटती है और १।। मुहूर्त रात्रि की पोरिसी बढती है । जब सूर्य अन्तिम माडले मे चलता है, तब फिर एक मुहूर्त के १२२ भाग मे से एक-एक भाग रात्रि घटती जाती है और दिन बढता जाता है । चैती पूर्णिमा और आसौजी पूर्णिमा को सूर्य मध्य मण्डल मे चलता है तब १५ मुहूर्त का दिन और १५ मुहूर्त को रात्रि होती है । दिन और रात्रि दोनो बराबर होते है । ३।।। मुहूर्त की पोरिसी होती है ।

अहो भगवन् ! अहाउनिव्वत्तिकाल (यथायुर्निर्वृत्ति-काल) किसे कहते हैं ? हे सुदर्शन ! नारकी देवता मनुष्य, तिर्यंच सब संसारी जीव अपना-अपना बांधा हुआ आयुष्य भोगते हैं उसे अहाउनिव्वत्तिकाल (यथायुर्निर्वृत्ति-काल) कहते हैं ।

अहो भगवन् ! मरणकाल किसको कहते हैं ? हे सुदर्शन ! जीव शरीर से और शरीर जीव से छूटा होता है, उसको मरणकाल कहते हैं ।

अहो भगवन्! अद्धाकाल किसे कहते हैं और उसके कितने भेद हैं ? हे सुदर्शन ! समय आवलिका आदि को अद्धा-काल कहते हैं । इसके अनेक ※ भेद हैं—समय आवलिका यावत् सव्वद्धाकाल ।

※ अद्धाकाल के भेद इस प्रकार हैं—

(१) समय—काल का सबसे सूक्ष्म भाग ।
(२) आवलिका—असंख्यात समय की एक आवलिका होती है ।
(३) उच्छ्वास—संख्यात आवलिका का एक उच्छ्वास होता है ।
(४) निःश्वास—संख्यात आवलिका का एक निःश्वास होता है ।
(५) प्राण (श्वासोच्छ्वास)—एक उच्छ्वास और एक निःश्वास का एक प्राण होता है ।

(६) स्तोक—सात प्राण का एक स्तोक होता है ।

(७) लव—सात स्तोक का एक लव होता है ।

(८) मुहूर्त—७७ लव या ३७७३ प्राण का एक मुहूर्त होता है ।

(९) अहोरात्र - तीस मुहूर्त का अहोरात्र होता है ।

(१०) पक्ष—पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष होता है ।

(११) मास—दो पक्ष का एक मास होता है ।

(१२) ऋतु—दो मास की एक ऋतु होती है ।

(१३) अयन—तीन ऋतुओ का एक अयन होता है ।

(१४) सवत्सर (वर्ष)—दो अयन का एक सवत्सर होता है ।

(१५) युग—पाच सवत्सर का एक युग होता है ।

(१६) वर्षशत वीस युग का एक वर्षशत (सौ वर्ष) होता है ।

(१७) वर्षसहस्र—दश वर्षशत का एक वर्षसहस्र (एक हजार वर्ष) होता है ।

(१८) वर्ष शतसहस्र—सौ वर्ष सहस्रो का एक शतसहस्र (एक लाख वर्ष) होता है ।

(१९) पूर्वाङ्ग—चौरासी लाख वर्षो का एक पूर्वाङ्ग होता है ।

की। चौदह पूर्व का ज्ञान पढा। बारह वर्ष श्रमणपर्याय का पालन कर सिद्ध, मुक्त हुए।

---

(२०) पूर्व - पूर्वाङ्ग को चौरासी लाख से गुणा करने से एक पूर्व होता है।

(२१) त्रुटिताग- पूर्व को चौरासी लाख से गुणा करने से एक त्रुटिताग होता है।

(२२) त्रुटित—त्रुटिताग को चौरासी लाख से गुणा करने से एक त्रुटित होता है।

इस प्रकार पहले की राशि को ८४ लाख से गुणा करने से उत्तरोत्तर राशिया बनती है, वे इस प्रकार है—

(२३) अडडगे (अटटाग) (२४) अडडे (अटट) (२५) अववगे (अववाग) (२६) अववे (अवव) (२७) हूहुयगे (हुहुकाग) (२८) हूहुए (हूहूक) (२९) उप्पलगे (उप्पलाग) (३०) उप्पले (उत्पल) (३१) पउमगे (पद्माग) (३२) पउमे (पद्म) (३३) नलिणगे (नलिनाग) (३४) नलिणे (नलिन) (३५) अच्छणिपूरगे (अच्छनिपूराङ्ग) (३६) अच्छनिपूरे (अच्छनिपूर) (३७) अउयगे (अयुताग) (३८) अउये (अयुत) (३९) नउयगे (नयुताग) (४०) नउए (नयुत) (४१) पउयगे (प्रयुताग) (४२) पउए (प्रयुत), (४३) चूलियगे (चूलिकाग) (४४) चूलिए (चूलिका) (४५) सीसपहेलियगे (शीर्पप्रहेलिकाङ्ग) (४६) सीसपहेलिया (शीर्षप्रहेलिका)।

शीर्षप्रहेलिका १९४ अको की सख्या है। ७५८२६

९. योग का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, शतक तेरहवा, उद्देशा सातवा)

१—अहो भगवन् ! क्या※भाषा आत्मारूप (जीव-स्वरूप) है या अन्यरूप (पुद्गलस्वरूप) है ? हे गौतम ! भाषा आत्मारूप नही, किन्तु अन्य रूप है ।

३२५३०७३०१०२४११५७९७३५६९९७५६९६४०६२१८९ ६६८४८०८०१८३२९६ इन चौपन अको पर १४० बिन्दिया लगाने से शीर्षप्रहेलिका सख्या का प्रमाण आता है । यहा तक का काल गणित का विषय माना गया है । इसके आगे भी काल का परिणाम बतलाया गया है, परन्तु वह उपमा का विषय है, गणित का नही । जैसे कि—पल्योपम, सागरोपम, अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी, पुद्गलपरावर्तन, भूत-काल, भविष्यतकाल, सर्वकाल (सव्वद्धाकाल) ।

※ भेदानुभेद अन्य ग्रन्थो से लिया गया है ।

※ उपर्युक्त प्रश्न का आशय है कि जीव के द्वारा भाषा का प्रयोग होता है तथा भाषा जीव के बन्ध और मोक्ष का कारण होती है, इसलिये जीव का धर्म होने से भाषा आत्मा-जीव है, क्या ऐसा कहा जा सकता ? अथवा भाषा आत्म-जीव नही है, क्या ऐसा कहा जा सकता ? क्योकि भाषा श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा ग्रहण की जाती है, इसलिए मूर्त्त है । भाषा मूर्त्त होने से जीव से भिन्न है, क्योकि जीव अमूर्त्त है । इस प्रकार की शका से यह प्रश्न किया गया है । जिसका उत्तर दिया गया है कि भाषा आत्मा-जीव नही है क्योकि वह पुद्गलरूप है ।

२—अहो भगवन् ! क्या भाषा रूपी है या अरूपी है ? हे गौतम ! भाषा (पुद्गलमय होने से) रूपी है, अरूपी नही ।

३—अहो भगवन् ! क्या भाषा सचित्त (सजीव) है या अचित्त (अजीव) है ? हे गौतम ! भाषा सचित्त नही, अचित्त है ।

४—अहो भगवन् ! क्या भाषा जीव है या अजीव है ? हे गौतम ! भाषा जीव नही, अजीव है ।

५—अहो भगवन् ! क्या भाषा जीवो के होती है या अजीवो के होती है ? हे गौतम ! भाषा जीवो के होती है, अजीवो के नही होती ।

६ - अहो भगवन् ! क्या बोलने से पहले भाषा कही जाती है या बोलते समय भाषा कही जाती है या बोलने के पीछे भाषा कही जाती है ? हे गौतम ! बोलने से पहले भाषा नही कही जाती, बोलने से पीछे भी भाषा नही कही जाती किन्तु बोलते समय भाषा कही जाती है ।

७—अहो भगवन् ! क्या बोलने से पहले भाषा का भेदन (टुकडा) होता है या बोलने से पीछे भाषा का भेदन होता है । बोलते समय भाषा का भेदन होता है ? हे गौतम ! बोलने से पहले भाषा (पुद्गल) का भेदन नही होता बोलने के पीछे भी भेदन नही होता किन्तु बोलते समय भाषा का भेदन होता है ।

८— अहो भगवन् ! भाषा कितने प्रकार की है ?

हे गौतम ! भापा चार प्रकार की है—सत्यभापा, असत्य-भाषा, सत्यमृषाभापा (मिश्रभापा), असत्यामृपाभापा (सत्य भी नही असत्य भी नही—व्यवहारभाषा) ।

६—अहो भगवन् ! क्या मन आत्मा है या अन्य है ? हे गौतम ! मन आत्मा नही, अन्य है । अजीवो के मन नही होता ।

१०—अहो भगवन् ! क्या मन रूपी है या अरूपी है ? हे गौतम ! मन रूपी है, अरूपी नही ।

११-अहो भगवन् ! क्या मन सचित्त है या अचित्त है ? हे गौतम ! मन सचित्त नही, अचित्त है ।

१२-अहो भगवन् ! मन जीव है या अजीव है ? हे गौतम ! मन जीव नही, अजीव है ।

१३-अहो भगवन् ! मन क्या जीवो के होता है या अजीवो के होता है ? हे गौतम ! मन जीवो के होता है, अजीवो के नही ।

१४-अहो भगवन् ! क्या मनन करने से पहले मन होता है या मनन करते समय मन होता है या मनन करने से पीछे मन होता है ? हे गौतम ! मनन करने से पहले मन नही होता, मनन करने से पीछे भी मन नही होता किन्तु मनन करते समय मन होता है ।

१५—अहो भगवन् ! क्या मनन करने से पहले मन का भेदन (टुकडा) होता है या मनन करते समय मन का भेदन होता है या मनन करने से पीछे मन का भेदन

होता है ? हे गौतम ! मनन करने से पहले मन का भेदन नही होता मनन करने से पीछे भी मन का भेदन नही होता, किंतु मनन करते समय मन का भेदन होता है।

१७—अहो भगवन् ! मन कितने प्रकार का है ? हे गौतम मन चार प्रकार का है—सत्यमन, असत्यमन, सत्यमृपामन, (मिश्रमन), असत्यामृषामन (व्यवहारमन)।

१७—अहो भगवन् ! क्या काया (शरीर आत्मा है या अन्य है ? हे गौतम ! काया आत्मा भी है और अन्य (आत्मा से भिन्न) भी है*।

---

* कोई शका करता है कि—काया आत्मस्वरूप ही है क्योकि काया द्वारा किये हुए कर्मो का अनुभव आत्मा को होता है। अथवा काया आत्मा से सर्वथा भिन्न है। क्योकि काया के एक अ श का छेदन होने पर आत्मा का छेदन नही होता।

इसका समाधान यह है—काया कथचित् आत्म-स्वरूप है क्योकि काया का स्पर्श करने पर आत्मा को भी अनुभव होता है। काया कथचित् आत्मा से भिन्न है क्योकि काया का विनाश होने पर आत्मा का विनाश नही होता। यदि काया को आत्मा से सर्वथा अभिन्न माना जाय तो काया का विनाश होने पर आत्मा का भी विनाश हो जायेगा परन्तु ऐसा नही होता है। इसलिए काया आत्मा से कथचित् भिन्न है और कथचित् अभिन्न है।

१८—अहो भगवन् ! क्या काया रूपी है या अरूपी है ? हे गौतम ! काया रूपी भी है और अरूपी भी है ।

१९ - अहो भगवन् ! क्या काया सचित्त है या अचित्त है ? हे गौतम ! काया सचित्त भी है और अचित्त भी है ।

२०—अहो भगवन् ! क्या काया जीव है या अजीव है ? हे गौतम ! काया जीव भी है और अजीव भी है ।

२१ - अहो भगवन् ! क्या काया जीवो के होती है और अजीवो के भी होती है ।

२२—अहो भगवन् ! क्या जीवो के साथ सम्बन्ध होने से पहले काया होती है या पुद्गल ग्रहण करते समय काया होती है या पुद्गल ग्रहण करने के पीछे काया होती है ? हे गौतम ! जीवो के साथ सबध होने से पहले (पुद्गल ग्रहण करने से पहले) भी काया होती है, पुद्गल ग्रहण करते समय भी काया होती है और पुद्गल ग्रहण करने के पीछे भी काया होती है ।

२३—अहो भगवन् ! क्या जीव के साथ सम्बन्ध होने से पहले (पुद्गल ग्रहण करने से पहले) काया भिदाती है (काया का भेदन होता है) ? या पुद्गल ग्रहण करते समय काया भिदाती है ? या पुद्गल ग्रहण करने के पीछे काया भिदाती है ? हे गौतम ! जीव के साथ सबध होने से पहले भी काया भिदाती है, पुद्गल ग्रहण करते

समय भी काया भिदाती है और पुद्गल ग्रहण करने के पीछे भी काया भिदाती है।

२४—अहो भगवन् ! काया (योग) कितने प्रकार की है ? हे गौतम ! काया सात प्रकार की है—औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र, कार्मण।

—※—

१०. पांच मरण का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, शतक तेरहवा उद्देशा सातवा)

श्री भगवती सूत्र के १३ वे शतक के ७ वे उद्देशे मे पाच मरण का थोकडा चलता है सो कहते है।

१—अहो भगवन् ! मरण कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! मरण पाच प्रकार का है—※ १ आवीचिकामरण २ अवधिमरण, ३ आत्यन्तिकमरण, ४ बालमरण, ५ पण्डितमरण।

२—अहो भगवन् ! आवीचिकमरण के कितने भेद है ? हे गौतम ! आवीचिकमरण के ५ भेद है—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव।

अहो भगवन् ! द्रव्य-आवीचिक मरण के कितने भेद है ? हे गौतम ! द्रव्य-आवीचिकमरण के चार भेद है—

※ १ आवीचिकमरण—आयुकर्म के भोगे हुए पुद्गल प्रतिसमय क्षय होते है, उनको आवीचिकमरण कहते है। जिस तरह प्रति समय आयु क्षीण हो रही है, सो यह आवीचिकमरण है।

१–नैरयिक द्रव्य–आवीचिकमरण❀२ तिर्यचयोनिकद्रव्य-आवीचिकमरण, ३ मनुष्यद्रव्य-आवीचिकमरण, देवद्रव्य-

२—अवधिमरण (मर्यादा–सहित मरण–नरकादि भव के हेतु भूत वर्तमान आयुष्य कर्म के पुद्गलो को भोग कर जीव मरण को प्राप्त करता है और पुन उन्ही आयुष्य कर्म के पुद्गलो को आगामी भव मे ग्रहण करके मरण प्राप्त करेगा उसे अवधिमरण कहते है ।

३—आत्यन्तिकमरण–एक वार भोग कर छोड हुए आयु कर्म के पुद्गलो को यह जीव दुबारा न भोगे तो उन पुद्गलो की अपेक्षा जीव का आत्यन्तिकमरण कह–लाता है ।

४—बालमरण—व्रतरहित (असयति) प्राणियो की मृत्यु को बालमरण कहते है ।

५—पडितमरण— सर्व विरति साधुओ की मृत्यु को पण्डितमरण कहते है ।

❀ नारक जीव रूप मे रहते हुए नैरयिक ने जिन द्रव्यो को नरकायु रूप मे ग्रहण किया है और उदय आने पर जो प्रतिसमय मरते है अर्थात् जिन्हे जीव छोड देता है वह नैरयिकद्रव्यावीचिकमरण है । इसी प्रकार तिर्यच आदि द्रव्य-आवीचिकमरण भी समझना । इसी प्रकार नरक क्षेत्र मे रहते हुए जीव जो नरकायु के द्रव्यो को निरन्तर प्रतिसमय छोडता है, उसे नरकक्षेत्र-आवीचिकमरण कहते है । इसी प्रकार काल, भव और भाव भी समझना ।

आवीचिकमरण । इसी तरह क्षेत्र, काल, भव और भाव के भी चार-चार भेद कह देना ।

अहो भगवन् ! अवधिमरण के कितने भेद है ? हे गौतम ! अवधिमरण के पाच भेद है–द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव । इन पाचो के चार गति की अपेक्षा से चार-चार भेद कह देना ।

४—अहो भगवन् ! आत्यन्तिकमरण के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! आत्यन्तिकमरण के पाच भेद है—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव । इन पाचो के चार गति की अपेक्षा से चार-चार भेद कह देना ।

अहो भगवन् ! वालमरण के कितने भेद है ? हे गौतम ! वाल मरण के १२ भेद हैं—१ वलन्मरण (वलयमरण) तीव्र भूख प्यास मे छटपटाते हुए मरना, अथवा सयम से भ्रष्ट प्राणी का मरण वलन्मरण कहलाता है । २ वसट्टमरण (वशार्त्त मरण)-इन्द्रियो के वशीभूत होकर दुखी प्राणी का मरना वसट्टमरण कहलाता है । ३–अ तोसल्लमरण (अन्त शल्यमरण) इसके दो भेद है—द्रव्य और भाव । शरीर मे वाण आदि घुस जाने से और उसे वापिस न निकालने मे जो मरण होता है उसे द्रव्य-अ तोसल्लमरण कहते हैं । अतिचार रूप आतरिक शल्य की शुद्धि किये विना जो मरण होता है उसे भाव अ तो-सल्ल मरण कहते हैं । ४–तद्भवमरण—मनुष्य और तिर्यच के शरीर को छोडकर फिर मनुष्य और तिर्यच के शरीर

मे जो मरण हो उसको निहारिम कहते हैं। पर्वत की गुफा आदि एकान्त स्थान मे जो मरण हो उसको अनिहारिम कहते हैं। पादपोपगमन मरण के ये दोनो भेद अप्रतिक्रम (शरीरसस्कार से रहित या प्रतिक्रमण से रहित) होते है। इनमे दूसरो से सेवा नही कराई जाती।

भत्तपच्चक्खाण (भक्तप्रत्याख्यान) मरण के दो भेद है—निहारिम और अनिहारिम। ये दोनो भेद सप्रतिक्रम (शरीरसस्कार सहित या प्रतिक्रमण सहित) होते है। इनमे दूसरो से सेवा करवाई जा सकती है।

कुल भेद—आवीचिकमरण मरण के २० भेद, अवधिमरण के २० भेद, आत्यन्तिकमरण के २० भेद, बालमरण के १२ भेद, पण्डितमरण के २ भेद। ये कुल मिलाकर २०+२०+२०+१२+२=७८ भेद हुए।

---

११. विग्रहगति का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक चौदहवा उद्देशा पहला)

१—अहो भगवन् ! कोई भावितात्मा अनगार पहले देवलोक की स्थितिबन्ध को उलघ गये और तीसरे देवलोक की स्थितिबन्धयोग्य अध्यवसायो को प्राप्त नही हुए। बीच मे ही काल कर गये तो वे कहा उत्पन्न होते है ? हे गौतम ! दूसरे देवलोक मे उत्पन्न होते है। यदि वे वहा [illegible] पूर्व लेश्या को छोडते है कर्म की लेश्या—भाव लेश्या से

समय, दो समय, तीन समय की विग्रह गति से उत्पन्न होते है। इसी तरह वैमानिक तक कह देना चाहिये किन्तु एकेन्द्रिय मे ॐ चार समय तक की विग्रह गति कहनी चाहिए।

है। जब जीव विषमश्रेणी मे रहे हुए उत्पत्तिस्थान मे जाकर उत्पन्न होता है तब दो समय की अथवा तीन समय की विग्रह गति होती है और एकेन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट चार समय की विग्रहगति होती है। जब कोई जीव भरत-क्षेत्र की पूर्व दिशा मे नरक मे पश्चिमदिशा मे उत्पन्न होता है, तब पहले समय मे नीचे आता है, दूसरे समय मे तिच्छी उत्पत्तिस्थान मे जाकर उत्पन्न होता है। इस प्रकार दो समय की विग्रहगति होती है। जब कोई जीव भरतक्षेत्र की पूर्व दिशा मे नरक मे वायव्यकोण (विदिशा) मे उत्पन्न होता है, तब एक समय मे समश्रेणी द्वारा नीचे जाता है, दूसरे समय मे पश्चिमदिशा मे जाता है, तीसरे समय मे तिच्छी वायव्यकोण मे उत्पत्तिस्थान मे जाकर उत्पन्न होता है। इस प्रकार जीवो की शीघ्रगति कही गई है।

ॐ एकेन्द्रिय जीवो मे चार समय की विग्रह गति इस प्रकार होती है—जीव की गति श्रेणी के अनुसार होती है। इसलिए त्रसनाडी (त्रसनाल) से बाहर रहा हुआ (स्थावरनाल के कोण मे) एकेन्द्रिय जीव जब दूसरे भव मे जाता है, तब पहले समय मे त्रसनाडी से बाहर अधोलोक की विदिशा से दिशा की तरफ जाता है। दूसरे

३—अहो भगवन् ! क्या नैरयिक अनन्तरोपपन्न (जिनको उत्पन्न हुए अभी प्रथम समय ही हुआ है) है या परम्परोपपन्न (जिनको उत्पन्न हुए दो तीन आदि समय हो गये है) हैं या अनन्तरपरम्परानुपपन्न (जो नरक मे उत्पन्न होने के लिए विग्रहगति मे चल रहे है) है ? हे गौतम ! नैरयिक अनन्तरोपपन्न भी है, परम्परोपपन्न भी है और अनन्तरपरम्परानुपपन्न भी है। इसी तरह वैमानिक तक कह देना चाहिए।

४—अहो भगवन् ! ❀ अनन्तरोपपन्न नैरयिक क्या

समय मे लोक के मध्य भाग मे मे प्रवेश करता है। तीसरे समय मे ऊचा (ऊर्ध्वलोक मे) जाता है। चौथे समय मे त्रसनाडी से निकलकर दिशा से व्यस्थित उत्पत्तिस्थान मे जाता है। यह बात सामान्यरूप से बहुत एकेन्द्रिय जीवो की अपेक्षा से कही गई है अन्यथा एकेन्द्रिय जीव की पाच समय की विग्रह गति सम्भव है। वह इस प्रकार सम्भावित होती है—१-पहले समय से त्रसनाडी से बाहर अधोलोक की विदिशा से दिशा की तरफ जाता है। २-दूसरे समय मे लोक के मध्यभाग मे प्रवेश करता है। ३-तीसरे समय मे ऊर्ध्वलोक मे जाता है। ४-चौथे समय मे वहा से विदिशा की तरफ जाता है। ५-पाचवे समय मे विदिशा मे रहे हुए उत्पत्तिस्थान मे जाता है। यह पाच समय की विग्रहगति कही गई है।

❀ अनन्तरोपपन्न (जिनको उत्पन्न हुये अभी प्रथम समय ही हुआ है) और अनन्तर-परम्परानुपपन्न (जो जीव

नारकी का आयुष्य बाधते है यावत् वैमानिक का आयुष्य बाधते है ? हे गौतम ! आयुष्य नही बाधते ।

५—अहो भगवन् ! परम्परोपपन्न नैरयिक क्या नारकी का आयुष्य बाधते है यावत् वैमानिक का आयुष्य बाधते है ? हे गौतम ! नारकी और देवता का आयुष्य नही बाधते, मनुष्य या तिर्यच का आयुष्य बाधते है ।

६—अहो भगवन् ! ※ अनन्तर-परम्परानुपपन्न नैरयिक क्या नारकी का आयुष्य बान्धते है यावत् वैमानिक का आयुष्य बाधते है ? हे गौतम ! आयुष्य नही बाधते है ।

जिस तरह नारकी का कहा, उसी तरह वैमानिक तक कह देना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य परम्परोपपन्न और तिर्यच परम्परोपपन्न चारो ही गति का आयुष्य बाधते है ।

नरक मे उत्पन्न होने के लिए विग्रहगति मे चल रहे है) नैरयिक चारो प्रकार (नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, देव) के आयुष्य का बन्ध नही करते है, क्यो उस अवस्था मे उस प्रकार के अध्यवसाय नही होते, इसलिए सब जीवो के आयुष्य का बन्ध नही होता । सामान्यरूप से अपनी आयुष्य का तृतीयादि भाग बाकी रहने पर आयुष्य का बन्ध होता है । इसलिए परम्परोपपन्नक (जिनको उत्पन्न हुए दो तीन आदि समय हो गये है) नैरयिक अपनी आयुष्य छह महीने बाकी रहने पर तिर्यच अथवा मनुष्य की आयुष्य का बन्ध करते है ।

जिस तरह उपपन्न (उत्पन्न होने) का कहा उसी तरह निर्गत (निकलने) का कह देना चाहिये । चौबीस ही दडक मे इसी तरह कह देना चाहिये ।

ये निर्गत जीव कही उत्पन्न होते है तो वहा सुख से उत्पन्न होते है अथवा दु ख से ? यहा दु खोत्पन्न की अपेक्षा गौतम स्वामी पूछते है—हे भगवन् ! नैरयिक जीव अनन्त-रखेदोपपन्न होते है या परम्परखेदोपपन्न होते है या अनन्तर-परम्परखेदानुपपन्न होते है ? हे गौतम ! नैरयिक मे तीनो भागे पाये जाते है इसी प्रकार चारो दडक—खेदोपपन्नदडक, खेदोपपन्न की अपेक्षा से आयुष्यबध का दडक, खेदनिर्गतदडक और खेदनिर्गत की अपेक्षा से आयुष्य-बध का दडक कहना चाहिए । आयुष्य का बध परम्परो-पपन्न मे करते है । अनन्तरोपपन्न और अनन्तरपरम्परानु-पपन्न भागे मे आयुष्य का बन्ध नही होता ।

---

१२. उन्माद का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक चौदहवा उद्देशा दूसरा)

१—अहो भगवन् ! उन्माद कितने प्रकार है ? हे गौतम ! * उन्माद दो प्रकार का है—यक्षावेश—उन्माद और

---

* उन्माद—जिससे स्पष्ट चेतना विवेक ज्ञान नष्ट हो जाय उसको उन्माद कहते है ।

यक्षावेश उन्माद—शरीर मे यक्ष प्रवेश करने से जो उन्माद होता है उसको यक्षावेश उन्माद कहते है ।

मोहनीय-उन्माद*जो सुख पूर्वक वेदा जा सकता है और सुख पूर्वक छोडा जा सकता है वह यक्षावेश-उन्माद है और मोहनीयकर्म से उदय हुवा उन्माद है वह दुःखपूर्वक वेदा जाता है और दुःखपूर्वक ही छोडा जाता है।

२—अहो भगवन्! नारकी के नैरयिको मे कितने प्रकार का उन्माद पाया जाता है? हे गौतम! दोनो प्रकार का उन्माद पाया जाता है। २४ ही दण्डक मे दोनो प्रकार का उन्माद पाया जाता है। अहो भगवन्! इसका क्या कारण है? हे गौतम! देवता नैरयिको के ऊपर अशुभ पुद्गल डालते हैं, जिससे नैरयिको को यक्षावेश-उन्माद की प्राप्ति होती है। इसी तरह औदारिक के १० दण्डक कह देना। १३ दण्डक देवता मे महिड्ढिया (महाऋद्धि वाले) देव अप्पड्ढिया (अल्पऋद्धि वाले) देवो के

---

* मोहनीय-उन्माद-मोहनीयकर्म के उदय से आत्मा को पारमार्थिक सत्, असत् का विवेक नष्ट हो जाता है, उसको मोहनीय-उन्माद कहते हैं। इसके दो भेद हैं— मिथ्यात्वमोहनीय-उन्माद और चारित्र-मोहनीय उन्माद। मिथ्यात्वमोहनीय-उन्माद से जीव अतत्त्व को तत्त्व मानता है और तत्त्व को अतत्त्व मानता है। चारित्रमोहनीय-उन्माद से जीव विषयादि के स्वरूप को जानता हुआ भी अज्ञानी की तरह उनमे प्रवृत्ति करता है। अथवा वेदमोहनीय के उदय से हिताहित का भान भूलकर उन्मत्त बन जाता है।

ऊपर अशुभ पुद्गल डालते है, जिससे अप्पड्ढिया देवो को यक्षावेश–उन्माद की प्राप्ति होती है। मोहनीय–उन्माद की प्राप्ति २४ ही दडक मे मोहनीयकर्म के उदय से होती है।

---

१३. वर्षा और तमस्काय का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक चौदहवा उद्देशा दूसरा)

१—अहो भगवन् ! वृष्टि (वर्षा) किस तरह से होती है ? हे गौतम ! वर्षाकाल मे अथवा तीर्थंकर भगवान् के जन्म महोत्सव आदि मे शक्रेन्द्र देवेन्द्र देवराजा जब वर्षा करने की इच्छा करते है तब आभ्यन्तरपरिपदा के देवो को बुलाते है, आभ्यतर परिपदा वाले देव मध्यम परिपदा के देवो को बुलाते है। मध्यम परिषदा वाले देव वाहर को परिपदा वाले देवो को बुलाते है। बाहर की परिपदा वाले देव वाहर-वाहर के देवो को बुलाते है। वाहर-वाहर के देव आभियोगिकदेवो को वुलाते है। आभियोगिकदेव वृष्टिकायिक (वर्षा करने वाले) देवो को बुलाते है। फिर वे वृष्टिकायिक देव वर्षा करते है।

२—अहो भगवन् ! क्या असुरकुमार वृष्टि करते है ? हा, गौतम ! करते है। अहो भगवन् ! असुरकुमार देव किस कारण से वृष्टि करते है ? हे गौतम ! तीर्थंकर

भगवान् के जन्म, दीक्षा, ज्ञान और निर्वाण के महोत्सव के निमित्त वृष्टि करते हैं। इसी तरह १३ दण्डक देवता के कह देना चाहिए।

३—अहो भगवन्! तमस्काय कैसे होती है? हे गौतम! जिस तरह वर्षा का कहा उसी तरह तमस्काय का भी कह देना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि शक्रेन्द्र की जगह ईशानेन्द्र कहना चाहिए और आभियोगिकदेव वृष्टिकायिकदेव के बदले तमस्कायिक (तमस्काय-प्रयोग करने वाले) देवों को बुलाते हैं। वे तमस्कायिक-देव तमस्काय करते हैं।

४—अहो भगवन्! क्या असुरकुमार देव तमस्काय करते हैं? हां, गौतम! करते हैं।

अहो भगवन्! किस कारण से तमस्काय करते हैं? हे गौतम! रतिक्रीडा करने के लिए, शत्रु को विस्मय (मोह) उत्पन्न करने के लिए, द्रव्य को छिपाने के लिए, तथा अपने शरीर को छिपाने के लिए तमस्काय करते हैं। इसी तरह १३ दण्डक देवता के कह देने चाहिए।

ऊपर अशुभ पुद्गल डालते है, जिससे अप्पड्ढिया देवो को यक्षावेश–उन्माद की प्राप्ति होती है। मोहनीय–उन्माद की प्राप्ति २४ ही दडक मे मोहनीयकर्म के उदय से होती है।

१३. वर्षा और तमस्काय का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक चौदहवा उद्देशा दूसरा)

१—अहो भगवन् ! वृष्टि (वर्षा) किस तरह से होती है ? हे गौतम ! वर्षाकाल मे अथवा तीर्थंकर भगवान् के जन्म महोत्सव आदि मे शक्रेन्द्र देवेन्द्र देवराजा जब वर्षा करने की इच्छा करते है तब आभ्यन्तरपरिषदा के देवो को बुलाते है, आभ्यतर परिषदा वाले देव मध्यम परिषदा के देवो को बुलाते है। मध्यम परिषदा वाले देव बाहर की परिषदा वाले देवो को बुलाते है। बाहर की परिषदा वाले देव बाहर-बाहर के देवो को बुलाते है। बाहर-बाहर के देव आभियोगिकदेवो को बुलाते है। आभियोगिकदेव वृष्टिकायिक (वर्षा करने वाले) देवो को बुलाते है। फिर वे वृष्टिकायिक देव वर्षा करते है।

२—अहो भगवन् ! क्या असुरकुमार वृष्टि करते है ? हा, गौतम ! करते है। अहो भगवन् ! असुरकुमार देव किस कारण से वृष्टि करते है ? हे गौतम ! तीर्थंकर

भगवान् के जन्म, दीक्षा, ज्ञान और निर्वाण के महोत्सव के निमित्त वृष्टि करते हैं। इसी तरह १३ दण्डक देवता के कह देना चाहिए।

३—अहो भगवन्! तमस्काय कैसे होती है? हे गौतम! जिस तरह वर्षा का कहा उसी तरह तमस्काय का भी कह देना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि शक्रेन्द्र की जगह ईशानेन्द्र कहना चाहिए और आभियोगिकदेव वृष्टिकायिकदेव के बदले तमस्कायिक (तमस्काय-अंधेरा करने वाले) देवों को बुलाते हैं। वे तमस्कायिक-देव तमस्काय करते हैं।

४—अहो भगवन्! क्या असुरकुमार देव तमस्काय करते हैं? हा, गौतम! करते हैं।

अहो भगवन्! किस कारण से तमस्काय करते है? हे गौतम! रतिक्रीडा करने के लिए, शत्रु को विस्मय (मोह) उत्पन्न करने के लिए, द्रव्य को छिपाने के लिए तथा अपने शरीर को छिपाने के लिए तमस्काय करते है। इसी तरह १३ दडक देवता के कह देने चाहिए।

१४. देवता के शास्त्र का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक चौदहवा उद्देशा तीसरा)

१—अहो भगवन् ! महाकाय (बड़े परिवार वाला) महाशरीर वाला देवता क्या भावितात्मा अनगार के बीचो-बीच होकर जाता है ? हे गौतम ! कोई जाता है, कोई नही जाता—अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! देव दो प्रकार के है—मायीमिथ्यादृष्टि, अमायी-समदृष्टि । मायीमिथ्यादृष्टि देव भावितात्मा अनगार को देख कर वन्दना नही करता, नमस्कार नही करता, सत्कार नही करता यावत् पर्युपासना नही करता । इस कारण से भावितात्मा अनगार के बीचोबीच होकर जाता है । अमा-यीसमदृष्टि देव भावितात्मा अनगार को देखकर वन्दना करता है, नमस्कार करता है, सत्कार करता है, सन्मान करता है, यावत् पर्युपासना करता है । इस कारण भावितात्मा अनगार के बीचोबीच होकर नही जाता है । इसी तरह १३ दण्डक*देवता के कह देना चाहिए ।

---

* बीचोबीच होकर जाने का कार्य सिर्फ देवो मे ही हो सकता है । नरक और पृथ्वीकायिक आदि जीवो मे नही हो सकता है । इसलिये यहा सिर्फ देवता के दण्डक ही कहे गये है ।

२—अहो भगवन् ! क्या नारकी के नैरयिको मे❀ १ सत्कार, २ सन्मान, ३ कृतिकर्म, ४ अभ्युत्थान, ५ अंजलिकरण, ६ आसनाभिग्रह, ७ आसनानुप्रदान, ८ सन्मुख जाना, ९ सेवा करना, १० पहुचाने जाना, यह विनय है ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे (नैरयिको मे मे सत्कारादि विनय नही है।) इसी तरह पाच स्थावर तीन विकलेन्द्रियो मे कह देना चाहिए । तिर्यंचपचेन्द्रिय मे आठ

❀ १—सत्कार—विनय करने योग्य व्यक्ति का विनय करना ।

२—सम्मान—यथायोग्य सेवा करना ।

३—कृतिकर्म—वन्दना करना ।

४—अभ्युत्थान—आदर करने योग्य व्यक्ति को देखकर आसन छोडकर खडा होना ।

५—अंजलिकरण—दोनो हाथ जोडना ।

६—आसनाभिग्रह—बैठने के लिये आसन का आमन्त्रण देना ।

७—आसनानुप्रदान—आसन लाकर बिछाना ।

८—आदर करने योग्य पुरुष को आते देखकर उनके सामने जाना ।

९—बैठे हुये हो तो उनकी सेवा करना ।

१०—उठ कर जाते हो तो कुछ दूर तक पहुचाने के लिये जाना ।

प्रकार का विनय (आसनाभिग्रह और आसनानुप्रदान, इन दो को छोड कर) होता है। मनुष्य और १३ दण्डक देवता मे दस ही प्रकार का विनय होता है।

३—अहो भगवन् ! क्या अल्पऋद्धि वाला देव महाऋद्धि वाले देव के बीचोबीच होकर जाता है ? हे गौतम! नही जाता।

४—अहो भगवन् ! क्या समान ऋद्धि वाला देव समान ऋद्धि वाले देव के बीचोबीच होकर जाता है ? हे गौतम ! जाने की शक्ति तो नही है, परन्तु सामने वाला देव प्रमाद मे हो तो चला जाता है।

५—अहो भगवन् ! क्या शस्त्र का प्रहार करके जाता है या प्रहार किये बिना ही जाता है ? हे गौतम ! शस्त्र का प्रहार करके जाता है किन्तु शस्त्र का प्रहार किये बिना नही जाता।

६—अहो भगवन् ! क्या पहले शस्त्र का प्रहार करता है, पीछे जाता है या पहले जाता है, पीछे प्रहार करता है ? हे गौतम ! पहले शस्त्र का प्रहार करता है, पीछे जाता है किन्तु पहले जाता है और पीछे प्रहार करता है, यह बात नही है।

७—अहो भगवन् ! क्या महाऋद्धि वाला देव अल्पऋद्धि वाले देव के बीचोबीच होकर जाता है ? हा गौतम! जाता है।

८—अहो भगवन् ! क्या शस्त्र का प्रहार करके जाता है या प्रहार किये बिना ही जाता है ? हे गौतम ! प्रहार करके भी जा सकता है और प्रहार किये बिना भी जा सकता है ।

९—अहो भगवन् ! क्या पहले शस्त्र का प्रहार करता है, पीछे जाता है या पहले जाता है, पीछे प्रहार करता है ? हे गौतम ! महाऋद्धि वाले देवता की इच्छा हो तो पहले प्रहार करता है, पीछे जाता है अथवा पहले जाता है, पीछे प्रहार करता है ।

इसी तरह १३ दडक देवता के कह देने चाहिए । समुच्चय देवता और १३ दण्डक देवता, इन १४ मे तीन-तीन*आलापक कहने से ४२ आलापक हुए । ये ४२ आलापक देवता का देवता के साथ कहे गये । इसी तरह ४२ आलापक देवता का देवी के साथ, ४२ आलापक देवी का देवता के साथ और ४२ आलापक देवी का देवी के साथ कह देना चाहिए । कुल मिला कर १८२ (१४+४२+४२+४२+ ४२=१८२) आलापक हुए ।

---

*१–अल्पऋद्धिवाला महाऋद्धिवाला देव,

२–समानऋद्धिवाला, समानऋद्धिवाला देव,

३–महाऋद्धि वाला अल्पऋद्धिवाला देव, ये ३ आलापक हुये ।

१०—अहो भगवन् ! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के पुद्गलपरिणाम का अनुभव करते है ? हे गौतम ! अनिष्ट यावत् अमनोज्ञ पुद्गल परिणाम का अनुभव करते है । इसी तरह सातवी नरक तक कह देना चाहिए ।

अहो भगवन् ! नैरयिक कितने प्रकार की वेदना वेदते है ? हे गौतम ! ❀दस प्रकार की अशुभ वेदना वेदते है । इसका विस्तार श्री जीवाभिगमसूत्र के नरक-उद्देशक मे कहा, उस तरह जान लेना चाहिए । यावत्, अहो भगवन् ! सातवी नरक के नैरयिक किस तरह की परिग्रहसज्ञा के परिणाम का अनुभव करते है ? हे गौतम ! अनिष्ट यावत् अमनोज्ञ परिग्रहसज्ञा के परिणाम का अनुभव करते है ।

❀ नैरयिक जीवो की दस प्रकार की वेदना—(१) शीत—नरक मे अत्यन्त शीर (ठण्ड) होती है । (२) उष्ण-गर्मी, (३) क्षुधा—भूख । (४) पिपासा—प्यास । (५) कण्डू—खुजली । (६) परतन्त्रता—परवशता । (७) भय—डर । (८) शोक—चिता अथवा दीनता । (९) जरा—बुढापा । (१०) व्याधि—रोग ।

उपरोक्त दस वेदनाए नरको के अन्दर अत्यन्त अर्थात् उत्कृष्ट रूप से होती है ।

१५. शक्रेन्द्र का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक सोलहवा, उद्देशा दूसरा)

एक समय शक्र देवेन्द्र देवराजा अपनी ऋद्धि, परिवार सहित श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आये। वन्दना-नमस्कार करके शक्रेन्द्रजी ने पूछा—

१—अहो भगवन् ! अवग्रह (स्वामीपना) कितने प्रकार का है ? हे शक्र ! पाच प्रकार का है—१ देवेन्द्र का अवग्रह अर्थात् दक्षिण लोकार्द्ध पर शक्रेन्द्रजी का अवग्रह है और उत्तर लोकार्द्ध पर ईशानेन्द्रजी का अवग्रह है। २ राजा का अवग्रह, जैसे भरतादि के छह खण्डो पर चक्रवर्ती का अवग्रह (स्वामीपना) होता है। ३ गृहपति का अवग्रह, जैसे माडलिक राजा का अपने आधीन देश पर अवग्रह होता है। ४ सागारिक अवग्रह, जैसे गृहस्थ का अपने घर पर अवग्रह होता है। ५ साधर्मिक अवग्रह। समान धर्म वाले साधु परस्पर साधर्मिक कहलाते हैं, उनका* पाच कोस तक क्षेत्र मे साधर्मिक अवग्रह होता है।

इसके वाद शक्रेन्द्रजी ने कहा कि हे भगवन् ! जो

---

*२।। कोस दक्षिण की तरफ, २।। कोस उत्तर की तरफ इस तरह ५ कोस अथवा २।। कोस पूर्व की तरफ, २।। कोस पश्चिम की तरफ इस तरह ५ कोस।

श्रमण निर्ग्रन्थ विचरते है, उन्हे मैं आज से अवग्रह की आज्ञा देता हू ।

ऐसा कह कर शक्रेन्द्रजी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करके अपने स्थान वापिस चले गये ।

इसके बाद गौतमस्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करके पूछा—अहो भगवन् ! शक्रेन्द्रजी ने जो यह कहा कि मैं अवग्रह की आज्ञा देता हू सो क्या यह सत्य है ? हा, गौतम ! सत्य है ।

२—अहो भगवन् ! क्या शक्रेन्द्रजी सत्यवादी हैं या मिथ्यावादी है ? हे गौतम ! शक्रेन्द्रजी सत्यवादी हे, मिथ्यावादी नही है ।

३ - अहो भगवन् ! क्या शक्रेन्द्रजी सत्यभाषा बोलते है, असत्यभाषा बोलते है, सत्यमृषा (मिश्र) भाषा बोलते है या असत्यामृषाभाषा (व्यवहारभाषा) बोलते है ? हे गौतम ! सत्यभाषा बोलते है यावत् असत्यामृषाभाषा बोलते है याने चारो ही भाषा बोलते है ।

४—अहो भगवन् ! क्या शक्रेन्द्रजी सावद्य (पाप युक्त) भाषा बोलते है या निरवद्य (पापरहित) भाषा बोलते है ? हे गौतम ! शक्रेन्द्रजी सावद्य और निरवद्य दोनो भाषा बोलते है । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण? हे गौतम ! जब शक्रेन्द्रजी हाथ वस्त्र आदि से मुख को ढक कर भाषा बोलते है तो वह निरवद्य भाषा है क्योकि

मुख को हाथ आदि से ढककर बोलने से वायुकाय के जीवों की रक्षा होती है। जब शक्रेन्द्रजी खुले मुख (हाथ आदि से मुख को ढके बिना) भाषा बोलते है तो वह सावद्य भाषा है, क्योकि इससे वायुकाय के जीवो की हिंसा होती है।

५-अहो भगवन्! क्या शक्रेन्द्रजी भवसिद्धिक है या अभवसिद्धिक हैं? सम्यक्दृष्टि है या मिथ्यादृष्टि हैं? परित्तससारी हैं या अनन्तससारी है? सुलभबोधि हैं या दुर्लभबोधि है? आराधक है या विराधक हैं? चरम हैं अचरम हैं? हे गौतम! भवसिद्धिक है, अभवसिद्धिक नही। सम्यग्दृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि नही। परित्तससारी हैं, अनन्तससारी नही। सुलभबोधि हैं, दुर्लभबोधि नही। आराधक है, विराधक नही। चरम हैं, अचरम नही। अहो भगवन्! इसका क्या कारण? हे गौतम! शक्रेन्द्रजी बहुत साधु, साध्वी श्रावक, श्राविका के हित, सुख, पथ्य, कल्याण के चाहने वाले हैं। इसलिए शक्रेन्द्रजी भवसिद्धिक है यावत् चरम हैं, अचरम नही।

ΔΔ

१६. स्वप्नो का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक सोलहवा, उद्देशा छठा)

१—अहो भगवन्! स्वप्न कितने प्रकार के हैं? हे गौतम! स्वप्न पाच प्रकार के हैं—१ यथातथ्यस्वप्न—जैसा स्वप्न देखे वैसा ही फल मिले। यह स्वप्न सत्य

और शुभफल का दाता होता है। २ प्रतान (पयाण) स्वप्न–विस्तार वाला स्वप्न। यह यथातथ्य भी होता है और अयथातथ्य (मिथ्या) भी होता है। ३ चिन्तास्वप्न–जागृत अवस्था मे जिन पदार्थों का विचार किया है उनको स्वप्न मे देखे। ४ तव्विवरीए (तद्विपरीत) स्वप्न-स्वप्न मे जिन पदार्थो को देखा है, जागृत–अवस्था मे उनसे विपरीत पदार्थो की प्राप्ति होवे। यह स्वप्न विपरीत फल का दाता होता है। ५ अव्यक्तस्वप्न-स्वप्न मे अस्पष्ट अर्थ को देखना, आलजजाल देखना।

२—अहो भगवन्! क्या स्वप्न सोते हुए को आता है, जागते हुए को आता है या सोते-जागते को आता है? हे गौतम! सोते हुए को स्वप्न नही आता, जागते हुए को स्वप्न नही आता, किंतु सोते-जागते को स्वप्न आता है। स्वप्नावस्था मे इन्द्रिया सोई हुई होती है और मन जागता रहता है। उस समय नीद गहरी न होने से मन घूमता रहता है।

३ –अहो भगवन्! क्या जीव*सोते है, जागते है

---

*सोना और जागना द्रव्य और भाव की अपेक्षा दो प्रकार का कहा गया है। नीद लेना द्रव्य से सोना है और विरति (त्याग पच्चक्खाण) रहितपना भाव से सोना है। स्वप्न सम्बन्धी प्रश्न द्रव्य निद्रा की अपेक्षा से किया गया है। अब यह प्रश्न विरति की अपेक्षा से है। जो जीव सर्वविरतिपणा से रहित है, वे भाव से सोते हुए है। जो जीव सर्व विरति वाले है वे भाव से जागते है और जो जीव देशविरति वाले है वे सोते जागते है।

या सोते-जागते हैं ? हे गौतम ! जीव सोते भी है, जागते भी हैं और सोते जागते भी हैं ।

४—अहो भगवन् ! नारकी के नैरयिक क्या सोते है या जागने हैं या सोते-जागते है ? हे गौतम ! नारकी के नैरयिक सोते हैं किन्तु जागते नही, सोते-जागते नही । इसी तरह २१ दण्डक कह देना । तिर्यञ्चपचेंद्रिय मे भागा होते है २, सोते, सोते-जागते । मनुष्य मे भागे होते है तीनो ही (सोते, जागते, सोते-जागते) ।

५—अहो भगवन् ! क्या स्वप्न सवुडा (सवृत) को आता है या असवुडा को आता है या सवुडा-असवुडा को आता है ? हे गौतम ! स्वप्न सवुडा को भी आता है, असवुडा को भी आता है और सवुडा-असवुडा को भी आता है ।

६—अहो भगवन् ! स्वप्न सवुडा को, असवुडा को और सवुडा-असवुडा को आता है तो क्या यथातथ्यस्वप्न आता है या अयथातथ्यस्वप्न आता है ? हे गौतम ! सवुडा को स्वप्न आता है तो यथातथ्य आता है और असवुडा तथा सवुडा-असवुडा को स्वप्न आता है तो दोनो ही तरह का आता है । यथातथ्य भी आता है और अयथातथ्य भी आता है ।

७—अहो भगवन् ! क्या जीव सवुडा है या असवुडा है या सवुडा-असवुडा है ? हे गौतम ! जीव सवुडा भी है, असवुडा भी है और सवुडा-असवुडा भी है । मनुष्य मे मे भागा मिलते है तीनो ही (सवुडा, असवुडा सवुडा-

असवुडा) । तिर्यञ्च मे पचेन्द्रिय के भागा मिलते है दो (असवुडा, सवुडा-असवुडा) । शेष २२ दण्डक मे भागा मिलता है १ (असवुडा) ।

८—अहो भगवन् ! स्वप्न कितने प्रकार के है ? हे गौतम ! स्वप्न ७२ प्रकार के है । इनमे ४२ सामान्य स्वप्न है, जो सामान्य फल के देने वाले है और ३० महास्वप्न है, जो महाफल के देने वाले है ।

जब तीर्थङ्कर महाराज का जीव गर्भ मे आता है तब तीर्थंकर महाराज की माता इन ३० महास्वप्नो मे से ये १४ महास्वप्न देख कर जागृत होती है १ गज-हाथी, २-वृपभ-बैल, ३ सिंह, ४ लक्ष्मी-देवता, ५ फूलो की माला, ६ चन्द्रमा, ७ सूर्य, ८ महेन्द्रध्वजा, ९ कुम्भ-कलश, १० पद्म-सरोवर, ११ क्षीर-समुद्र, १२ॐ भवन या विमान, १३ रत्न-राशि, १४ अग्निशिखा ।

तीर्थंकर भगवान् की माता इन चौदह स्वप्नो को देखती है । इनका फल यह है—१ पहले स्वप्न मे गज (हाथी) को अपने मुख मे प्रवेश करता हुआ देखती है । इसका फल यह है कि जिस तरह हाथी सग्राम मे शत्रुसेना

ॐ जब तीर्थंकर महाराज का जीव अथवा चक्रवर्ती का जीव नरक से निकल कर आता है तो उनकी माता 'भवन' देखती है और जब देवलोक से आता है तो विमान देखती है ।

को नष्ट करता है, उसी तरह तीर्थकर भगवान् कर्म रूपी शत्रुओ को नष्ट करते है ।

२—दूसरे स्वप्न मे वृषभ (बैल) को अपने मुख मे प्रवेश करता हुआ देखती है। इसका फल यह है कि जिस प्रकार बैल भार वहन करता है उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान् सयम रूपी भार वहन करते है ।

३—तीसरे स्वप्न मे सिंह को मुख मे प्रवेश करता हुआ देखती है । इसका फल यह है कि जिस प्रकार सिंह से डरकर हाथी आदि प्राणी भाग जाते है, उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान् मे पाखण्डी भाग जाते है ।

४—चौथे स्वप्न से लक्ष्मी को अपने घर गीत गाती हुई देखती है । इसका फल यह है कि तीर्थंकर भगवान् केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी सहित होते है ।

५—पाचवे स्वप्न मे फूलो को माला देखती है । इसका फल यह है कि जिस प्रकार फूलो की माला की सुगन्ध दसो दिशाओ मे फैलती है, उसी तरह तीर्थंकर भगवान् का यश दसो दिशाओ मे फैलता है ।

६—छठे स्वप्न मे चन्द्रमा को मुख मे प्रवेश करता हुआ देखती है । इसका फल यह है कि जिस प्रकार चन्द्रमा आखो को आनन्द उपजाने वाला होता है, उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान् भव्य जीवो को आनन्द उपजाने वाले होते हैं ।

७—सातवे स्वप्न मे सूर्य को मुख मे प्रवेश करता

हुआ देखती है। इसका फल यह है कि जिस प्रकार सूर्य अपने तेज से दीप्तिमान् होता है, उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान् अपने तपतेज से दीप्तिमान् होते है।

८—आठवे स्वप्न मे चिन्ह सहित महेन्द्रध्वजा देखती है। इसका फल यह है कि तीर्थंकर भगवान् के ऊपर तीन छत्र होते है।

९—नवमे स्वप्न मे कुम्भ-कलश पूर्ण भरा हुआ देखती है। इसका फल यह है कि तीर्थंकर भगवान् गुणो से परिपूर्ण होते है।

१०—दसवे स्वप्न मे पद्मसरोवर देखती है। इसका फल यह है कि जिस प्रकार पद्मसरोवर को पक्षी आदि सेवते है, उसी प्रकार देवता आदि तीर्थंकर भगवान् की सेवा करते है।

११—ग्यारहवे स्वप्न मे क्षीरसमुद्र को देखती है। इसका फल यह है कि जिस प्रकार समुद्र गम्भीर होता है उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान् गम्भीर होते है।

१२—बारहवे स्वप्न मे भवन या विमान को अपने चारो तरफ प्रदक्षिणा देता हुआ देखती है। इसका फल यह है कि तीर्थंकर भगवान् बहुत से देवी-देवताओ के पूज-नीय होते है।

१३—तेरहवे स्वप्न मे रत्नो की राशि देखती है। इसका फल यह है कि तीर्थंकर भगवान् ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप रत्नत्रय से युक्त होते है।

१४—चौदहवे स्वप्न मे अग्निशिखा देखती है। इसका फल यह है कि जिस प्रकार अग्नि तेज सहित होती है, उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान् तप—तेज सहित होते हैं।

जब चक्रवर्ती का जीव गर्भ मे आता है, तब चक्रवर्ती की माता भी इन १४ महास्वप्नो को देखती है। किन्तु कुछ अस्पष्ट देखती है।

जब वासुदेव का जीव गर्भ मे आता है, तब वासुदेव की माता इन १४ महास्वप्नो में से ७ स्वप्न देखती है। जब बलदेव का जीव गर्भ मे आता है तब बलदेव की माता इन १४ महास्वप्नो मे से ४ स्वप्न देखती है। जब माडलिक राजा का जीव गर्भ मे आता है तब माडलिक राजा की माता इन १४ महास्वप्नो मे से कोई एक स्वप्न देखती है। इसी तरह भावितात्मा अनगार की माता भी इन १४ महास्वप्नो मे से कोई एक स्वप्न देखती है।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी छद्मस्थ अवस्था की*

---

*श्री भगवतीसूत्र के मूलपाठ मे यह शब्द है—'अन्तिम राइयसि'। इस शब्द का अर्थ किन्ही प्रतियो मे इस प्रकार किया है कि छद्मस्थ अवस्था की अन्तिम रात्रि मे ये स्वप्न देखे थे अर्थात् जिस रात्रि मे ये स्वप्न देखे थे उसके वाद उसी दिन भगवान् महावीर स्वामी को केवलज्ञान हो गया था। किन्ही प्रतियो मे यह अर्थ किया है कि—'अन्तिम राइयसि' अर्थात् रात्रि के अन्तिम भाग मे यानी

अन्तिम रात्रि के पिछले पहर मे ये दस स्वप्न देखकर जागृत हुए—

१—पहले स्वप्न मे भगवान् ने देखा कि एक भयङ्कर अति विशाल शरीर वाले और तेजस्वी रूप वाले तथा ताड वृक्ष के समान लम्बे पिशाच को पराजित किया। इसका यह फल हुआ कि भगवान् महावीर स्वामी ने मोहनीयकर्म को समूल नष्ट किया।

२—दूसरे स्वप्न मे सफेद पखवाले पुंस्कोकिल (पुरुष जाति के कोयल) को देखा। इसका यह फल हुआ कि भगवान् महावीर स्वामी ने शीघ्र ही शुक्लध्यान को प्राप्त किया।

३—तीसरे स्वप्न मे भगवान् ने विचित्र रगो के पख वाली कोयल को देखा। इसका यह फल हुआ कि भगवान् ने विचित्र (विविध विचार युक्त), स्वसिद्धात को बतलाने वाली द्वादशागी वाणी प्ररूपी।

४- चौथे स्वप्न मे सर्वरत्नमय+माला युगल (दो

पिछले पहर मे। यहा पर किसी रात्रि विशेष का निर्देश नही किया गया है। इससे यह स्पष्ट नही होता कि स्वप्न देखने के कितने समय बाद भगवान् को केवलज्ञान हुआ था। (तत्त्व केवलीगम्य)

+दोनो मालाए एक समान यानी छोटी बडी नही देखने का यह कारण है कि साधु और श्रावक दोनो का सम्यक्त्व रत्न एक माफिक है।

मालाओ) को देखा । इसका यह फल हुआ कि भगवान् महावीर स्वामी ने केवलज्ञानी होकर आगारधर्म (श्रावक-धर्म) और अनगारधर्म (साधुधर्म), यह दो प्रकार का धर्म फरमाया ।

५—पाचवें स्वप्न मे भगवान् ने सफेद गायो के एक विशाल झुण्ड को देखा । इसका यह फल हुआ कि भगवान् ने केवलज्ञानी होकर साधु-साध्वी—श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध सघ की स्थापना की ।

६—छठे स्वप्न मे भगवान् ने चारो तरफ से खिले हुए फूलो वाले एक विशाल पद्मसरोवर को देखा । इसका फल यह हुआ कि भगवान् ने वाणव्यन्तरभ, भवनपति ज्योतिषी, वैमानिक, इन चार प्रकार के देवो को प्रतिबोध दिया ।

७—सातवे स्वप्न मे भगवान् ने अगाध समुद्र को अपनी भुजाओ से तैर कर पार पहुचे देखा । इसका यह फल हुआ कि भगवान् अनादि—अनन्त ससारसमुद्र को पार कर मोक्ष को प्राप्त हुए ।

८—आठवे स्वप्न मे अति तेज युक्त सूर्य को देखा । इसका यह फल हुआ कि भगवान् को अनन्त अनुत्तर (प्रधान) निरावरण (आवरणरहित) समग्र और प्रतिपूर्ण केवलज्ञान, केवलदर्शन की प्राप्ति हुई ।

९—नवमे स्वप्न मे भगवान् ने मानुपोत्तरपर्वत को नील वैडूर्य्यमणि के समान अपनी आतो मे चारो तरफ से

आवेष्टित-परिवेष्टित (घिरा हुआ) देखा । इसका फल यह हुआ कि तीनो लोको मे भगवान् की यश कीर्ति हुई ।

१०—दसवें स्वप्न में भगवान् ने अपने आपको मेरु-पर्वत की चूलिका पर श्रेष्ठ सिहासन पर बैठे हुए देखा । इसका यह फल हुआ कि भगवान् महावीर स्वामी ने केवल-ज्ञानी होकर बारह प्रकार की परिषदा मे बैठकर धर्मोदेश फरमाया ।

—❀—
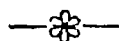
१७. चौदह स्वप्नों का फल

(भगवतीसूत्र, शतक सोलहवां, उद्देशा छठा)

१—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त मे हाथी, घोडे यावत् बैल आदि की पक्ति को देखे, उसके ऊपर चढे या अपने आपको उस पर चढा हुआ माने, ऐसा देख-कर तुरन्त जागृत होवे तो ऐसा समझना चाहिए कि वह व्यक्ति उसी भव मे मोक्ष जायगा यावत् सर्व दु खो का अन्त करेगा ।

२—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त मे एक रस्सी को, जो समुद्र के पूर्व—पश्चिम तक लम्बी हो, अपने हाथो से समेटता हुआ (इकट्ठी करता हुआ) देखे तो समझना चाहिए कि वह व्यक्ति उसी भव मे मोक्ष जायगा ।

३—किसी स्त्री या पुरुष को ऐसा स्वप्न आवे कि लोकात तक पूर्व-पश्चिम लम्बी रस्सी को उसने काट

डाला है तो समझना चाहिए कि वह उसी भव मे मोक्ष जायगा ।

४—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न मे ऐसा देखे कि पाच रगो वाले उलझे हुए सूत को उसने सुलझा दिया है तो समझना चाहिए कि वह उसी भव मे मोक्ष जाएगा ।

५—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न मे लोहा, ताम्बा, कथीर और सीसे की राशि (ढेर) को देखे और वह उस ढेर के ऊपर चढ जाय तो समझना चाहिए कि वह दूसरे भव मे मोक्ष जायगा ।

६—कोई स्त्री या पुरुष सोना, चादी, रत्न और वज्र (हीरो) की राशि को देखे और वह उस ढेर के ऊपर चढ जाय तो समझना चाहिए कि वह उसी भव मे मोक्ष जायगा ।

७—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न से वहुत वडे घास के ढेर को या कचरे के ढेर को विखेर कर फेक दे, ऐसा देखे तो समझना चाहिए कि वह उसी भव मे मोक्ष जायगा ।

८—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न मे शरस्तम्भ, वीरण-स्तम्भ, वशीमूलस्तम्भ या वल्लिमूलस्तम्भ को देखे और उनको जड से उखाड कर फेंक देवे तो समझना चाहिए कि वह उसी भव मे मोक्ष जायगा ।

९—कोई स्त्री या पुरुप स्वप्न मे दूध के घडे, दही के घडे, घी के घडे तथा मधु के घडे को देखे और उन्हे

उठा ले तो समझना चाहिए कि वह उसी भव मे मोक्ष जायगा ।

१०—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न मे मदिरा के घडे सौवीर (मदिरा विशेष) के घडे, तेल के घडे और वसा (चर्बी) के घडे देखे और उन्हे फोड डाले तो समझना चाहिए कि वह दूसरे भव मे मोक्ष जायगा ।

११—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न मे चारो तरफ से फूलो से सुशोभित पद्मसरोवर को देखे और उसमे प्रवेश करे तो समझना चाहिए कि वह उसी भव मे मोक्ष जायगा ।

१२—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न मे अनेक तरगो से युक्त एक बडे समुद्र को देखे और उसे तैर कर उसके पार पहुच जाय तो समझना चाहिए कि वह उसी भव मे मोक्ष जायगा ।

१३—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न मे श्रेष्ठ रत्नो से बने हुए भवन को देखे और उसमे प्रवेश करे तो समझना चाहिए कि वह उसी भव मे मोक्ष जायगा ।

१४—कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न मे श्रेष्ठ रत्नो से बने हुए विमान को देखे और उसके ऊपर चढ जाय तो समझना चाहिए कि वह उसी भव मे मोक्ष जायगा ।

१८. छियानवै बोल का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक सत्रहवा, उद्देशा दूसरा)

१—अहो भगवन् ! क्या सयत, विरत (प्राणातिपात आदि मे निवृत्त) और जिसने पापकर्म का पच्चक्खाण कर दिया है, ऐसा जीव धर्म (चारित्रधर्म) मे स्थित है और असयत, अविरत एव पापकर्म का पच्चक्खाण न करने वाला जीव अधर्म (अविरति) मे स्थित है तथा सयतासयत जीव धर्माधर्म (देशविरति) मे स्थित है ? हा गौतम ! सयत, विरत जीव धर्म मे, असयत अविरत जीव अधर्म मे और सयतासयत जीव धर्माधर्म मे स्थित है। अहो भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से फरमाते हैं ? हे गौतम ! सयत, विरत और जिसने पाप कर्म का पच्चक्खाण कर दिया है, ऐसा जीव धर्म मे स्थित होता है अर्थात् वह धर्म को स्वीकार कर प्रवृत्ति करता है इसलिए वह धर्म मे स्थित है। असयत अविरत और पापकर्म का पच्चक्खाण न करने वाला जीव अधर्म को आश्रय (स्वीकार) कर प्रवृत्ति करता है। इसलिए वह अधर्म मे स्थित होता है। सयतासयत जीव धर्माधर्म (देशविरति) का आश्रय कर प्रवृत्ति करता है, इसलिए वह धर्माधर्म मे स्थित होता है।

२—अहो भगवन् ! क्या कोई जीव धर्म मे, अधर्म मे और धर्माधर्म मे बैठ सकता है यावत् सो सकता है ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे—कोई भी जीव धर्म मे, अधर्म मे और धर्माधर्म मे बैठने यावत् सोने मे समर्थ नही है।

३—समुच्चय जीव और मनुष्य मे भागा मिलते है ३–धर्म, अधर्म और धर्माधर्म। तिर्यचपचेन्द्रिय मे भागा मिलते हैं २–अधर्म और धर्माधर्म। बाकी २२ दण्डक मे भागा मिलता है १–अधर्म।

४—अहो भगवन्! अन्यतीर्थिक इस तरह कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते है कि श्रमण पडित है, श्रमणोपासक बालपडित है और जिस जीव के एक भी जीव के वध को अविरति है वह 'एकान्त बाल' है। अहो भगवन्! क्या अन्यतीर्थियो का यह कहना सत्य है? हे गौतम! अन्यतीर्थियो का यह कहना मिथ्या है। मैं इस प्रकार कहता हू यावत् प्ररूपणा करता हू कि श्रमण 'पण्डित' है, श्रमणोपासक 'बालपण्डित' है और जिस जीव ने एक भी जीव के वध की विरति की है, वह 'एकान्तबाल' नही किन्तु 'बालपण्डित' है❀।

५—समुच्चय जीव और मनुष्य मे भागा मिलते है ३–बाल, पडित, बालपण्डित। तिर्यचपचेन्द्रिय मे भागा मिलते हैं २–बाल, बालपण्डित। बाकी २२ दण्डक मे भागा मिलता है १–बाल।

❀ जिस जीव ने एक जीव के वध का भी त्याग किया है वह 'एकान्तबाल' नही कहलाता, क्योकि उसमे 'देशविरति' है। इसलिए वह 'एकान्तबाल' नही किन्तु 'बालपण्डित' कहलाता है।

हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि × प्राणातिपात यावत् मिथ्या-दर्शनशल्य इन अठारह पापस्थानो मे प्रवृत्ति करता हुआ जीव अन्य है और जीवात्मा अन्य है। इसी तरह अठारह पाप से निवृत्ति करता हुआ जीव अन्य है और जीवात्मा अन्य है। इसी प्रकार❀ ४ बुद्धि, ४ मतिज्ञान के भेद, ५

× 'प्राणातिपात आदि मे प्रवर्तमान जीव अर्थात् प्रकृति और जीवात्मा (पुरुष) 'ये दोनो परस्पर भिन्न हैं' यह साख्यदर्शन का मत है। साख्य प्रकृति को कर्त्ता और पुरुष को अकर्त्ता और भोक्ता मानते हैं।

उपनिषद जीव (अन्त करणविशिष्ट चैतन्य) को कर्त्ता और जीवात्मा अर्थात् ब्रह्म को अकर्त्ता मानते हैं। उनके मतानुसार जीव और ब्रह्म का औपधिक भेद है।

यहा पर ये दोनो मत अन्यतीर्थिकरूप से ग्रहण किये गये है।

❀ बुद्धि चार—उत्पातिया (औत्पात्तिकी), विणीया (वैनयिकी), कम्मिया (कार्मिकी), परिणामिया (पारिणामिकी)।

मतिज्ञान के ४ भेद—अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा।

उत्थानादि ५—उत्थान, कर्म, वल, वीर्य, पुरुपकारपराक्रम।

गति ४—नरकगति, तिर्यचगति, मनुष्यगति, देवगति।

कर्म ८—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय।

उत्थानादि, ४ गति, ८ कर्म, ६ लेश्या, ३ दृष्टि, १२ उपयोग, ४ सज्ञा, ५ शरीर, ३ योग, २ उपयोग, इन ९६ बोल मे प्रवृत्ति करता हुआ जीव अन्य है और उसका जीवात्मा अन्य है । अहो भगवन् ! क्या अन्यतीर्थियो का यह कहना सत्य है ? हे गौतम ! अन्यतीर्थियो का यह कहना मिथ्या है । मैं इस तरह कहता हू यावत् प्ररूपणा करता हू कि प्राणातिपातादि अठारह पापो मे प्रवृत्ति करता हुआ तथा १८ पापो से निवृत्ति करता हुआ जीव तथा बुद्धि आदि उपर्युक्त ६० बोलो मे (१८+१८+६०=९६ बोलो मे) प्रवृत्ति करता हुआ जीव भी वही है और जीवात्मा भी वही है ।

८—अहो भगवन् ! क्या कोई महा ऋद्धि यावत् महा सुख वाला देव पहले रूपी होकर (मूर्तस्वरूप धारण करके) पीछे अरूपी रूप (अमूर्तरूप) वैक्रिय करने में समर्थ

लेश्या ६—कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म, शुक्ल ।
दृष्टि ३—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि ।
उपयोग १२—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, केवलज्ञान, मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, विभगज्ञान ।
सज्ञा ४—आहारसज्ञा, भयसज्ञा, मैथुनसज्ञा, परिग्रहसज्ञा ।
शरीर ५—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण ।
योग ३—मनयोग, वचनयोग, काययोग ।
उपयोग २—साकारोपयोग, अनाकारोपयोग ।

है ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! जो जीव रूप, कर्म, राग, वेद, मोह, लेश्या, शरीरवाला है, वही वर्णादि २० बोल (५ वर्ण, २ गन्ध, ५ रस, ८ स्पर्श=२०) धारण करता है ।

९—अहो भगवन् ! क्या वही जीव पहले अरूपी होकर पीछे रूपी आकार वाला वैक्रिय कर सकता है ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! उस जीव के रूप नही है, कर्म नही है, राग नही है, वेद नही है, मोह नही है, लेश्या नही है, जिसने शरीर छोड दिया है उसके वर्णादि २० वोल भी नही है । वह जीव वैक्रिय नही कर सकता है ।

—❀—
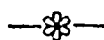
१९. अट्ठाईस बोलों की योगो की अल्पा बहुत्व

(भगवतीसूत्र, शतक पच्चीसवा, उद्देशा पहला)

१—अहो भगवन् ! समारी जीव कितने प्रकार के है ? हे गौतम ! समारी जीव १४ प्रकार के है—१ अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, २ पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, ३ अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय, ४ पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय, ५ अपर्याप्त बेइन्द्रिय, ६ पर्याप्त द्वीन्द्रिय, ७ अपर्याप्त त्रीन्द्रिय, ८ पर्याप्त त्रीन्द्रिय, ९ अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय, १० पर्याप्त चतुरिन्द्रिय ११ अपर्याप्त असज्ञी पञ्चेन्द्रिय, १२ पर्याप्त असज्ञी पञ्चे-

न्द्रिय, १३ अपर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय, १४ पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय ।

२—अहो भगवन् ! इन चौदह प्रकार के जीवो मे जघन्य उत्कृष्ट योग की अपेक्षा से कौन किससे कम, ज्यादा (अल्पबहुत्व) है ?

१—हे गौतम! ⊛सबसे थोडा अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय का जघन्य योग ।

२—उससे अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय का जघन्य योग असख्यातगुणा ।

⊛आत्म प्रदेशो के परिस्पन्दन (कम्पन) को योग कहते है । वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम की विचित्रता से योग अनेक प्रकार का होता है । किसी एक जीव मे दूसरे जीव की अपेक्षा से अल्प योग होता है, और किसी दूसरे जीव की अपेक्षा से उत्कृष्ट योग होता है । जीव के चौदह भेदो की अपेक्षा से प्रत्येक मे जघन्य योग और उत्कृष्ट योग की गिनती करने से योग के २८ भेद होते है ।

सूक्ष्म अपर्याप्त एकेन्द्रिय का जघन्य योग सबसे अल्प होता है, क्योकि उसका शरीर सूक्ष्म होने से और अपर्याप्त होने से अपूर्ण है, इसलिये उसका योग सबसे अल्प है । उसके यह अल्पयोग कार्मणशरीर के द्वारा औदारिक पुद्गलो के ग्रहण करने के प्रथम समय मे होता है । इसके बाद समय-समय उसके योग की वृद्धि होती है, जो कि उत्कृष्ट योग तक बढती जाती है ।

३—उससे अपर्याप्त द्वीन्द्रिय का जघन्य योग असख्यातगुणा।

४—उससे अपर्याप्त त्रीन्द्रिय का जघन्य योग असख्यातगुणा।

५—उससे अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय का जघन्य योग असख्यात गुणा।

६—उससे अपर्याप्त असञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय का जघन्य योग असख्यातगुणा।

७—उससे अपर्याप्त सञ्ज्ञी पञ्चेचेन्द्रिय का जघन्य योग असख्यातगुणा।

८—उससे पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय का जघन्य योग असख्यातपुणा।

९—उससे पर्याप्त वादर एकेन्द्रिय का जघन्य योग असख्यातगुणा।

१०—उससे अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असख्यात गुणा।

११—उससे अपर्याप्त वादर एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असख्यातगुणा।

१२—उससे पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असख्यातगुणा।

१३—उससे पर्याप्त वादर एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असख्यातगुणा।

१४—उससे पर्याप्त द्वीन्द्रिय का जघन्य योग असं-ख्यातगुणा ।

१५—उससे पर्याप्त त्रीन्द्रिय का जघन्य योग अस-ख्यातगुणा ।

१६—उससे पर्याप्त चतुरिन्द्रिय का जघन्य योग अस, ख्यातगुणा ।

१७—उससे पर्याप्त असज्ञी पञ्चेन्द्रिय का जघन्य योग असख्यातगुणा ।

१८—उससे पर्याप्त सज्ञी पञ्चेन्द्रिय का जघन्य योग असख्यातगुणा ।

१९—उससे अपर्याप्त द्वीन्द्रिय का उत्कृष्ट योग अस-ख्यातगुणा ।

२०- उससे अपर्याप्त त्रीन्द्रिय का उत्कृष्ट योग अस-ख्यातगुणा ।

२१ - उससे अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असख्यातगुणा ।

२२—उससे अपर्याप्त असज्ञी पञ्चेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असख्यात गुणा ।

२३—उससे अपर्याप्त सज्ञी पञ्चेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असख्यातगुणा ।

२४—उससे पर्याप्त द्वीन्द्रिय का उत्कृष्ट योग अस-ख्यातगुणा ।

२५—उससे पर्याप्त त्रीन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असख्यातगुणा ।

२६—उससे पर्याप्त चतुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असख्यातगुणा ।

२७—उससे पर्याप्त असज्ञी पञ्चेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असख्यातगुणा ।

२८—उससे पर्याप्त सज्ञी पञ्चेन्द्रिय का*उत्कृष्ट योग असख्यातगुणा ।

---

*कम्मपयडी (कर्मप्रकृति) मे इसके ८ भेद वढा करके अल्पवहुत्व किया है–२९ उससे पर्याप्त अनुत्तर विमान के देवता का उत्कृष्ट योग असख्यातगुणा, ३० उससे पर्याप्त ग्रैवेयक के देवता का उत्कृष्ट योग असख्यातगुणा, ३१ उससे पर्याप्त युगलिया तिर्यंच मनुष्य का उत्कृष्ट योग असख्यातगुणा, ३२ उससे पर्याप्त आहारक शरीर का उत्कृष्ट योग असख्यातगुणा, ३३ उससे पर्याप्त वाकी के देवता का उत्कृष्ट योग असख्यातगुणा, ३४ उससे पर्याप्त नारकी के नैरयिको का उत्कृष्ट योग असख्यातगुणा, ३५ उससे पर्याप्त तिर्यंच पञ्चेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असख्यात गुणा, ३६ उससे पर्याप्त मनुष्य का उत्कृष्ट योग असयात-गुणा ।

२०. समयोगी विषमयोगी का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक पच्चीसवा, उद्देशा पहला)

१—अहो भगवन् ! प्रथम समय मे उत्पन्न दो नैरयिक क्या समयोगी होते है या विषमयोगी होते है ? हे गौतम ! वे दोनो सिय (कदाचित्) समयोगी होते है और सिय (कदाचित्) विषमयोगी होते है। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! ×आहारक नैरयिक की अपेक्षा अनाहारक नैरयिक और अनाहारक नैरयिक की अपेक्षा आहारक नैरयिक सिय हीनयोगी (क्षीणयोगी), सिय तुल्ययोगी, सिय अधिकयोगी होता है अर्थात् आहारक नैरयिक की अपेक्षा अनाहारक नैरयिक हीनयोगी होता है। अनाहारक नैरयिक की अपेक्षा आहारक नैरयिक अधिकयोगी

×आहारक नारक की अपेक्षा अनाहारक नारक हीन योग वाला होता क्योंकि जो नारक ऋजुगति मे आकर आहारकपने उत्पन्न होता है वह निरन्तर आहारक होने से पुद्गलो से उपचित (पुष्ट) होता है, इसलिये वह अधिक योग वाला होता है। जो नारक विग्रहगति से अनाहारकपने उत्पन्न होता है, वह अनाहारक होने से पुद्गलो से उपचित नही होता है, इसलिये वह हीन योग वाला होता है। जो नारक समान समय की विग्रहगति से अनाहारकपने उत्पन्न होते है, अथवा ऋजुगति से आकर आहारकपने उत्पन्न होते है, वे दोनो एक दूसरे की अपेक्षा समान योग वाले होते है।

होता है। दो आहारक नैरयिक अथवा दो अनाहारक नैरयिक समयोगी (तुल्ययोग वाले होते है।

जो हीनयोगी होते है, वे असख्यातभागहीन या सख्यातभागहीन, या असख्यातगुणहीन, या सख्यातगुणहीन, इस तरह *चौट्ठाणवडिया होते है। जो अधिकयोगी होते है

---

* प्रथम समय के उत्पन्न दो नैरयिक मे योगो का तारतम्य चौट्ठाणवडिया इस प्रकार समझना चाहिये—

(१) एक जीव एक समय का आहारक मडूकगति मे आया है और दूसरा जीव एक समय का आहारक इलिकागति मे आया है। इन दोनो के योग असख्यातभाग न्यूनाधिक है।

(२) एक जीव एक समय का आहारक मडूकगति से आया है और दूसरा जीव दो समय का आहारक वक्र-गति से आया है। इन दोनो के योग सख्यातभाग न्यूनाधिक है।

(३) एक जीव एक समय का आहारक मडूकगति करके आया है और दूसरा जीव एक समय का अनाहारक एक वक्रगति करके आया है। इन दोनो के योग सख्यातगुण न्यूनाधिक है।

(४) एक जीव एक समय का आहारक मडूकगति से आया है और दूसरा जीव दो समय का अनाहारक दो वक्रगति से आया है। इन दोनो के योग असख्यातगुण न्यूनाधिक है।

वे भी असख्यातभागअधिक या सख्यातभागअधिक या असख्यातगुण–अधिक या सख्यातगुण–अधिक, इस तरह चौट्ठाणवडिया अधिक होते है। इस कारण से नैरयिक सिय समयोगी, सिय विषमयोगी होते है। इसी तरह २४ ही दण्डक मे कह देना चाहिये।

२१. पन्द्रह योगों का अल्पाबहुत्व

(भगवतीसूत्र, शतक पच्चीसवा, उद्देशा पहला)

१—अहो भगवन्! योग कितने प्रकार के है? हे गौतम! योग १५ प्रकार के है—१ सत्यमनयोग, २ असत्यमनयोग, ३ सत्यमृषा (मिश्र) मनयोग, ४ असत्यामृषा (व्यवहार) मनयोग। ५ सत्यवचनयोग, ६ असत्यवचनयोग ७ सत्यमृषा (मिश्र) वचनयोग, ८ असत्यामृषा (व्यवहार) वचनयोग। ९ औदारिककाययोग, १० औदारिकमिश्रकाययोग, ११ वैक्रियकाययोग, १२ वैक्रियमिश्रकाययोग, १३ आहारककाययोग, १४ आहारक-मिश्र काय योग, १५ कार्मण काय योग।

२—अहो भगवन्! इन पन्द्रह योगो मे जघन्य और उत्कृष्ट की अपेक्षा कौन किससे कम, ज्यादा या विशेषाधिक है? हे गौतम!

१–कार्मणशरीर का जघन्य योग सबसे थोडा है,

२–उससे औदारिकमिश्र का जघन्य योग असख्यातगुणा।

३–उससे वैक्रियमिश्र का जघन्ययोग असख्यातगुणा ।

४–उससे औदारिकशरीर का जघन्य योग असख्यात-गुणा ।

५–उससे वैक्रियशरीर का जघन्य योग असख्यात-गुणा ।

६–उससे कार्मणशरीर का उत्कृष्ट योग असख्यात-गुणा ।

७–उससे आहारकमिश्र का जघन्य योग असख्यात-गुणा ।

८–उससे आहारक सिद्ध का जघन्य योग असख्यात-गुणा ।

९–१०–उससे औदारिकमिश्र और वैक्रियमिश्र का उत्कृष्ट योग परस्पर तुल्य असख्यातगुणा ।

११–उससे व्यवहार (असत्यामृषा) मनयोग का जघन्य योग असख्यातगुणा ।

१२–उससे आहारकशरीर का जघन्य योग असख्यात-गुणा ।

१३ से १९–उससे तीन प्रकार के मनयोग और चार प्रकार का वचनयोग, इन सात परस्पर तुल्य का जघन्य योग असख्यातगुणा ।

२०–उससे आहारकशरीर का उत्कृष्ट योग असख्या-तगुणा ।

२१ से ३०–उससे औदारिकशरीर, वैक्रियशरीर,

चार प्रकार के मनयोग और चार प्रकार के वचन योग दस परस्पर तुल्य का उत्कृष्ट योग असख्यातगुणा ।

---

२२. जीव द्रव्य अजीव द्रव्य का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, शतक पच्चीसवा, उद्देशा दूसरा)

१—अहो भगवन् ! द्रव्य कितने प्रकार के है ? हे गौतम ! द्रव्य दो प्रकार के है - जीवद्रव्य और अजीव-द्रव्य ।

२—अहो भगवन् ! अजीवद्रव्य कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! दो प्रकार के है—रूपी अजीवद्रव्य और अरूपी अजीवद्रव्य ।

३—अहो भगवन् ! रूपी अजीवद्रव्य के कितने भेद है ? हे गौतम ! चार भेद हैं–स्कन्ध, देश, प्रदेश, परमाणु-पुद्गल ।

४—अहो भगवन् ! अरूपी अजीव द्रव्य के कितने भेद है ? हे गौतम ! दस भेद है—धर्मास्तिकाय का स्कन्ध, देश और प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का स्कन्ध, देश और प्रदेश आकाशास्तिकाय का स्कन्ध, देश और प्रदेश और दसवा कालद्रव्य ।

५—अहो भगवन् ! क्या रूपी अजीवद्रव्य सख्यात हैं, असख्यात हैं या अनन्त है ? हे गौतम ! सख्यात नही,

असख्यात नही, किन्तु अनन्त है । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! परमाणुपुद्गल अनन्त हैं, दो प्रदेशी स्कन्ध अनन्त हैं यावत् दस प्रदेशी स्कन्ध अनन्त है । सख्यात स्कन्ध अनन्त हैं । असख्यात प्रदेशी स्कन्ध अनन्त हैं, अनन्त प्रदेशी स्कन्ध अनन्त है । इस कारण से रूपी अजीवद्रव्य अनन्त है ।

६—अहो भगवन् ! क्या जीवद्रव्य सख्यात है, असख्यात है या अनन्त हैं ? हे गौतम ! जीवद्रव्य सख्यात नही, असख्यात नही, किन्तु अनन्त है । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! तेईस दण्डक मे जीव असख्यात है और वनस्पतिकाय के जीव तथा सिद्ध भगवान् अनन्त हैं ।

७ अहो भगवन् ! क्या जीवद्रव्य अजीवद्रव्य के काम मे आता है या अजीवद्रव्य जीवद्रव्य के काम मे आता है ? हे गौतम ! अजीवद्रव्य जीवद्रव्य के काम मे आता है किंतु जीवद्रव्य अजीवद्रव्य के काम मे नही आता है*। जीवद्रव्य अजीवद्रव्यो को ग्रहण करके १४ बोलो मे परिणमाता है— ५ शरीर, ५ इन्द्रिय, ३ योग, १ श्वासोच्छ्वास । नारकी और देवता ये १४ दण्डक के जीव १२

---

*जीवद्रव्य सचेतन होने से अजीवद्रव्यो को ग्रहण करके शरीरादि रूप से उनका परिभोग करता है । इसलिये जीव भोक्ता है । अजीवद्रव्य अचेतन होने से ग्राह्य (ग्रहण करने योग्य) है, इसलिये वह जीव का भोग्य है ।

बोलो मे परिणमाते हैं (औदारिक और आहारक ये दो शरीर इनके नही होते हैं) । चार स्थावर के जीव ६ बोलों मे परिणमाते हैं (३ शरीर, १ इन्द्रिय, १ योग, १ श्वासोछ्वास) । वायुकाय के जीव ७ बोलो मे परिणमाते है (वैक्रियशरीर बढा) । द्वीन्द्रिय जीव ८ बोलो मे परिणमाते है (३ शरीर, २ इन्द्रिय, २ योग, १ श्वासोच्छ्वास) । त्रीन्द्रिय जीव ९ बोलो मे (एक इन्द्रिय बढी) और चतुरिन्द्रिय जीव १० बोलो मे (एक इन्द्रिय बढी) परिणमाते है । तिर्यंच पञ्चेन्द्रिय जीव १३ बोलो मे (आहारकशरीर को छोडकर) परिणमाते हैं । मनुष्य १४ बोलो मे परिणमाते है ।

८—अहो भगवन् ! लोक तो असख्यात प्रदेशी हैं । उसमे अनन्त जीव और अनन्त अजीव द्रव्य कैसे समाये हुए है ? हे गौतम ! कूटागारशाला तथा प्रकाश के दृष्टान्त से समाये हुए है ।

९—अहो भगवन् ! लोक के एक आकाशप्रदेश पर कितनी दिशा से आकर पुद्गल इकट्ठे होते है ? हे गौतम! निर्व्याघात (प्रतिबन्ध—रुकावट न हो तो) दशा मे छहो दिशा के पुद्गल आकर इकट्ठे होते है, व्याघात (प्रतिबन्ध-रुकावट) हो तो सिय (कदाचित्) तीन दिशा के, सिय चार दिशा के, सिय पाच दिशा के पुद्गल इकट्ठे होते हैं। इसी तरह उपचय, अपचय तथा छेद (अलग होने) का भी कह देना चाहिए ।

पाच स्थावर को छोड कर १९ दण्डक के जीष

नियमा छह दिशा के पुद्गल लेते हैं, चय, उपचय, अपचय करते हैं, छेदते हैं। समुच्चय जीव और पाच स्थावर के जीव छह बोल (औदारिक, तैजस, कार्मण ये ३ शरीर, स्पर्श-इन्द्रिय, काययोग, श्वासोच्छ्वास) की अपेक्षा सिय तीन चार पाच छह दिशा के पुद्गल लेते है, चय, (इकट्ठा करना) उपचय, (विशेष रूप से इकट्ठा करना) अपचय (घटाना) करते हैं, छेदते है।

इस प्रकार एक आकाश प्रदेश पर पुद्गल आते जाते है। लोकाकाश के असख्यात प्रदेशो मे अनन्त द्रव्य समाये हुए हैं।

△△

२३. स्थित-अस्थित का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक पच्चीसवा, उद्देशा दूसरा)

१—अहो भगवन् ! जीव औदारिकशरीर पणे पुद्-गलो को ग्रहण करता है तो क्या स्थित (ठिया)*पुद्गलो

---

* जितने आकाशप्रदेशो मे जीव रहा हुआ है उतने आकाशप्रदेशो मे रहे हुए पुद्गलो 'स्थित' कहते हैं और उसके बाहर के क्षेत्र मे रहे हुए पुद्गलो को 'अस्थित' कहते हैं। उन पुद्गलो को वहा से खीच कर जीव ग्रहण करता है।

को ग्रहण करता है ? या अस्थित (अठिया) पुद्गलो को ग्रहण करता है ? हे गौतम ! स्थित द्रव्यो को भी ग्रहण करता है और अस्थित द्रव्यो को भी ग्रहण करता है। द्रव्य क्षेत्र काल भाव यावत्‌❀ २८८ बोल निर्व्याघात की अपेक्षा से नियमा ६ दिशा का ग्रहण करता है, व्याघात की अपेक्षा सिय ३ दिशा का सिय ४ दिशा का, सिय ५ दिशा का ग्रहण करता है।

२—अहो भगवन् ! जीव वैक्रियशरीरपणे पुद्गलो को ग्रहण करता है तो क्या स्थित पुद्गलो को ग्रहण करता है या अस्थित पुद्गलो को ग्रहण करता है ? हे गौतम ! स्थित भी ग्रहण करता है और अस्थित भी ग्रहण करता है। द्रव्य क्षेत्र काल भाव यावत्‌❀२८८ बोल नियमा + ६ दिशा का ग्रहण करता है। जिस तरह वैक्रियशरीर का कहा उसी तरह आहारकशरीर के लिये भी कह देना चाहिये।

दूसरे आचार्य ऐसा कहते है कि—जो द्रव्य गति रहित है वे स्थित है और जो द्रव्य गति सहित है वे अस्थित है। (टीका मे)

❀२८८ बोलो का वर्णन पन्नवणासूत्र के थोकडो के तीसरे भाग मे पृष्ठ ६६–६७ पर दिया हुआ है।

+'वैक्रिय शरीर योग्य द्रव्यो को ६ दिशा से ग्रहण करता है' यह जो कहा गया है, इसका अभिप्राय यह है कि उपयोग पूर्वक वैक्रिय शरीर करने वाले पञ्चेन्द्रिय जीव

३—अहो भगवन् ! जीव तैजसशरीरपणे पुद्गल ग्रहण करता है तो क्या स्थित को ग्रहण करता है या अस्थित को ग्रहण करता है ? हे गौतम ! स्थित को ग्रहण करता है किन्तु अस्थित को ग्रहण नही करता है। द्रव्य क्षेत्र काल भाव यावत् २८८ बोल निर्व्याघात की अपेक्षा नियमा ६ दिशा का ग्रहण करता है, व्याघात की अपेक्षा सिय ३ दिशा का, सिय ४ दिशा का, सिय ५ दिशा का ग्रहण करता है।

४—अहो भगवन् ! जीव कार्मणशरीरपणे पुद्गल ग्रहण करता है तो क्या स्थित को ग्रहण करता है या अस्थित को ग्रहण करता है ? हे गौतम ! स्थित को ग्रहण करता है किन्तु अस्थित को ग्रहण नही करता है द्रव्य क्षेत्र

ही होते है। वे त्रस नाडी के मध्यभाग मे होते है, इसलिये ६ दिशा पुद्गल के ग्रहण करते है। यद्यपि वायुकाय के जीवो के वैक्रिय शरीर होने से उनकी अपेक्षा लोकान्त निष्कुट के विषय मे ५ दिशा का पुद्गल ग्रहण करते है, तथापि वे उपयोग पूर्वक वैक्रिय शरीर नही करते है तथा उनका वैक्रिय शरीर अतिशय सहित नही है। इसलिए उनकी यहा विवक्षा नही की गई है। इसलिये ६ दिशा का [illegible] गया है।

काल भाव यावत् २४० बोल* निर्व्याघात की अपेक्षा से नियमा ६ दिशा का ग्रहण करता है, व्याघात की अपेक्षा से सिय तीन दिशा का, सिय चार दिशा का, सिय पाच दिशा का ग्रहण करता है।

५—अहो भगवन् ! जीव श्रोत्रेन्द्रियपणे चक्षुरिन्द्रियपणे घ्राणेन्द्रियपणे रसनेन्द्रियपणे पुद्गल ग्रहण करता है तो क्या स्थित को ग्रहण करता है या अस्थित को ग्रहण करता है ? हे गौतम ! स्थित को भी ग्रहण करता है और अस्थित को भी ग्रहण करता है। द्रव्य क्षेत्र काल भाव यावत् २८८ बोल नियमा ६ दिशा का ग्रहण करता है।

६—अहो भगवन् ! जीव स्पर्शेन्द्रियपणे, काययोगपणे, श्वासोच्छ्वासपणे पुद्गलो को ग्रहण करता है तो क्या स्थित को ग्रहण करता है या अस्थित को ग्रहण करता है? हे गौतम ! स्थित भी ग्रहण करता है अस्थित भी ग्रहण करता है ? यावत् औदारिकशरीर की तरह कह देना चाहिए।

७—अहो भगवन् ! जीव मनयोगपणे, वचनयोगपणे पुद्गल ग्रहण करता है तो क्या स्थित ग्रहण करता है या अस्थित ग्रहण करता है ? हे गौतम ! स्थित को ग्रहण करता है, अस्थित को नही। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव यावत् २४० बोल नियमा ६ दिशा का ग्रहण करता है।

---

*२४० बोलो का वर्णन पन्नवणासूत्र के थोकडो के दूसरे भाग पृष्ठ ३ पर भाषा पद मे दिया हुआ है।

नारकी और देवता के १४ दण्डक मे १२ बोल पाये जाते है औदारिक व आहारक शरीर नही पाये जाते, समुच्चय की तरह छ दिशा का कह देना चाहिए किन्तु व्याघात निर्व्याघात भेद नही कहना चाहिए। चार स्थावर मे छह बोल पाये जाते हैं। वायुकाय मे ७ बोल पाये जाते हैं, समुच्चय की तरह कहना चाहिए। द्वीन्द्रिय मे ८, त्रीन्द्रिय मे ९, चतुरिन्द्रिय मे १०, तिर्यंच पञ्चेन्द्रिय मे १३ और मनुष्य मे १४ बोल पाये जाते है, समुच्चय जीव की तरह कह देना चाहिए किन्तु नियमा ६ दिशा का कहना चाहिए।

---

२४. छह संस्थान का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक पच्चीसवा, उद्देशा तीसरा)

१–अहो भगवन् ! संस्थान (पुद्गलस्कन्ध का आकार) कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! संस्थान छह प्रकार का है—

१–परिमण्डल (गोल–चूड़ी के आकार)।
२–वट्ट–वृत्त (गोल–लड्डू के आकार)।
३–तंस–त्र्यस्र (त्रिकोण–सिंघाड़े के आकार)।
४–चउरंस–चतुरस्र (चतुष्कोण–चौकी के आकार)।
५–आयत (लम्बा–लकड़ी के आकार)।
६–अनित्थंस्थ–(उपरोक्त पांच संस्थानो से भिन्न)।

२–अहो भगवन् ! द्रव्य की अपेक्षा से परिमण्डल-सस्थान क्या सख्यात है या असख्यात है या अनन्त है ? हे गौतम ! सख्यात नही, असख्यात नही किंतु अनन्त है। जिस तरह परिमण्डलसस्थान का कहा, उसी तरह बाकी पाच सस्थान का कह देना चाहिये । जिस तरह द्रव्य की अपेक्षा से कहा, उसी तरह प्रदेश की अपेक्षा से और द्रव्य-प्रदेश समिलित की अपेक्षा से कह देना चाहिए ।

द्रव्य की अपेक्षा से इनकी अल्पबहुत्व ।

१*सबसे थोडा परिमण्डलसस्थान द्रव्य की अपेक्षा ।

२–उससे वट्ट (वृत्त) सस्थान द्रव्य की अपेक्षा सख्यातगुणा है ।

३–उससे चउरस (चतुरस्र) सस्थान द्रव्य की अपेक्षा सख्यात गुणा है ।

---

*यहा सस्थानो की जघन्य अवगाहना का विचार किया गया है । जो सस्थान जिस सस्थान की अपेक्षा बहुप्रदेशावगाही है, वह स्वाभाविक रीति से थोडा है । परिमण्डसस्थान जघन्य से बीस प्रदेशो की अवगाहना वाला होता है । वट्ट (वृत्त) सस्थान जघन्य से पाच प्रदेशावगाही है । चउरस (चतुरस्र) सस्थान चार प्रदेशावगाही, तस (त्र्यस्र) सस्थान तीन प्रदेशावगाही और आयतसस्थान जघन्य से दो प्रदेशावगाही है । इसलिए परिमण्डलसस्थान बहुप्रदेशावगाही होने से सबसे थोडा है । उससे वट्टादि (वृत्त आदि) सस्थान अल्प अल्प प्रदेशावगाही होने से एक दूसरे से संख्यातगुणा अधिक अधिक है ।

४—उससे तस (त्र्यस्र) संस्थान द्रव्य की अपेक्षा सख्यातगुणा है।

५—उससे आयतसंस्थान द्रव्य की अपेक्षा सख्यातगुणा है।

६—उससे अनित्यस्थसंस्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यागुणा है।

जिस तरह द्रव्य की अपेक्षा से अल्पबहुत्व कही, उसी तरह प्रदेश की अपेक्षा से भी कह देनी चाहिए।

द्रव्य-प्रदेश दोनो की सम्मिलित अल्पबहुत्व १—सबसे थोड़ा परिमण्डलसंस्थान द्रव्य की अपेक्षा। २—उससे वृत्तसंस्थान द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणा। ३—उससे चउरससंस्थान द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणा। ४—उससे त्र्यस्रसंस्थान द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणा। ५—उससे आयतसंस्थान द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणा। ६—उससे अनित्यस्थसंस्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणा। ७—उससे परिमण्डलसंस्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा। ८—उससे वृत्तसंस्थान प्रदेश की अपेक्षा संख्यातगुणा। ९—उससे चउरससंस्थान प्रदेश की अपेक्षा संख्यातगुणा। १०—उससे तस (त्र्यस्र) संस्थान प्रदेश की अपेक्षा संख्यातगुणा। ११—उससे आयतसंस्थान प्रदेश की अपेक्षा संख्यातगुणा। १२—उससे अनित्यस्थसंस्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणा है।

इनके कुल ४२ आलापक (६+६+६+६+६+६+६=४२) हैं।

२५. जीवकम्पमान अकम्पमान का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक पच्चीसवां, उद्देशा चौथा)

१—अहो भगवन् ! क्या जीव सकम्प है या निष्कम्प है ? हे गौतम ! जीव सकम्प भी है और निष्कम्प भी है। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम ! जीव के दो भेद है—सिद्ध और ससारी। सिद्ध के दो भेद है—अनन्तरसिद्ध और परम्परासिद्ध। परम्परासिद्ध तो निष्कम्प हैं। अनन्तर सिद्ध सकम्प ❀ है। वे सर्व से (सब अशो से) कम्पते हैं, देश से (कुछ अशो से) से नही कम्पते है।

ससारीजीव के दो भेद है—शैलेशीप्रतिपन्न (शैलेशी-अवस्था को प्राप्त हुए, चौदहवे गुणस्थान वाले जीव) और अशैलेशीप्रतिपन्न (पहले गुणस्थान मे लेकर तेरहवे गुणस्थान

❀ सिद्धत्व प्राप्ति के प्रथम समय मे अनन्तरसिद्ध कहलाते है क्योंकि तब एक समय का भी अन्तर नही होता। जो सिद्धत्व के प्रथम समय मे वर्तमान सिद्ध जीव हैं, उनमे कम्पन है। क्योकि सिद्धि गमन समय और सिद्धत्व प्राप्ति का समय एक ही होने से और सिद्धिगमन समय मे गमनक्रिया के होने से उस समय वे सकम्प होते है। सिद्धत्वप्राप्ति होने के पश्चात् जिन्हे समयादि का अन्तर पड जाता है, वे परम्परासिद्ध कहलाते है और वे निष्कम्प होते है।

तक के जीव)। शैलेशीप्रतिपन्न जीव तो निष्कम्प ❀ होते है और अशैलेशीप्रतिपन्न सकम्प होते है। वे देश से—(कुछ अंशो से) भी कम्पते है और सर्व से (सब अंशो से) भी कम्पते है। × विग्रहगति वाले जीव सर्व से कम्पते हैं, अविग्रहगति वाले जीव देश से कम्पते है। इस तरह २४ ही दण्डक के जीव देश से भी कम्पते हैं और सर्व से भी कम्पते है।

❀ जो मोक्ष जाने के समय पहले शैलेशी को प्राप्त हुए हैं, उनके योग का सर्वथा निरोध होने से वे निष्कम्प हैं।

— इलिकागति मे उत्पत्तिस्थान को जाते हुए जीव देश से सकम्प हैं, क्योंकि उनका पहले के शरीर में रहा हुआ अंश गतिक्रिया रहित होने से निश्चल है।

× विग्रहगति को प्राप्त यानी जो मरकर विग्रहगति द्वारा उत्पत्तिस्थान को जाते है वे गेंद की गति से सर्वात्म रूप से उत्पन्न होते हैं, इसलिये वे सर्वतः सकम्प है। जो जीव विग्रहगति को प्राप्त नहीं हैं, वे ऋजुगतिवाले और अवस्थित ये दो प्रकार के हैं। उनमें से यहाँ केवल अवस्थित ग्रहण किये गये हैं, ऐसा सम्भव है। वे शरीर में रह कर मारणसमुद्घात, कर इलिकागति द्वारा उत्पत्तिक्षेत्र का स्पर्श करते हैं, इसलिए वे देश से सकम्प हैं। अथवा स्वस्थान में रहे हुए जीव हस्तपादादि अवयव चलाने से देश से सकम्प हैं।

२६. लघुदंडक का थोकड़ा

चौबीस दंडक के नाम

1 11 61 16

गाथा—नेरइआ असुराई पुढवाई बेइ दियादओ चेव ।

20 21 22 23 24

पचिदियतिय नरा, वतर जोइसिय वेमाणी ॥१॥

अर्थ —नेरइआ–सात नारकी का एक दण्डक । असु-राई-असुरकुमारादि दस भवनपत्ति का दस दण्डक । पुढ-वाई–पृथ्वीकायादि पाच स्थावर का पाच दण्डक । बेइ दिया-दओ—द्वीन्द्रियादि तीन विकलेन्द्रिय का तीन दण्डक । पचिंदियतियनरा–पचेन्द्रिय तिर्यच का एक दण्डक तथा मनुष्य का एक दण्डक । वतर-व्यन्तरदेववाण-व्यन्तर देव का एक दण्डक । जोइसिस–पाच ज्योतिषी देवता का एक दण्डक । वेमाणी–वैमानिक देवता का एक दण्डक । ये 'चौबीस दण्डक' हुए ।

सग्रहणी गाथाए —

1 2 3 4 5 6

सरीरोगाहणसघयणसठाण कसाय तह य हुति सन्नाओ ।

7 8 9 10 11 12

लेसिंदिय समुग्घाए सन्नी वेए य पज्जत्ती ॥१॥

ये दो सग्रहणी गाथाए जीवाभिगमसूत्र प्रथम प्रतिपत्ति की हैं ।

13 14 15 16 17 18

दिट्ठी दंसण नाणे जोगुवओगे तहा किमाहारे ।

19 20 21 22 23

उववाय ठिई समुग्घाय चवण गइगई चेव ॥२॥

24 25

पाणे जोगं ।

चौवीस दण्डक पर शरीरादि पच्चीस द्वार चलते हैं। उनका स्वरूप कहते हैं—

१ शरीरद्वार

शरीर किसको कहते है ? शीर्ण होने वाला अर्थात् विनाश होने वाला है, इसलिए इसको शरीर कहते हैं। इसके पाच भेद है—१ औदारिक, २ वैक्रिय, ३ आहारक, ४ तैजस, ५ कार्मण ।

१ उदार अर्थात् प्रधान अथवा स्थूल पुद्गलो से बना हुआ शरीर औदारिक कहलाता है ।

तीर्थंकर और गणधरो का शरीर प्रधान पुद्गलो से बनता है और सर्वसाधारण का शरीर स्थूल असार पुद्गलो से बनता है मनुष्य और तिर्यंच को औदारिकशरीर प्राप्त होता है ।

२ जिस शरीर से विविध क्रियाएं होती है, उसे वैक्रिय-शरीर कहते हैं ।

विविध क्रियाए ये है—एक स्वरूप धारण करना,

अनेक स्वरूप धारण करना, छोटा शरीर धारण करना, बड़ा शरीर धारण करना, आकाश मे चलने योग्य शरीर धारण करना, भूमि पर चलने योग्य शरीर धारण करना, दृश्यशरीर धारण करना, अदृश्यशरीर धारण करना, इत्यादि अनेक प्रकार की अवस्थाओ को वैक्रियशरीरधारी जीव कर सकता है ।

वैक्रियशरीर दो प्रकार का है—(१) औपपातिक और (२) लब्धिप्रत्यय ।

देव और नारको का शरीर औपपातिक कहलाता है अर्थात् उनको जन्म से ही वैक्रियशरीर मिलता है । लब्धि-प्रत्यय शरीर तिर्यंच और मनुष्यो को होता है अर्थात् मनुष्य और तिर्यंच तप आदि ज्ञ द्वारा प्राप्त किये हुए शक्ति विशेष से वैक्रियशरीर प्राप्त कर लेते है ।

३ चतुर्दशपूर्वधारी मुनि अन्य (महाविदेह) क्षेत्र मे वर्तमान तीर्थंकर से अपना सन्देह निवारण करने के लिए अथवा उनका ऐश्वर्य देखने के लिए जब उक्त क्षेत्र को जाना चाहते है तब लब्धिविशेष से एक हाथ प्रमाण अति-विशुद्ध स्फटिक के समान निर्मल जो शरीर निकालते है, उस शरीर को आहारकशरीर कहते है ।

४ तेजस्पुद्गलो से बना हुआ शरीर तैजस् कहलाता है, इस शरीर की उष्णता से खाये हुये अन्न का पाचन होता है और कोई-कोई तपस्वी जो क्रोध से तेजोलेश्या के द्वारा औरो को नुकसान पहुचाता है तथा प्रसन्न होकर शीतललेश्या के द्वारा फायदा पहुचाता है सो इसी तेजस्

शरीर के प्रभाव से समझना चाहिए अर्थात् आहार के पाक का हेतु तथा तेजोलेश्या और शीतललेश्या के निगमन का हेतु जो शरीर है, वह तैजस्शरीर कहलाता है।

५ कर्मों का बना हुआ शरीर कार्मणशरीर कहलाता है, अर्थात् जीव के प्रदेशों के साथ लगे हुए आठ प्रकार के कर्मपुद्गलों को कार्मणशरीर कहते हैं। यह कार्मणशरीर सब शरीरों का बीज है, इसी शरीर से जीव अपने मरणदेश को छोड़कर उत्पत्तिस्थान को जाता है।

समस्त संसारी जीवों के तैजस्शरीर और कार्मणशरीर, ये दो शरीर अवश्य होते हैं।

२ अवगाहनाहार

अवगाहना किसको कहते हैं? जीव का शरीर जितने आकाशप्रदेशों को अवगाहे (घेरे), उसको अवगाहना कहते हैं। यह जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट १००० योजन झाझेरी (कुछ अधिक) बेइन्द्रिय की तो जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट १२ बारह योजन झाझेरी।

उत्तरवैक्रियशरीर की अवगाहना जघन्य अ गुल का सख्यातवा भाग, उत्कृष्ट लाख योजन झाझेरी ।

(३) आहारकशरीर की अवगाहना जघन्य मुण्ड हाथ की, उत्कृष्ट एक हाथ की ।

(४-५) तैजस-कार्मरण शरीर की अवगाहना जघन्य अगुल का असख्यातवा भाग, उत्कृष्ट चौदह रज्जु लोकप्रमाण की । केवल समुद्घात की अपेक्षा से अथवा अपने-अपने शरीर के प्रमाण से जानना ।

३ संघयणद्वार

सघयण (संहनन) किसको कहते है । हाडो के बन्धनविशेष को सघयण कहते है । उसके छह भेद है—

१ वज्रऋषभनाराच—जिस सहनन मे वज्र के हाड, वज्र के वेष्टन और वज्र की कीलिया हो, उसे वज्रऋषभ-नाराच कहते है ।

२ ऋषभनाराच—जिस सहनन मे वज्र के हाड और वज्र की कीली हो, उसे ऋषभनाराच कहते है ।

३ नाराच—जिस सहनन मे वेष्टन और कीली सहित हाड हो, उसे नाराच कहते है ।

४ अर्धनाराच—जिस सहनन मे हाडो की सधि अर्ध कीलित हो, उसे अर्धनाराच कहने है ।

५ कीलक (कीलिका)—जिस सहनन मे हाड परस्पर कीलित हो, उसे कीलक कहते है ।

६ सेवार्त्तक (छेवट्ठ)—जिस सहनन मे जुदे २ हाड नसो से बधे हो—परस्पर कीले हुए न हो, उसे सेवार्त्तक (छेवट्ठ) कहते है ।

४ संठाणद्वार

संठाण (संस्थान) किसको कहते है ? नामकर्म के उदय से बनने वाली शरीर की आकृति (शक्ल) को संस्थान कहते है । उसके छह भेद है—

१ समचतुरस्र (समचोरस) ऊपर नीचे तथा बीच मे सम भाग से सुन्दराकार शरीर की शक्ल को समचोरस-संठाण कहते है ।

२ न्यग्रोधपरिमण्डल—वट (वड) के वृक्ष के समान शरीर की शक्ल अर्थात् नाभि से ऊपर का भाग त्रिकाल-क्षणोपेत पूर्ण प्रमाण हो और नाभि से नीचे का भाग हीन हो, उसे न्यग्रोधपरिमण्डलसंठाण कहते है ।

३ सादि (संठाण)—ऊपर वाले लक्षण से बिलकुल विपरीत हो जैसे साप की बाबी, अर्थात् नाभि से नीचे का भाग उत्तम प्रमाण वाला हो और नाभि से ऊपर का भाग हीन हो, उसे सादिसंठाण कहते है ।

उत्तरवैक्रियशरीर की अवगाहना जघन्य अगुल का सख्यातवा भाग, उत्कृष्ट लाख योजन झाझेरी ।

(३) आहारकशरीर की अवगाहना जघन्य मुण्ड हाथ की, उत्कृष्ट एक हाथ की ।

(४-५) तैजस-कार्मण शरीर की अवगाहना जघन्य अगुल का असख्यातवा भाग, उत्कृष्ट चौदह रज्जु लोकप्रमाण की । केवल समुद्घात की अपेक्षा से अथवा अपने-अपने शरीर के प्रमाण से जानना ।

३ संघयणद्वार

सघयण (सहनन) किसको कहते हैं। हाडो के बन्धनविशेष को सघयण कहते है । उसके छह भेद है—

१ वज्रऋषभनाराच—जिस सहनन मे वज्र के हाड, वज्र के वेष्टन और वज्र की कीलिया हो, उसे वज्रऋषभनाराच कहते है ।

२ ऋषभनाराच—जिस सहनन मे वज्र के हाड और वज्र की कीली हो, उसे ऋषभनाराच कहते है ।

३ नाराच—जिस सहनन मे वेष्टन और कीली सहित हाड हो, उसे नाराच कहते है ।

४ अर्धनाराच—जिस सहनन मे हाडो की सधि अर्ध कीलित हो, उसे अर्धनाराच कहते हैं ।

५ कीलक (कीलिका)—जिस सहनन मे हाड परस्पर कीलित हो, उसे कीलक कहते है ।

६ सेवार्त्तक (छेवट्ट)—जिस सहनन मे जुदे २ हाड नसो से वधे हो—परस्पर कीले हुए न हो, उसे सेवार्त्तक (छेवट्ट) कहते है ।

४ संठाणद्वार

सठाण (सस्थान) किसको कहते हैं ? नामकर्म के उदय से वनने वाली शरीर की आकृति (शक्ल)को सस्थान कहते है । उसके छह भेद हैं—

१ समचतुरस्र (समचौरस) ऊपर नीचे तथा वीच मे सम भाग से सुन्दराकार शरीर की शक्ल को समचौरस-सठाण कहते हैं ।

२ न्यग्रोधपरिमण्डल—वट (वड) के वृक्ष के समान शरीर की शक्ल अर्थात् नाभि से ऊपर का भाग त्रिकल-क्षणोपेत पूर्ण प्रमाण हो और नाभि से नीचे का भाग हीन हो, उसे न्यग्रोधपरिमण्डलसठाण कहते है ।

३ सादि (सठाण)—ऊपर वाले लक्षण से विलकुल विपरीत हो, जैसे साप की वावी, अर्थात् नाभि से नीचे का भाग उत्तम प्रमाण वाला हो और नाभि से ऊपर का भाग हीन हो, उसे सादिसठाण कहते हैं ।

४ कुब्जक (कुवडा)—जिस शरीर के हाथ पाव मुख और ग्रीवादिक उत्तम हो और हृदय, पेठ, पीठ अधम(हीन) हो, उसे कुब्जकसठाण कहते हैं ।

५ वामन—वौना (वावना) शरीर हो अर्थात् जिस

शरीर मे हाथ पाव आदि अवयव हीन हो और छाती पेट आदि पूर्ण उत्तम हो, उसे वामनसठाण कहते है ।

६—हुण्डक—जिस शरीर मे सब अङ्गोपाङ्ग किसी खास शक्ल के न हो (खराब हो), उसे हुण्डकसठाण कहते है ।

५ कषायद्वार

कषाय किसको कहते है ? क्रोधादिरूप आत्मा के विभाव परिणामो को कषाय कहते है । इसके चार भेद है—१ क्रोध, २ मान, ३ माया, ४ लोभ ।

६ संज्ञाद्वार

सज्ञा किसको कहते है ? आहारादि की अभिलाषा करने को सज्ञा कहते है, उसके चार भेद है—

१ आहारसज्ञा, २ भयसज्ञा, ३ मैथुनसज्ञा, ४ परिग्रह-सज्ञा ।

७ लेश्याद्वार

लेश्या किसको कहते है ? योग की प्रवृत्ति से उत्पन्न होने वाले आत्मा के शुभाशुभ परिणाम को लेश्या कहते हैं, उसके छह भेद है – १ कृष्णलेश्या, २ नीललेश्या ३ कापोतलेश्या, ४ तेजोलेश्या, ५ पद्मलेश्या ६ शुक्ल-लेश्या ।

८ इन्द्रियद्वार

इन्द्रिय किसको कहते है ? आत्मा के चिह्न को इन्द्रिय कहते है, उसके पाच भेद है—

१ श्रोत्र-इन्द्रिय (कान), २ चक्षु–इन्द्रिय (आख), ३ घ्राण-इन्द्रिय (नाक), ४ रसना-इन्द्रिय (जीभ), ५ स्पर्शन-इन्द्रिय (सपूर्ण शरीरव्यापी त्वचा)।

९ समुद्घातद्वार

समुद्घात किसको कहते है ? मूल शरीर को विना छोडे जीव के प्रदेशो के वाहर निकलने को समुद्घात कहते है, उसके भेद सात है—

१ वेदनीय, २ कषाय, ३ मारणान्तिक, ४ वैक्रिय, ५ तैजस् ६ आहारक, ७ केवली।

१० सन्नी (सञ्ज्ञी) द्वार

सन्नी किसको कहते है ? जिसके मन हो, उसे सञ्ज्ञी और जिसके मन न हो, उसे असञ्ज्ञी कहते है।

११ वेद द्वार

वेद किसको कहते है– नामकर्म के उदय मे होने वाले शरीर के स्त्री, पुरुष, नपु सक रूप चिन्ह को द्रव्यवेद कहते हैं और जीव की विषयभोग की अभिलाषा को भाव-वेद कहते है। उसके तीन भेद है—१ स्त्रीवेद, २ पुरुष-वेद, ३ नपु सकवेद।

१२ पज्जति (पर्याप्ति) द्वार

पर्याप्ति किसको कहते है ? आहारादि के पुद्‌गलो को ग्रहण करने तथा उन्हे आहार शरीरादि रूप परिणमाने की आत्मा की शक्तिविशेष को पर्याप्ति कहते है । इसके छह भेद है १ आहारपर्याप्ति, २ शरीरपर्याप्ति, ३ इन्द्रिय-पर्याप्ति, ४ श्वासोछ्‌वासपर्याप्ति, ५ भाषापर्याप्ति, ६ मन पर्याप्ति ।

१३ दृष्टिद्वार

दृष्टि किसको कहते है ? तत्त्वविचारणा की रुचि को दृष्टि कहते है, इसके तीन भेद है—

१ सम्यग्दृष्टि—दर्शनमोहनीयकर्म का उपशम, क्षय, क्षयोपशम होने पर जो जीवादि तत्त्वो की यथार्थ श्रद्धा उत्पन्न होती है, उसे सश्यग्दृष्टि कहते है ।

२ मिथ्यादृष्टि—दर्शनमोहनीयकर्म के उदय से जो जीवादि तत्त्वो की विपरीत श्रद्धा होती है, उसे मिथ्यादृष्टि कहते है ।

३ सम्यगमिथ्यादृष्टि (मिश्र)—मिश्रमोहनीयकर्म के उदय से जो कुछ सम्यक् और कुछ मिथ्यात्व रूप मिश्रित परिणाम होता है, उसे सम्यग्‌मिथ्यात्व कहते है । गुड मिले हुए दही के खाने से जैसे खटमीठा मिश्ररूप स्वाद आता है, वैसे ही जो सम्यक्त्व और मिथ्यात्व दोनो से मिला हुआ परिणाम होता है, उसे सम्यग्‌मिथ्यादृष्टि कहते है ।

१४ दर्शनद्वार

दर्शन किसे कहते है ? जिसमे महासत्ता (सामान्य) का प्रतिभास (निराकार झलक) हो, उसको दर्शन कहते है । दर्शन के चार भेद है—

१ चक्षुदर्शन—नेत्रजन्य मतिज्ञान से पहिले होने वाले सामान्य प्रतिभास या अवलोकन को चक्षुदर्शन कहते है ।

२ अचक्षुदर्शन - नेत्र के सिवाय दूसरी इन्द्रियो और मन सम्बन्धी मतिज्ञान के पहले होने वाले सामान्य अवलोकन को अचक्षुदर्शन कहते हैं ।

३ अवधिदर्शन—अवधिज्ञान के पहिले होने वाले सामान्य अवलोकन को अवधिदर्शन कहते हैं ।

४ केवलदर्शन—केवलज्ञान के पहले होने वाले सामान्य धर्म के अवलोकन (उपयोग) को केवलदर्शन कहते है ।

१५ नाण (ज्ञान) द्वार

ज्ञान किसको कहते है ? किसी विवक्षित पदार्थ के विशेष धर्म को विषय करने वाले को ज्ञान कहते हैं । उसके दो भेद है --सम्यग्ज्ञान, मिथ्याज्ञान । सम्यग्ज्ञान के पाच भेद है —मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, केवलज्ञान ।

१ मतिज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता से जो ज्ञान हो, उसको मतिज्ञान कहते हैं ।

२ श्रुतज्ञान—मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ से सम्बन्ध लिये

हुए किसी दूसरे पदार्थ के ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते है, जैसे "घट" शब्द सुनने के अनन्तर उत्पन्न हुआ कवु-ग्रीवादि रूप घट का ज्ञान ।

३ अवधिज्ञान—द्रव्य क्षेत्र काल भाव की मर्यादा लिये हुए जो रूपी पदार्थ को स्पष्ट जाने ।

४ मन पर्ययज्ञान—द्रव्य क्षेत्र काल भाव की मर्यादा को लिये हुए जो दूसरे के मन मे रहे हुए रूपी पदार्थ को स्पष्ट जाने ।

५ केवलज्ञान—जो त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थो को हस्ता-मलकवत् स्पष्ट जाने ।

मिथ्याज्ञान के तीन भेद है—१ मतिअज्ञान, २ श्रुतअज्ञान, ३ विभगज्ञाग । ये तीन अज्ञान है ।

१६ योगद्वार

योग किसको कहते है ? मन वचन काया की प्रवृत्ति को योग कहते है, इसके पन्द्रह भेद है—४ मन के, ४ वचन (भाषा) के, ७ काया के । मन के चार भेद इस प्रकार है—१ सत्यमनयोग, २ असत्यमनयोग, ३ मिश्रमनयोग, ४ व्यवहारमनयोग । वचन (भाषा) के चार भेद इस प्रकार है—१ सत्यवचनयोग, २ असत्यवचनयोग, ३ मिश्र-वचनयोग ४ व्यवहारवचनयोग । काया के सात भेद इस प्रकार है—१ औदारिकशरीरकाययोग, २ औदारिकमिश्र-शरीरकाययोग, ३ वैक्रियशरीरकाययोग, ४ वैक्रियमिश्र-शरीरकाययोग, ५ आहारकशरीरकाययोग, ६ आहारकमिश्र-शरीरकाययोग, ७ कार्मणशरीरकाययोग ।

१७ उपयोगद्वार

उपयोग किसको कहते हैं ? ज्ञान, दर्शन की प्रवृत्ति को उपयोग कहते है । उसके वारह भेद है–५ ज्ञानोपयोग, ३ अज्ञानोपयोग, ४ दर्शनोपयोग ।

१८ आहारद्वार

जीव किम प्रकार के पुद्गलो का आहार करता है? २८८ प्रकार के पुद्गलो का आहार करता है ।

जघन्य तीन (ऊची, नीची, तिरछी) दिशाओ से और उत्कृष्ट छह (ऊची, नीची, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण) दिशाओ मे आहार लेता है ।

आहार तीन प्रकार का होता है, १ सचित्त, २ अचित्त और ३ मिश्र ।

प्रकारान्तर मे भी तीन प्रकार का आहार होता है— १ ओज, २ रोम, ३ कवल ।

१९ उववाय (उपपात) द्वार

उपपात किसको कहते है ? जीव पूर्व भव से आकर उपजे, उसे उपपात कहते हैं । उसका प्रमाण–एक समय मे १-२-३ यावत् सख्याता, असख्याता, अनन्ता ।

२० ठिई (स्थिति) द्वार

ठिई (स्थिति) किसको कहते हैं ? जीव जितने

काल तक जिस भव की पर्याय को धारण करे, उसे स्थिति कहते है। उसका प्रमाण जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम।

२१ समोहया-असमोहयाद्वार

समोहया असमोहया मरण किसको कहते है ? समोहयामरण–जो ईलिकागति समुद्घात करके मरे, अर्थात् कीडे की कतार की तरह जीव के प्रदेश अलग-अलग निकले उसे समोहयामरण कहते है। असमोहयामरण–जो गेद (दडी) गति समुद्घात करके मरे अर्थात् बन्दूक की गोली के माफक जीव के प्रदेश एक साथ निकले उसे असमोहयामरण कहते है।

२२ चवण (च्यवण) द्वार

च्यवन किसको कहते है ? जीव वर्त्तमान भव को छोडता हैं उसे च्यवन कहते है, इसका प्रमाण एक समय मे १-२-३ जाव सख्याता, अनन्ता।

२३ गइआगइ (गति-आगति) द्वार

गति–आगति किसको कहते है ? जीव मर कर भवान्तर मे जावे, उसे गति कहते है, इसके पाच भेद है–१ नारकी, २ तिर्यंच, ३ मनुष्य, ४ देवता, ५ सिद्ध गति। आगति–भवान्तर से आकर उत्पन्न होने को आगति कहते है। उसके चार भेद है—१ नारकी, २ तिर्यंच, ३ मनुष्य,

४ देवता । दडक की अपेक्षा २४ दडक का दण्डक मे तथा मोक्ष मे जावे ।

२४ प्राणद्वार

प्राण किसको कहते हैं ? जीवन के आधारभूत पदार्थों को अर्थात् जिनके सद्भाव से जीव किसी शरीर के साथ बधा रहे, उन्हे प्राण कहते है । इसके दस भेद हैं—१ श्रोत्रेन्द्रिय, २ चक्षुरिन्द्रिय, ३ घ्राणेन्द्रिय, ४ जिह्वेन्द्रिय, ५ स्पर्शनेन्द्रिय, ६ मनोबल, ७ वचनबल, ८ कायबल, ९ श्वासोच्छ्वास, १० आयुष्य ।

२५ योगद्वार

योग किसको कहते है ? लक्षण पूर्ववत् । उसके तीन भेद हैं—१ मनयोग, २, वचनयोग, ३ काययोग ।

अब एक दण्डक नारकी का, तेरह दडक देवता के (भवनपति के १० दण्डक, वाणव्यन्तर का १ दण्डक, ज्योतिषी का १ दडक, वैमानिक का १ दडक) इन १४ दडको पर २५ द्वार कहते हैं—

१ शरीर—शरीर तीन—वैक्रिय, तैजस्, कार्मण ।

२ अवगाहना—पहली नारकी से सातवी नारक तक भवधारिणी शरीर की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग । उत्कृष्ट पहली नारकी की ७॥ धनुष, ६ अगुल की होती है ।

दूजी नारकी की १५।। धनुष, १२ अंगुल की,
तीजी " ३१। "
चौथी " ६२।। "
पाचवी " १२५ "
छट्ठी " २५० "
सातवीं " ५०० "

उत्तरवैक्रिय करे तो जघन्य अ गुल के सख्यातवे भाग, उत्कृष्ट अपनी-अपनी अवगाहना से दुगुनी जैसे सातवी नारकी की भवधारिणी शरीर की ५०० धनुष की और उत्तरवैक्रिय करे तो १००० धनुष की। भवनपति, वाण-व्यन्तर, ज्योतिषी तथा पहिले दूजे देवलोक की अवगाहना जघन्य अ गुल के असख्यातवे भाग, उत्कृष्ट ७ हाथ की। तीजे देवलोक की सर्वार्थसिद्धि तक जघन्य अ गुल के अस-ख्यातवे भाग, उत्कृष्ट अलग-अलग। यथा—

तीजे, चौथे देवलोक की ६ हाथ की
पाचवे, छठे " " ५ "
सातवे, आठवे " " ४ "
नववे से बारहवे " " ३ "
नवग्रैवेयक की " " २ "

पाच अनुत्तर विमान मे १ हाथ की

उत्तरवैक्रिय करे तो जघन्य अ गुल के सख्यातवे भाग, उत्कृष्ट बारहवे देवलोक तक लाख योजन की। नवग्रैवेयक के तथा अनुत्तर विमान के देवता विक्रिया नही करते।

३ सघयण—सघयण नही, नारकी मे अशुभ पुद्गल

परिणमे और देवता मे शुभ पुद्गल परिणमे ।

४ सठाण—नारकी मे सठाण एक हुण्डक, देवता मे सठाण एक समचौरस भवधारणीय शरीर की अपेक्षा और उत्तरवैक्रिय शरीर की अपेक्षा सठाण नाना प्रकार का ।

५ कषाय—नारकी देवता के १४ दण्डक मे कषाय चारो ही ।

६ सज्ञा—नारकी और देवता के १४ दण्डको मे सज्ञा चारो ही ।

७ लेश्या—पहिली, दूजी नारकी मे लेश्या एक कापोत । तीसरी नारकी मे लेश्या दो—कापोत और नील । चौथी नारकी मे लेश्या एक—नील । पाचवी नारकी मे लेश्या दो—नील और कृष्ण । छठी नारकी मे लेश्या एक—कृष्ण । सातवी नारकी मे लेश्या एक—महाकृष्ण । दस भवनपति और वाणव्यन्तर देवता मे लेश्या चार पहले की । ज्योतिषी तथा पहिले दूजे देवलोक मे लेश्या एक—तेजो । तीजे चौथे पाचवे देवलोक मे लेश्या एक—पद्म । छठे देवलोक से नवग्रैवेयक तक लेश्या एक—शुक्ल । पाच अनुत्तर विमान मे लेश्या एक—परमशुक्ल ।

८ इन्द्रिय—नारकी और देवता मे इन्द्रिय पाच पाच ।

९ समुद्घात—नारकी मे समुद्घात चार—वेदनीय, कषाय, मारणान्तिक, वैक्रिय । भवनपति मे यावत बारहवे

देवलोक तक समुद्घात पाच अनुक्रम की। नवग्रैवेयक और पाच अनुत्तर विमान मे समुद्घात पाच परन्तु समुद्घात करे तीन वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक।

१० सन्नी – पहिली नारकी, भवनपति, वाणव्यतर मे सन्नी, असन्नी दोनो उपजे। दूजी नारकी से सातवी नारकी तक तथा ज्योतिषी से पाच अनुत्तर विमान तक सन्नी उपजे।

११ वेद—नारकी मे वेद एक—नपुसक। भवनपति, वाणव्यतर, ज्योतिपी पहिले दूजे देवलोक मे वेद दो—स्त्रीवेद, पुरुषवेद। तीसरे देवलोक से सवार्थसिद्ध विमान तक वेद पावे एक–पुरुषवेद।

१२ पज्जत्ति—नारकी मे पर्याप्ति छह और देवता मे पर्याप्ति पाच क्योकि भापा और मन दोनो पर्याप्तिया शामिल बधती है।

१३ दृष्टि—नारकी और भवनपति मे बारहवे देवलोक तक दृष्टि तीनो ही। नवग्रैवेयक मे दृष्टि दो—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि। पाच अनुत्तर विमान मे दृष्टि एक—सम्यग्यदृष्टि।

१४ दर्शन—नारकी और देवता मे दर्शन तीन—चक्षु-दर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन।

१५ नाण—नारकी और देवता मे ज्ञान तीन–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान।

अज्ञाण—नारकी और भवनपति से नवग्रैवेयक तक अज्ञान तीन—मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, विभगज्ञान। पाच अनुत्तर विमान मे अज्ञान नही।

१६ योग—नारकी और देवता मे योग ग्यारह—४ मन का, ४ वचन का, ३ काया का, (वैक्रियशरीरकाययोग, वैक्रियमिश्रशरीरकाययोग और कार्मणशरीरकाययोग)।

१७ उपयोग—नारकी और देवता मे नवग्रैवेयक तक उपयोग नव—३ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ दर्शन। पाच अनुत्तर विमान मे उपयोग छह—तीन ज्ञान और तीन दर्शन।

१८ आहार—नारकी और देवता आहार लेवे २८८ भेद* का। जिसमे दिशि आसरी नियमा छह दिशि का

---

* आहार के २८८ भेद ये है। (१) पुट्ठिया (२) उगाढा (३) अनन्तर्उगाढा (४) सूक्ष्म (५) बादर (६) ऊंची दिशा का (७) नीची दिशा का (८) तिरछी दिशा का (९) आदि का (१०) मध्य का (११) अन्त का (१२) स्वविषयका (१३) अनुक्रम से (१४) नियमात् छहो दिशा का (१५) द्रव्य का (१६) क्षेत्र का। (१७ से २८ तक) काल के १२ भेद। एक समय मे लेवे, दो समय मे लेवे, यावत् दस समय मे लेवे, सख्यात समय मे लेवे, असख्यात समय मे लेवे। (२९ से २८८ तक) भाव के २६० भेद है। पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस, आठ स्पर्श ये २० भेद। इनके प्रत्येक के १३ भेद है। एक गुण

आहार लेवे ।

१९ उववाय—नारकी और भवनपति से लगा कर यावत् आठवे देवलोक तक एक समय मे ज० १-२-३ जाव सख्याता, उ० असख्याता उपजे । नववे देवलोक से लगा-कर यावत् सर्वार्थसिद्ध तक ज० १-२-३ जाव उ० सख्याता उपजे ।

२० स्थिति—समुच्चय नारकी के नैरयिक की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की ।

१ पहिली नारकी के नैरयिक का स्थिति ज० दस हजार वर्ष की, उ० १ सागरोपम की ।

२ दूसरी नारकी के नैरयिक की स्थिति ज० एक सागरोपम की, उ० ३ सागरोपम की ।

३ तीसरी नारकी के नैरयिक की स्थिति ज० ३ सागरोपम की, उ० ७ सागरोपम की ।

४ चौथी नारकी के नैरयिक की स्थिति ज० ७ सागरोपम की, उ० १० सागरोपम की ।

काला, दो गुण काला, यावत् दस गुण काला, असख्यात गुण काला और अनन्त गुण काला । इसी तरह गन्धादि के तेरह भेद करने से २०×१३=२६० हुए, २६०+२८=२८८ ।

५ पाचवी नारकी के नैरयिक की स्थिति ज० १० सागरोपम की, उ० १७ सागरोपम की।

६ छठ्ठी नारकी के नैरयिक की स्थिति ज० १७ सागरोपम की, उ० २२ सागरोपम की।

७ सातवी नारकी के नैरयिक की स्थिति ज० २२ सागरोपम की, उ० ३३ सागरोपम की।

भवनपति देवता की असुरकुमार जाति मे दो इन्द्र हैं चमरेन्द्र और बलीन्द्र

चयरेन्द्रजी के रहने की चमरचचा राजधानी जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से दक्षिणदिशा मे अधोलोक मे है। बलीन्द्रजी के रहने की बलचचा राजधानी जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से उत्तरदिशा मे अधोलोक मे है। चमरेन्द्रजी के भवनवासी देवता की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट एक सागरोपम की और उनकी देवी की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट ३॥ पल्योपम की। बाकी के नव जाति के दक्षिणदिशा के भवनपति देवता की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की उत्कृष्ट १॥ पल्योपम की और उनकी देवी की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट।।। पल्योपम की।

बलीन्द्रजी के भवनवासी देवता की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की है उत्कृष्ट एक सागरोपम झाझेरी, उनकी देवी की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट ४॥ पल्योपम की। बाकी के नव जाति के उत्तर दिशा

वाले भवनपति देवता की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की, उनकी देवी की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट देशोन पल्योपम की ।

वाणव्यंतरदेवता की स्थिति

वाणव्यन्तर देवता की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट १ पल्योपम की, उनकी देवी की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट अर्द्ध पल्योपम की ।

ज्योतिषीदेवता की स्थिति

इनके पांच भेद हैं—१ चन्द्रमा, २ सूर्य, ३ ग्रह, ४ नक्षत्र, ५ तारा । चन्द्रविमानवासी देवता की स्थिति ज० पाव पल्योपम की, उ० १ पल्योपम ग्रौर एक लाख वर्ष की, उनकी देवियो की स्थिति ज० पाव पल्योपम की, उ० आधा पल्योपम और ५० हजार वर्ष की । सूर्य-विमानवासी देवता की स्थिति ज० पाव पल्योपम की, उ० १ पल्योपम और १ हजार वर्ष की, उनकी देवियो की स्थिति ज० पाव पाल्योपम की, उ० आधा पल्योपम ५०० वर्ष की । ग्रहविमानवासी देवता की स्थिति जघन्य पाव पल्सोपम की, उत्कृष्ट एक पल्योपम की । उनकी देवियो की स्थिति ज० पाव पल्योपम की, उ० आधा पल्योपम की । नक्षत्र विमानवासी देवता की स्थिति ज० पाव पल्योपम की, उ० आधा पल्योपम की, इन की देवियो की स्थिति ज० पाव पल्योपम की, उ० पाव पल्योपम झाझेरी । ताराविमानवासी देवता की स्थिति ज० पल्योपम के आठवे

भाग की, उ० पाव पल्योपम की, उनकी देवियो की स्थिति ज० पल्योपम के आठवे भाग की, उ० पल्योपम के आठवे भाग झाझेरी ।

वैमानिकदेवता की स्थिति

१ पहिले देवलोक के देवता की स्थिति ज० १ पल्योपम की, उ० २ सागरोपम की, उनकी देविया दो प्रकार की है—परिगृहीता और अपरिगृहीता । परिगृहीता देवियों की स्थिति ज० १ पल्योपम की, उ० ७ पल्योपम की । अपरिगृहीता देवियों की स्थिति ज० १ पल्योपम की उ० ५० पल्योपम की ।

२ दूसरे देवलोक के देवता की स्थिति ज० १ पल्योपम झाझेरी । उ० २ सागरोपम झाझेरी । उनकी देविया दो प्रकार की है—परिगृहीता और अपरिगृहीता । परिगृहीता देवियो की स्थिति ज० १ पल्योपम झाझेरी उ० ९ पल्योपम की । अपरिगृहीता देवियो की स्थिति ज० पल्योपम झाझेरी, उ० ५५ पल्योपम की ।

३ तीसरे देवलोक के देवता की स्थिति ज० २ सागरोपम की, उत्कृष्ट ७ सागरोपम झाझेरी ।

४ चौथे देवलोक के देवता की स्थिति ज० २ सागरोपम झाझेरी, उत्कृष्ट ७ सागरोपम की ।

५ पाचवें देवलोक के देवता की स्थिति ज० ७ सागरोपम की, उत्कृष्ट १० सागरोपम की ।

६ छठे देवलोक के देवता की स्थिति ज० १० सागरोपम की, उत्कृष्ट १० सागरोपम की ।

७ सातवे देवलोक के देवता की स्थिति ज० १४ सागरोपम की, उत्कृष्ट १७ सागरोपम की ।

८ आठवे देवलोक के देवता की स्थिति ज० १७ सागरोपम की, उत्कृष्ट १८ सागरोपम की ।

९ नववे देवलोक के देवता की स्थिति ज० १८ सागरोपम की, उत्कृष्ट १९ सागरोपम की ।

१० दसवे देवलोक के देवता की स्थिति ज० १९ सागरोपम की, उत्कृष्ट २० सागरोपम की ।

११ ग्यारहवे देवलोक के देवता की स्थिति ज० २० सागरोपम की, उत्कृष्ट २१ सागरोपम की ।

१२ बारहवे देवलोक के देवता की स्थिति ज० २१ सागरोपम की, उत्कृष्ट २२ सागरोपम की ।

१३ पहिले ग्रैवेयक के देवता की स्थिति ज० २२ सागरोपम की, उत्कृष्ट २३ सागरोपम की ।

१४ दूसरे ग्रैवेयक के देवता की स्थिति ज० २३ सागरोपम की, उत्कृष्ट २४ सागरोपम की ।

१५ तीसरे ग्रैवेयक के देवता की स्थिति ज० २४ सागरोपम की, उत्कृष्ट २५ सागरोपम की ।

१६ चौथे ग्रैवेयक के देवता की स्थिति ज० २५ सागरोपम की, उत्कृष्ट २६ सागरोपम की ।

१७ पाचवें ग्रैवेयक के देवता की स्थिति ज० २६ सागरोपम की, उत्कृष्ट २७ सागरोपम की ।

१८ छठे ग्रैवेयक के देवता की स्थिति ज० २७ सागरोपम की, उत्कृष्ट २८ सागरोपम की ।

१९ सातवें ग्रैवेयक के देवता की स्थिति ज० २८ सागरोपम की, उत्कृष्ट २९ सागरोपम की ।

२० आठवें ग्रैवेयक के देवता की स्थिति ज० २९ सागरोपम की, उत्कृष्ट ३० सागरोपम की ।

२१ नववें ग्रैवेयक के देवता की स्थिति ज० ३० सागरोपम की, उत्कृष्ट ३१ सागरोपम की ।

२२ चार अनुत्तर विमान के देवता की स्थिति ज० ३१ सागरोपम की, उ० ३३ सागरोपम की ।

२३ सर्वार्थसिद्ध विमान के देवता की स्थिति अजघन्य—अनुत्कृष्ट ३३ सागरोपम की ।

२१ समोहया असमोहयामरण

नारकी और देवता दोनों प्रकार के मरण से मरते हैं ।

२. मरण—नारकी और भवनपति देवता से लगातार यावत् आठवें देवलोक तक एक समय में ज० १-२-३ यावत् संख्याता उ० असंख्याता मरते । नववें देवलोक से लगाकर यावत् सर्वार्थसिद्ध विमान तक एक समय में ज० १-२-३ उत्कृष्ट संख्याता मरते ।

२३ गइ—पहली नारकी से लगाकार यावत् छठी नारकी तक दो गतियो से आवे और दो गतियो से जावे–तिर्यंचगति और मनुष्यगति । दण्डक की अपेक्षा दो दण्डको से आवे और दो दण्डको मे जावे–तिर्यचपचेन्द्रिय का २० वा और मनुष्य का २१ वा दण्डक ।

सातवी नारकी मे दो गतियो से आवे, तिर्यंच-गति से, मनुष्यगति से, और एक तिर्यंचगति मे जावे । दण्डक की अपेक्षा दो दण्डको का आवे (२०-२१ वा दण्डक), एक तिर्यचपचेन्द्रिय (२० वा दण्डक) मे जावे । भवनपति, वाणव्यतर, ज्योतिपी और पहिले दूजे देवलोक का देवता दो गतियोसे आवे और दो गतियोमे जावे-तिर्यंच गति और मनुष्यगति । दण्डक की अपेक्षा दोय दण्डक का आवे, तिर्यचपचेन्द्रिय का और मनुष्य का और जावे पाच दण्डक मे—पृथ्वीकाय का, अप्पकाय का, वनस्पतिकाय का, तिर्यच–पचेन्द्रिय का और मनुष्य का । तीजे देवलोक से लगाकर यावत् आटवे देवलोक तक गत्यागति पहली नरकवत् । नववे देवलोक से लगाकर यावत् सर्वार्थसिद्ध विमान के देवता एक गति से आवे और एक गति मे जावे–मनुष्य–गति । दण्डक की अपेक्षा एक दण्डक से आवे और एक दण्डक मे जावे, मनुष्य का दण्डक ।

२४ प्राण—नारकी और देवता मे प्राण दस, दस ।

२५ योग—नारकी और देवता मे योग तीनो ही ।

पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य का अधिकार कहते है—

१ शरीर—चार स्थावर—१ पृथ्वीकाय, २ अप्काय, ३ तेउकाउ, ४ वनस्पतिकाय और असन्नी मनुष्य, इन पाचो मे शरीर तीन—औदारिक, तैजस् और कार्मण। वायुकाय मे शरीर चार—औदारिक, वैक्रिय, तैजस् और कार्मण।

२ अवगाहना - पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाउ, वायुकाय और असन्नी मनुष्य इन पाचो की अवगाहना ज० अंगुल के असंख्यातवे भाग, उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवे भाग। किन्तु ज० से उत्कृष्ट असंख्यातगुणी। वनस्पतिकाय की अवगाहना—ज० अंगुल के असंख्यातवे भाग, उत्कृष्ट १००० योजन झाझेरी, कमलादि की अपेक्षा से।

३ संघयण—पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य मे संघयण एक छेवट्ट।

४ संठाण—पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य मे संठाण एक हुंडक।

५ कषाय—पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य मे कषाय चार चार।

६ संज्ञा - पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य मे संज्ञा चार चार।

८ इन्द्रिय—पाच स्थावर मे इन्द्रिय एक—स्पर्शनेन्द्रिय । असन्नी मनुष्य मे इन्द्रिय पाचो ही ।

९ समुद्घात—चार स्थावर–पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वनस्पतिकाय और असन्नी मनुष्य इन पाचो मे समुद्घात तीन तीन । वेदनीयसमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात । वायुकाय मे समुद्घात चार—वेदनीयसमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और वैक्रियसमुद्घात ।

१० सन्नी—पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य असन्नी है, सन्नी नही ।

११ वेद—पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य मे वेद एक—नपु सक ।

१२ पज्जत्ति - पाच स्थावर मे पर्याप्ति चार चार। आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति और श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति । असन्नी मनुष्य मे चारो पर्याप्ति का अपर्याप्ता ।

१३ दृष्टि—पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य मे दृष्टि एक । मिथ्यादृष्टि ।

१४ दर्शन—पाच स्थावर मे दर्शन एक—अचक्षुदर्शन । असन्नी मनुष्य मे दर्शन दो—चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ।

१५ नाण—पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य मे ज्ञान (सम्यग्ज्ञान) नही । अन्नाण—पाच स्थावर और असन्नी

मनुष्य में अज्ञान (मिथ्याज्ञान) दो दो—मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान ।

१६ योग—चार स्थावर—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वनस्पतिकाय और असन्नी मनुष्य इन पांचों में योग तीन तीन । औदारिकशरीरकाययोग, औदारिकमिश्रशरीरकाययोग और कार्मणशरीरकाययोग । वायुकाय में योग पांच । औदारिकशरीरकाययोग, औदारिकमिश्रशरीरकाययोग, वैक्रियशरीरकाययोग, वैक्रियमिश्रशरीरकाययोग और कार्मणशरीरकाययोग ।

१७ उपयोग—पांच स्थावरों में उपयोग तीन तीन—मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन । असन्नी मनुष्य में उपयोग चार—मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान, चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ।

१-२-३ जाव सख्याता, उत्कृष्ट असख्याता उपजे । असन्नी मनुष्य मे ज० १-२-२ यावत् सख्याता उत्कृष्ट असख्याता उपजे ।

२० स्थिति—पृथ्वीकाय की स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त्त की उ० २२००० वर्ष की,

अप्काय	,,	,,	७००० वर्ष की
तेउकाय	,,	,,	तीन अहोरात्रि की
वायुकाय	,,	,,	३००० वर्ष की
वनस्पतिकाय	,,	,,	१०००० वर्ष की
असन्नी मनुष्य की	,,	,,	अन्तर्मुहूर्त्त की

२१ समोहया असमोहया मरण—पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य दोनो प्रकार के मरण मरते है ।

२२ चवण—चार स्थावर मे स्वस्थान की अपेक्षा समय समय असख्याता च्यवे और परस्थान की अपेक्षा ज० १-२-३ यावत् सख्याता उत्कृष्ट असख्याता च्यवे, वनस्पतिकाय मे स्वस्थान की अपेक्षा समय समय अनता च्यवे और परस्थान की अपेक्षा ज० १–२–३ यावत् सख्याता उत्कृष्ट असख्याता च्यवे । असन्नी मनुष्य मे ज० १–२–३ यावत् सख्याता उत्कृष्ट असख्याता च्यवे ।

२३ गइआगइ—पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय मे तो तीन गति का आवे—तिर्यचगति का, मनुष्यगति का और देवगति का और दो गति मे जावे—तिर्यंचगति मे और मनुष्यगति मे । दण्डक की अपेक्षा २३ दण्डक का आवे—१० भवनपति, ५ स्थावर, ३ विकलेन्द्रिय, १

तिर्यंचपचेन्द्रिय, १ मनुष्य, १ वाणव्यन्तर, १ ज्योतिषी, १ वैमानिक का, और दस दण्डक मे जावे—५ स्थावर, ३ विकलेन्द्रिय, १ तिर्यंचपचेन्द्रिय और १ मनुष्य मे। तेउकाय, वायुकाय मे दो गति का आवे। तिर्यंचगति का और मनुष्यगति का और जावे एक तिर्यंचगति मे। दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक से आवे औदारिक की दस दण्डक उपरोक्त। जावे नव दण्डक मे—५ स्थावर ३ विकलेन्द्रिय और १ तिर्यंचपचेन्द्रिय मे और असन्नी मनुष्यगति मे दो गति का आवे। तिर्यंचगति मे और मनुष्यगति मे और दो गति मे जावे—तिर्यंचगति मे और मनुष्यगति मे और दण्डक की अपेक्षा आठ दण्डक का आवे—१, पृथ्वीकाय, १ अप्काय और १ वनस्पतिकाय, ३ विकलेन्द्रिय, तिर्यंचपचेन्द्रिय और मनुष्य का, जावे दस दण्डक मे उपरोक्त औदारिक का।

२८ प्राण—पाच स्थावर मे प्राण चार—स्पर्शनेन्द्रियप्राण, कायबलप्राण, श्वासोच्छ्वासप्राण और आयुष्यप्राण और असन्नी मनुष्य मे प्राण कुछ ऊणा आठ—पाच इन्द्रिय के, कायबलप्राण, श्वासोच्छ्वासप्राण और आयुष्यप्राण।

२९ योग—पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य मे योग एक काय का।

३ तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पचेन्द्रिय का अधिकार कहते हैं—

१ शरीर—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच-

पचेन्द्रिय मे शरीर तीन तीन - औदारिक, तैजस और कार्मण ।

२ अवगाहना—द्वीन्द्रिय की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग, उत्कृष्ट १२ योजन की ।

त्रीन्द्रिय की अवगाहना जघन्य अ गुल के असख्यातवे भाग उत्कृष्ट ३ गाउ (कोस) की ।

चतुरिन्द्रिय की अवगाहना जघन्य अ गुल के असख्या-तवें भाग उत्कृष्ट ४ गाउ की ।

असन्नी तिर्यंच पचेन्द्रिय के पाच भेद—

जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरि-सर्प । जलचर की अवगाहना जघन्य अ गुल के असख्यातवे भाग, उत्कृष्ट १००० योजन की ।

स्थलचर की अवगाहना जघन्य अ गुल के असख्यातवे भाग उत्कृष्ट प्रत्येक (पृथक्त्व) गाउ की । खेचर की अवगाहना जघन्य अ गुल के असख्यातवे भाग उत्कृष्ट प्रत्येक (पृथक्त्व) धनुष की । उरपरिसर्प की अवगाहना जघन्य अ गुल के असख्यातवे भाग उत्कृष्ट प्रत्येक (पृथक्त्व) योजन की ।

भुजपरिसर्प की अवगाहना जघन्य अ गुल के असख्या-तवें भाग उत्कृष्ट प्रत्येक (पृथक्त्व) धनुष की ।

३ सघयण - तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच

पंचेन्द्रिय में संहनन एक छेवट्ठ ।

४ संठाण—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में संठाण एक हुण्डक ।

५ कषाय—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में कषाय चार चार ।

६ संज्ञा—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच-पंचेन्द्रिय संज्ञा चार चार ।

७ लेश्या—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच-पंचेन्द्रिय में लेश्या तीन तीन—कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या ।

८ इन्द्रिय—बेइन्द्रिय में इन्द्रिय दो—रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय । तेइन्द्रिय में इन्द्रिय तीन—घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय । चतुरिन्द्रिय में इन्द्रिय चार—चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय । असन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में इन्द्रिय पांच-श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय ।

११—वेद—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच-पचेन्द्रिय मे वेद एक—नपु सक ।

१२ पज्जत्ति—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यच-पचेन्द्रिय मे पर्याप्ति पाच पाच - आहारपर्याप्ति, शरीर-पर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति और भाषा-पर्याप्ति ।

१३ दृष्टि—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यच-पचेन्द्रिय मे दृष्टि दो दो सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि ।

१४ दर्शन—द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय मे दर्शन एक अचक्षु । चतुरिन्द्रिय और तिर्यचपचेन्द्रिय मे दर्शन दो दो—चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ।

१५ नाण—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यच-पचेन्द्रिय मे ज्ञान दो दो-मतिज्ञान और श्रुतज्ञान । अन्नाण—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यचपचेन्द्रिय मे अज्ञान दो दो—मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान ।

१६ योग—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यच-पचेन्द्रिय मे योग चार चार—व्यवहारवचनयोग, औदारिक-शरीरकाययोग, औदारिकमिश्रशरीरकाययोग और कार्मण-शरीरकाययोग ।

१७ उपयोग—द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय मे उपयोग पाच पाच - दो ज्ञान, दो अज्ञान और एक अचक्षुदर्शन, चतुरि-न्द्रिय और असन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय मे उपयोग छह छह—दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन ।

१८ आहार—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच-पंचेन्द्रिय में आहार २८८ भेद का लेते हैं, जिसमें दिशि की अपेक्षा नियमा छह दिशि का।

१९ उपपात—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच-पंचेन्द्रिय में एक समय में जघन्य एक, दो, तीन यावत् संख्याता, उत्कृष्ट असंख्याता उपजे।

२० स्थिति—द्वीन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट १२ वर्ष की। त्रीन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट ४९ अहोरात्रि की। चतुरिन्द्रिय की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट छह महीना की।

असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पाच भेद—

पचेन्द्रिय मे एक समय मे जघन्य १-२-३ यावत् सख्याता, उत्कृष्ट असख्याता च्यवे ।

२३ गइ आगइ—तीन विकलेन्द्रिय मे दो गति का आवे और दो गति मे जावे । तिर्यचगति और मनुष्यगति । दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक का आवे और दस दण्डक मे जावे—दस दण्डक औदारिक का । और असन्नी तिर्यच मे दो गति का आवे । तिर्यचगति और मनुष्यगनि का और जावे चार गति मे—नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति मे और दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक का आवे—दस दण्डक औदारिक का, और जावे २२ दण्डक मे—१ नारकी, १० भवनपति ५ स्थावर, ३ विकलेन्द्रिय, १ तिर्यचपचेन्द्रिय, १ मनुष्य और १ वाणव्यन्तर का ।

२४ प्राण—द्वीन्द्रिय मे प्राण छह—रसनेन्द्रिय प्राण स्पर्शनेन्द्रिय प्राण, वचनबलप्राण, कायबलप्राण, श्वासोच्छ्वासप्राण और आयुष्यप्राण । त्रीन्द्रिय मे प्राण सात—घ्राणेन्द्रियप्राण,रसनेन्द्रियप्राण,स्पर्शनेन्द्रियप्राण, वचनबलप्राण, कायबलप्राण, श्वसोच्छ्वासप्राण और आयुष्यप्राण । चतुरिन्द्रिय मे प्राण आठ—चक्षुरिन्द्रियप्राण और सात पूर्वोक्त । असन्नी तिर्यचपचेन्द्रिय मे प्राण नव—श्रोत्रेन्द्रियप्राण और आठ पूर्वोक्त ।

२५ योग—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यच-पचेन्द्रिय मे योग दो-दो—वचन और काया का ।

सन्नी तिर्यचपचेन्द्रिय का अधिकार कहते है—

१ शरीर—सन्नी तिर्यचपचेन्द्रिय मे शरीर चार—

पचेन्द्रिय मे एक समय मे जघन्य १–२–३ यावत् सख्याता, उत्कृष्ट असख्याता च्यवे ।

२३ गइ आगइ—तीन विकलेन्द्रिय मे दो गति का आवे और दो गति मे जावे । तिर्यचगति और मनुष्यगति । दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक का आवे और दस दण्डक मे जावे—दस दण्डक औदारिक का । और असन्नी तिर्यंच मे दो गति का आवे । तिर्यचगति और मनुष्यगनि का और जावे चार गति मे—नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति मे और दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक का आवे—दस दण्डक औदारिक का, और जावे २२ दण्डक मे—१ नारकी, १० भवनपति ५ स्थावर, ३ विकलेन्द्रिय, १ तिर्यचपचेन्द्रिय, १ मनुष्य और १ वाणव्यन्तर का ।

२४ प्राण—द्वीन्द्रिय मे प्राण छह—रसनेन्द्रिय प्राण स्पर्शनेन्द्रिय प्राण, वचनबलप्राण, कायबलप्राण, श्वासोच्छ्वासप्राण और आयुष्यप्राण । त्रीन्द्रिय मे प्राण सात—घ्राणेन्द्रियप्राण,रसनेन्द्रियप्राण,स्पर्शनेन्द्रियप्राण, वचनवलप्राण, कायवलप्राण, श्वसोच्छ्वासप्राण और आयुष्यप्राण । चतुरिन्द्रिय मे प्राण आठ—चक्षुरिन्द्रियप्राण और सात पूर्वोक्त । असन्नी तिर्यचपचेन्द्रिय मे प्राण नव—श्रोत्रेन्द्रियप्राण और आठ पूर्वोक्त ।

२५ योग—तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यच-पचेन्द्रिय मे योग दो–दो—वचन और काया का ।

सन्नी तिर्यचपचेन्द्रिय का अधिकार कहते है—

१ शरीर—सन्नी तिर्यचपचेन्द्रिय मे शरीर चार—

औदारिक, वैक्रिय, तैजस् और कार्मण ।

२ अवगाहना—सन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय के पाच भेद—जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प । जलचर की अवगाहना ज० अ गुल के असख्यातवे भाग उत्कृष्ट १००० योजन की ।

स्थलचर की अवगाहना ज० अ गुल के असख्यातवें भाग उत्कृष्ट ६ गाउ की ।

खेचर की अवगाहना ज० अ गुल के असख्यातवें भाग उत्कृष्ट प्रत्येक धनुष की ।

उरपरिसर्प की अवगाहना ज० अ गुल के असख्यातवें भाग उत्कृष्ट १००० योजन की ।

भुजपरिसर्प की अवगाहना ज० अ गुल के असख्यातवें भाग उत्कृष्ट प्रत्येक गाउ की ।

सन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय वैक्रियशरीर करे तो अवगाहना ज० अ गुल के सख्यातवे भाग उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ (ज० २०० उत्कृष्ट ९००) योजन की ।

३ सघयण—सन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय मे सघयण छहो ही ।

४ सठाण—सन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय मे सठाण छहो ही ।

४ कषाय—सन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय मे कषाय चारो ही ।

६ संज्ञा—सन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय मे संज्ञा चारो ही ।

७ लेश्या—सन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय मे लेश्या छहो ही ।

८ इन्द्रिय—सन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय मे इन्द्रिय पाचो ही ।

६ समुद्घात—सन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय मे समुद्घात पाच—वेदनीय, कषाय, मारणातिक, वैक्रिय और तैजस ।

१० सन्नी—तिर्यंचपचेन्द्रिय सन्नी है असन्नी नही ।

११ वेद—सन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय मे वेद तीनो ही ।

१२ पज्जत्ति—सन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय मे पर्याप्ति पावे छहो ही ।

१३ दृष्टि—सन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय मे दृष्टि पावे तीनो ही ।

१४ दर्शन—सन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय मे दर्शन पावे तीन-चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन और अवधि दर्शन ।

१५ नाण—सन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय मे ज्ञान पावे तीन—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधि ज्ञान । अन्नाण- सन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय मे अज्ञान पावे तीनो ही ।

१६ जोग—सन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय मे योग पावे १३—चार मन का, ४ वचन का और ५ काया का, औदारिक शरीर काययोग, औदारिक मिश्रशरीर काययोग, वैक्रिय शरीर काययोग, वैक्रिय मिश्र शरीर काययोग और कार्मण शरीर काययोग ।

१७ उपयोग—सन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय मे उपयोग पावे नव–३ ज्ञान, अज्ञान और ३ दर्शन ।

१८ आहार - सन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय आहार २८८ भेद का लेते है जिसमे दिशि आसरी नियमा छह दिशि का ।

१६ उववाय—सन्नी तिर्यंच पचेन्द्रिय एक समय मे ज० १–२–३ यावत् सख्याता उत्कृष्ट असख्याता उपजे ।

२० स्थिति—सन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय के पाच भेद—जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प भुजपरिसर्प ।

जलचर की स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट एक करोड पूव की ।

स्थलचर की स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट तीन पल्योपम की ।

खेचर की स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट पल्योपम के असख्यातवे भाग की ।

उरपरिसर्प की स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट एक करोड पूर्व की ।

भुजपरिसर्प की स्थिति ज० अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट एक करोड पूर्व की ।

२१ समोहया असमोहया मरण—सन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय दोनो प्रकार के मरण मरते है ।

२२ चवण—सन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय एक समय मे ज० १–२–३ यावत् सख्याता उत्कृष्ट असख्याता च्यवे ।

२३ गइ—सन्नी तिर्यचपचेन्द्रिय गति आसरी चारो गति मे आवे और चारो गति मे जावे और दण्डक आसरी २४ दण्डक का आवे और २४ दण्डक मे जावे ।

२४ प्राण—सन्नी तिर्यचपचेन्द्रिय मे योग पावे दसो ही ।

२५ जोग—सन्नी तिर्यंचपचेन्द्रिय मे योग पावे तीनो ही ।

गर्भज मनुष्य का अधिकार कहते है—

१ शरीर—गर्भज मनुष्य मे शरीर पावे पाचो ही ।

२ अवगाहना—गर्भज मनुष्य की अवगाहना ज० अगुल के असख्यातवे भाग, उत्कृष्ट तीन गाउ की ।

छह आरो की अपेक्षा से मनुष्यो की अवगाहना को कहते है । अवसर्पिणी काल मे लगाते पहिले आरे की अवगाहना ज० तीन गाउ देसऊणी, उत्कृष्ट तीन गाउ पूरी ।

पहिले आरे उतरते ज० दो गाउ देसऊणी, उत्कृष्ट दो गाउ पूरी ।

दूजे आरे लगते ज० दो गाउ देसऊणी, उत्कृष्ट दो गाउ पूरी ।

दूजे आरे उतरते ज० एक गाउ देसऊणी, उत्कृष्ट एक गाउ पूरी ।

तीजे आरे लगाते ज० एक गाउ देसऊणी, उत्कृष्ट

एक गाउ पूरी ।

तीजे आरे उतरते ज० ५०० धनुष देसऊणी, उत्कृष्ट ५०० धनुष की पूरी ।

चौथे आरे लगाते ज० अ गुल के असख्यातवे भाग, उत्कृष्ट ५०० धनुष की पूरी ।

चौथे आरे उतरते ज० अ गुल के असख्यातवे भाग, उत्कृष्ट सात हाथ की ।

पाचवे आरे लगते ज० अ गुल के असख्यातवें भाग, उत्कृष्ट सात हाथ की ।

पाचवें आरे उतरते ज० अ गुल के असख्यातवे भाग, उत्कृष्ट एक हाथ की ।

छट्ठे आरे लगते ज० अ गुल के असख्यातवे भाग, उत्कृष्ट एक हाथ की ।

छट्ठे आरे उतरते ज० अ गुल के असख्यातवे भाग, उत्कृष्ट एक मुण्ड हाथ की ।

उत्सर्पिणी काल के छहो आरो का अवगाहना इनसे उल्टी यथायोग्य समझ लेनी चाहिये ।

मनुष्य मे वैक्रिय शरीर करे तो अवगाहना जघन्य अ गुल के स० भाग, उत्कृष्ट एक लाख योजन झाझेरी ।

३ सघयण - गर्भज मनुष्य मे सघयण पावे छहो ही ।

४ सठाण—गर्भज मनुष्य मे सठाण पावे छहो ही ।

५ कषाय—गर्भज मनुष्य मे कषाय पावे चारो ही तथा अकषाई ।

६ सज्ञा—गर्भज मनुष्य मे सज्ञा पावे चारो ही तथा नोसन्नोवउत्ता ।

७ लेश्या—गर्भज मनुष्य मे लेश्या पावे छहो ही, तथा अलेशी ।

८ इन्द्रिय—गर्भज मनुष्य मे इन्द्रिय पावे पाचो ही, तथा अनिन्द्रिय ।

९ समुद्घात—गर्भज मनुष्य मे समुद्घात पावे सातो ही ।

१० सन्नी—गर्भज मनुष्य सन्नी है, असन्नी नही तथा तेरहवे, चौदहवे गुणस्थान आसरी नोसन्नी नोसन्नी है ।

११ वेद—गर्भज मनुष्य मे वेद पावे तीनो ही, तथा अवेदी है ।

१२ पज्जति—गर्भज मनुष्य मे पर्याप्ति पावे छहो ही ।

१३ दृष्टि—गर्भज मनुष्य मे दृष्टि पावे तीनो ही ।

१४ दर्शन—गर्भज मनुष्य मे दर्शन पावे चारो ही ।

१५ नाण—गर्भज मनुष्य मे ज्ञान पावे पाचो ही ।

अन्नाण—गर्भज मनुष्य मे अज्ञान पावे तीनो ही ।

१६ योग—गर्भज मनुष्य मे योग पावे पन्द्रह, तथा अयोगी ।

१७ उपयोग–गर्भज मनुष्य मे उपयोग पावे बारह ही।

१८ आहार––गर्भज मनुष्य २८८ बोलो का आहार लेते हैं, जिनमे दिशी आसरी नियमा छहु दिशी का तथा अनाहारिक।

१९ उववाय—गर्भज मनुष्य एक समय मे ज० १-२-३ उत्कृष्ट सख्याता उपजे।

२० स्थिति—गर्भज मनुष्य की स्थिति जघन्य अन्त-मुहूर्त की उत्कृष्ट ३ पल्योपम की।

छह आरो की अपेक्षा से गर्भज मनुष्यो की स्थिति को कहते है—अवसर्पिणी काल के पहिले आरे लागते ज० ३ पल्योपम देसऊणी, उत्कृष्ट ६ पल्योपम पूरी।

पहिले आरे उतरते ज० पल्योपम देसऊणी, उत्कृष्ट २ पल्योपम पूरी।

दूजे आरे लागते ज० २ पल्योपम देसऊणी, उत्कृष्ट २ पल्योपम पूरी।

दूजे आरे उतरते ज० १ पल्योपम देसऊणी, उत्कृष्ट १ पल्योपम पूरी।

तीजे आरे लागते ज० १ पल्योपम देसऊणी, उत्कृष्ट एक पल्योपम पूरी।

तीजे आरे उतरते ज० क्रोडपूर्व देसऊणी उत्कृष्ट क्रोडपूर्व पूरी।

चौथे आरे लागते ज० अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट एक क्रोडपूर्व पूरी ।

चौथे आरे उतरते ज० अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट १०० वर्ष झाझेरी ।

पाचवे आरे लागते ज० अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट १०० वर्ष झाझेरी ।

पाचवे आरे उतरते ज० अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट २० वर्ष की ।

छठे आरे लागते ज० अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट २० वर्ष की ।

छठे आरे उतरते ज० अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट १६ वर्ष की ।

उत्सर्पिणी काल के छहो आरो की स्थिति यथायोग्य उलटी समझ लेना ।

२१ समोहया असमोहया मरण—गर्भज मनुष्य दोनो प्रकार के मरण मरते हैं ।

२२ चवण—गर्भज मनुष्य एक समय मे ज० १-२-३ उत्कृष्ट सख्याता च्यवे ।

२३ गइ—गर्भज मनुष्य चार गति से आवे—नरकगति, तिर्यचगति, मनुष्यगति और देवगति और जावे पाच गति मे—नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति और मोक्ष-गति । दण्डक की अपेक्षा २४ दण्डक से आवे और २४ दण्डक मे तथा मोक्ष मे जावे ।

२४ प्राण—गर्भज मनुष्य मे प्राण दसो ही ।

२५ योग—गर्भज मनुष्य मे योग तीन ही तथा अयोगी ।

८६ जुगलिया के अधिकार को कहते हैं:—

जुगलिया के ८६ भेद हैं—

५ हैमवत, ५ हैरण्यवत, ५ हरिवास, ५ रम्यकवास, ५ देवकुरु, ५ उत्तरकुरु और ५६ अन्तर्द्वीप ।

१ शरीर—छयासी जुगलियो मे शरीर तीन—औदारिक, तैजस् और कार्मण ।

२ अवगाहना—पाच हैमवत और पाच हैरण्यवत इन दसो क्षेत्रो के मनुष्यो की अवगाहना ज० देसऊणा एक गाउ की उत्कृष्ट एक गाउ पूरी । पाच हरिवास और पाच रम्यकवास इन दसो क्षेत्रो के मनुष्यो की अवगाहना ज० देसऊणा दो गाउ की, उत्कृष्ट दो गाउ पूरी । पाच देवकुरु और पाच उत्तरकुरु इन दसो क्षेत्रो के मनुष्यो की अवगाहना ज० देसऊणा तीन गाउ की, उत्कृष्ट तीन गाउ पूरी ।

छप्पन अन्तर्दीपो के मनुष्यो की अवगाहना ज० देसऊणा आठ सौ धनुष की, उत्कृष्ट आठ सौ धनुष की पूरी ।

३ सघयण—छयासी जुगलियो मे सघयण एक—वज्र-ऋषभनाराच ।

४ सठाण—छयासी जुगलियो मे सठाण एक—समचतुरस ।

५ कषाय—छयासी जुगलियो मे कषाय चारो ही।

६ संज्ञा—छयासी जुगलियो में सज्ञा चारो ही।

७ लेश्या—छयासी जुगलियो मे लेश्या चार—कृष्ण, नील, कापोत और तेजो।

८ इन्द्रिय—छयासी जुगलियो मे इन्द्रिय पाँचो ही।

९ समुद्घात—छयासी जुगलियो मे समुद्घात तीन—वेदनीय, कषाय और मारणातिक।

१० सन्नी—छयासी जुगलिया सन्नी है, असन्नी नही।

११ वेद—छयासी जुगलियो मे वेद दो—स्त्रीवेद और पुरुषवेद।

१२ पज्जत्ति—छयासी जुगलियो मे पर्याप्ति छहो ही।

१३ दृष्टि—तीस अकर्मभूमि मे दृष्टि दो—सम्यक्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि और छप्पन अन्तर्द्वीपो मे दृष्टि एक मिथ्यादृष्टि।

१४ दर्शन—छयासी जुगलियो मे दर्शन दो—चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन।

१५ नाण—तीस अकर्मभूमि मे ज्ञान दो—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, ओर छप्पन अन्तर्द्वीपो मे ज्ञान नही।

अन्नाण—छयामी जुगलियो मे अज्ञान दो—मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान।

१६ योग—छयासी जुगलियो मे योग ग्यारह—४

मन का, ४ वचन का, औदारिकशरीरकाययोग, औदारिक-मिश्रशरीरकाययोग और कार्मणशरीरकाययोग ।

१७ उपयोग—तीस अकर्मभूमि मे उपयोग छह—दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन और छप्पन अन्तर्द्वीपो मे चार—दो अज्ञान और दो दर्शन ।

१८ आहार—छयासी जुगलियो मे २८८ बोल का आहार लेते हैं, जिसमे दिशा की अपेक्षा नियमा छह दिशा का ।

१९ उववाय—छयासी जुगलियो मे एक समय मे ज० १-२-३, उत्कृष्ट सख्याता उपजे ।

२० स्थिति—पाच हैमवत और पाच हैरण्यवत इन दसो क्षेत्रो के मनुष्यो की स्थिति ज० देसऊणा एक पल्यो-पम की, उप्कृष्ट एक पल्योपम की । पाच हरिवास और पाच रम्यकवास इन दसो क्षेत्रो के मनुष्यो की स्थिति ज० देसऊणा दो पल्योपम की, उत्कृष्ट दो पल्योपम की । पाच देवकुरु और पाच उत्तरकुरु इन दसो क्षेत्रो के मनुष्यो की स्थिति ज० देसऊणा तीन पल्योपम की, उत्कृष्ट तीन पल्योपम की ।

छप्पन अन्तर्द्वीपो के मनुष्यो की स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग जिसमे ज० पल्योपम के असख्यातवें भाग ऊणी, उत्कृष्ट पल्योपम के असख्यातवे भाग ।

२१ समोहया असमोहया मरण—छयासी जुगलिया दोनो प्रकार के मरण मरते हैं ।

२२ चवण—छ्यासी जुगलिया एक समय में ज० १-२-३, उत्कृष्ट सख्याता च्यवे ।

२३ गइ छ्यासी जुगलिया दो गति से आवे—तिर्यंचगति से और मनुष्यगति से और जावे एक देवगति मे । दण्डक की अपेक्षा तीस अकर्मभूमि मे दो दण्डक का आवे—तिर्यंचपचेन्द्रिय और मनुष्य का और जावे तेरह दण्डक मे—१० भुवनपति, १ वाणव्यन्तर, १ ज्योतिषी और १ वैमानिक । छप्पन अन्तर्द्वीपो मे दो दण्डक का आवे—तिर्यचपचेन्द्रिय का और मनुष्य का, और जावे ग्यारह दण्डक मे—१० भुवनपति और १ वाणव्यन्तर ।

२४ प्राण—छ्यासी जुगलियो मे प्राण दसो ही ।

२५ योग—छ्यासी जुगलियो मे योग तीनो ही ।

सिद्ध भगवान का अधिकार कहते है—

१ शरीर—सिद्ध भगवान मे शरीर नही, अशरीर हैं ।

२ अवगाहना सिद्ध भगवान के आत्मप्रदेशो की अवगाहना ज० एक हाथ और अष्ट अ गुल की, मुख्य चार हाथ और सोलह अ गुल की, उत्कृष्ट ३३३ धनुष और ३२ अ गुल की ।

३ सघयण—सिद्ध भगवान् मे कोई सघयण नही ।

४ सठाण—सिद्ध भगवान् मे कोई सठाण नही ।

५ कपाय—सिद्ध भगवान् मे कषाय नही, अकषायी है ।

६ सज्ञा—सिद्ध भगवान् मे सज्ञा नही, नोसन्नोव-उत्ता है ।

७ लेश्या—सिद्ध भगवान् मे लेश्या नही, अलेशी है ।

८ इन्द्रिय—सिद्ध भगवान् मे इन्द्रिय नही, अइन्द्रिय हैं ।

९ समुद्घात—सिद्ध भगवान् मे समुद्घात नही ।

१० सन्नी—सिद्ध भगवान् सन्नी और असन्नी नही, नोसन्नी—नोऽसन्नी है ।

११ वेद—सिद्ध भगवान् मे वेद नही अवेदी है ।

१२ पज्जत्ति—सिद्ध भगवान् मे पर्याप्त और अपर्याप्त नही, नोपर्याप्त नोऽपर्याप्ता है ।

१३ दृष्टि—सिद्ध भगवान् मे दृष्टि एक—सम्यक्-दृष्टि ।

१४ दर्शन—सिद्ध भगवान् मे दर्शन एक—केवल-दर्शन ।

१५ नाण—सिद्ध भगवान् मे ज्ञान—एक—केवलज्ञान, अज्ञान नही ।

१६ योग—सिद्ध भगवान् मे योग नही, अयोगी हैं ।

१७ उपयोग—सिद्ध भगवान मे उपयोग दो—केवल-ज्ञान और केवलदर्शन ।

१८ आहार—सिद्ध भगवान् आहारक नही, अनाहारक है ।

१९ उववाय—सिद्ध भगवान् एक समय मे ज० १-२-३, उत्कृष्ट १०८ सिद्ध होवे ।

२० स्थिति—एक सिद्ध भगवान की अपेक्षा आदि अनत और घणा सिद्ध भगवान् की अपेक्षा अनादि अनत ।

२० समोहया असमोहया मरण—सिद्ध भगवान् मे मरण नही ।

२२ चवण—सिद्ध भगवान् मे चवण नही

२३—गइ—सिद्ध भगवान मे आगति एक मनुष्यगति की और गति नही । दण्डक की अपेक्षा एक मनुष्य का आवे और गति नही ।

२४ प्राण—सिद्ध भगवान् मे द्रव्यप्राण नही और भावप्राण चार है । सुख, सत्ता, चैतन्य और बोध ।

२५ योग—सिद्ध भगवान् मे योग नही, अयोगी हैं ।

काल का माप

समय किसको कहते है ? एक वख्त आख खोले या टमकारे इसमे असख्याता समय होते है ।

आवलिका किसको कहते है ? एक श्वासोश्वास मे सख्याता आवलिका होती है ।

श्वासोश्वास किसको कहते है ? निरोग पुरुष की नाड़ी के एकबार चलने को श्वासोश्वास काल कहते है ।

क्रोडाक्रोडी किसको कहते है ? एक क्रोड को एक क्रोड से गुणा करने पर जो लब्ध हो, उसको एक क्रोडाक्रोडी कहते हैं ।

मुहूर्त्त किसको कहते हैं ? अडतालीस मिनिट का एक मुहूर्त्त होता है । अन्तर-मुहूर्त्त किसको कहते है ? आवलिका से ऊपर और मुहूर्त्त के भीतर के काल को अन्तर मुहूर्त्त कहते हैं । एक मुहूर्त्त मे कितनी आवलिका होती है । एक मुहूर्त्त मे १६७७७२१६ एक करोड सिडसट लाख सित्योतर हजार दोयसो सोला आवलिका होती है । एक मुहूर्त्त मे (४८ मिनिट मे) कितने श्वासोश्वास होते है ? तीन हजार सात सो तिहत्तर (३७७३) होते है । तीस मुहूर्त्तों का अहोरात्र रूप एक दिन होता है । पद्रह दिनो का एक पक्ष होता है । दो पक्ष का एक मास होता है, बारह मास का १ वर्ष होता है, असख्य वर्षों का एक पल्योपम होता है । पल्योपम किसको कहते हैं ? चार कोस को कुवो लम्बो, च्यार कोस को चवडो, च्यार कोस को उडो, तीन गुणी भाभेरी परधि । उस कुवे को देवकुरु-उतरकुरु के जुगलियो का बालाग्र (केश) एक दिन के उगे हुवे जाव सात दिन के उगे हुवे हो, उनका (एक-एक बालाग्र का) असख्याता २ खण्डवा (टुकडा) करे, जो आख मे घाले तो रडके नही (मालूम पडे नही), चक्षु इन्द्री के अवघेणा से अनन्तगुणा छोटा सूक्ष्म पृथ्वीकाय के शरीर से अनन्तगुणा बडा, वादर पृथ्वीकाय के शरीर जितना उन बालो से उस कुवे को काठा तक भरे, पाच ओपमा करके सहित चक्रवर्ती की सेना ऊपर होकर निकल जावे तो भी एक खण्डवा मुचे (डीगे) नही, दावानल अग्नि लाग जावे

तो एक खडवो बले नही, पुष्करावत्त मेह वर्षे तो भी एक खण्डवो भिजे नही, अनुकूल-प्रतिकूल वायरो वाजे तो भी एक खण्डवो ऊडे नही, गगा-सिधु नदी को पाट ऊपर कर वह जावे तो भी एक बाल वेवे नही, इस तरह को काठो कुवो भरे, सौ-सौ बरस मे एक-एक खण्डवो निकाले, निर्लेपपणे सब कुवो (आखो कुवो) खाली हो जावे, उसको एक पल्योपम कहिये ।

सागरोपम किसको कहते है ? दस क्रोडाक्रोड कुवा खाली हो जावे याने दस क्रोडाक्रोड पल्योपम का एक सागरोपम होता है । दस क्रोडाक्रोडी सागरोपम की एक अवसर्प्पिणी होती है तथा दूसरा दश क्रोडाक्रोडी सागरोपम की एक उत्सर्पिणी होती है । अवसर्प्पिणी और उत्सर्प्पिणी मिलकर एक कालचक्र होता है, ऐसे अनन्त कालचक्र वीतने पर एक पुद्गलपरावर्त्तन होता है ।

नोट—"एक भरत ऐरवरत के मनुष्य के बालाग्र मे देवकुरु–उत्तरकुरु के जुगलियो केस ४०६६ होते है ।"

भाग ४

१. आशीविष का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक आठवा, उद्देशा दूसरा)

१ अहो भगवन् ! आशीविष ❀ कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! आशीविष दो प्रकार का है—जाति आशीविष और कर्मआशीविष ।

❀ आशीविष-आशी का अर्थ है-डाढ । जिन जीवो के डाढ मे विष होता है उनको आशीविष कहते है । आशीविष प्राणियो के भेद है—जाति आशीविष और कर्म आशीविष । साप बिच्छू आदि प्राणी जाति (जन्म) से ही आशीविष वाले होते है, इसलिए उन्हे जातिआशीविष कहते है ।

जो कर्म द्वारा अर्थात् शॉप (श्राप) आदि द्वारा प्राणियो का नाश करते है उनको कर्मआशीविष कहते है । पर्याप्त तिर्यंचपचेन्द्रिय और मनुष्य को तपश्चर्या आदि से अथवा और कोई दूसरे कारण से आशीविपलब्धि उत्पन्न हो जाती है । इसलिये वे शाप (श्राप) आदि देकर दूसरे का नाश करने की शक्ति वाले होते हैं । ये जीव आशी-विपलब्धि के स्वभाव से आठवें देवलोक से आगे उत्पन्न नही हो सकते हैं । वे देव अपर्याप्त अवस्था तक कर्म—आशीविष वाले होते है ।

२ अहो भगवन् ! जाति आशीविष कितने प्रकार है ? हे गौतम ! चार प्रकार का है—१ वृश्चिक (विच्छू) जाति आशीविष, २ मण्डक, (मेढक) जाति आशीविष, ३ उरग (साप) जाति आशीविष, ४ मनुष्य जाति आशीविष ।

३ जाति आशीविष का कितना विषय है ? हे गौतम ! वृश्चिकजातिआशीविष का विषय※ अर्द्धभरत प्रमाण है । मण्डूकजातिआशीविष का विषय भरतक्षेत्र प्रमाण है । उरगजातिआशीविष का विषय जम्बूद्वीप प्रमाण है । मनुष्यजातिआशीविष का विषय समयक्षेत्र (अढाईद्वीप) प्रमाण है । यह इनका विषय है, किन्तु ऐसा कभी किया नही, करते नही और करेगे नही ।

४ - अहो भगवन् ! कर्मआशीविष कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! तीन प्रकार का है—१ मनुष्य, २ तिर्यंच, ३ देवता । १५ कर्मभूमि के मनुष्य और ५ सन्नी तिर्यंच इन २० बोलो के पर्याप्त को मे और भवनपति से लेकर आठवे देवलोक के देवता के अपर्याप्तको मे कर्मआशीविष होता है ।

५—छद्मस्थ (अवधि आदि विशिष्ट ज्ञानरहित) दस

※असत्कल्पना से जैसे किसी मनुष्य ने अर्द्ध भरत प्रमाण अपना शरीर बनाया हो उसके पाव बिच्छू डक दे तो उसके मस्तक तक उसका जहर चढ जाता है, इस तरह चारो ही समझ लेना ।

केवलज्ञान । अवधिज्ञान के २ भेद❀—पडियाई (प्रतिपाती) अपडिवाई (अप्रतिपाती) ।

मन पर्ययज्ञान के दो भेद—ऋजुमति, विपुलमति । मनुष्य, गर्भज, कर्मभूमिज, सख्याता वर्ष की आयु वाला, पर्याप्त, समदृष्टि, सयती, अप्रमादी, लब्धिवन्त इन ९ वोल वाले जीव को मन पर्ययज्ञान उत्पन्न होता है ।

केवलज्ञान के ३ भेद—सयोगी, अयोगी, सिद्ध । सयोगी केवलज्ञान तेरहवे गुणस्थान वाले जीव को होता है । अयोगी केवलज्ञान चौदहवे गुणस्थान वाले जीव को होता है । सिद्धकेवलज्ञान के २ भेद—अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान, परम्परसिद्धकेवलज्ञान । अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान के १५ भेद– १ तीर्थसिद्ध, २ अतीर्थसिद्ध, ३ तीर्थङ्करसिद्ध, ४ अतीर्थकर-सिद्ध, ५ स्वयबुद्धसिद्ध, ६ प्रत्येकबुद्धसिद्ध, ७ बुद्धवोधित-सिद्ध, ८ स्त्रीलिङ्गसिद्ध, ९ पुरुषलिगसिद्ध, १० नपु सक-लिगसिद्ध, ११ स्वलिगसिद्ध, १२ अन्यलिगसिद्ध, १३ गृहस्थ-लिगसिद्ध, १४ एकसिद्ध, १५ अनेकसिद्ध ।

परम्परसिद्धकेवलज्ञान के १३ भेद—१ अपढमसमय-सिद्ध, २ द्विसमयसिद्ध, ३ तिसमयसिद्ध, ४ चतुसमयसिद्ध, ५ पचसमयसिद्ध, ६ षट्समयसिद्ध, ७ सप्तसमयसिद्ध, ८ अष्टसमयसिद्ध, ९ नवसमयसिद्ध, १० दससमयसिद्ध, ११ सख-

---

❀ अवधिज्ञान का विशेष विस्तार श्री पन्नवणासूत्र के थोकडो के तीसरे भाग मे दिया गया है ।

यातसमयसिद्ध, १२ असख्यातसमयसिद्ध, १३ अनन्तसमय-सिद्ध ।

परोक्षज्ञान के २ भेद—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान । मति-ज्ञान के ३६० भेद—मतिज्ञान के २ भेद—श्रुतनिश्रित, अश्रुतनिश्रित । अश्रुतनिश्रत के ४ भेद—(चार बुद्धि) १ उप्पत्तिया (औत्पत्तिकी) २ वेणइया (वैनयिकी), ३ कम्मि-मया (कर्मजा), ४ परिणामिया (पारिणामिकी) । श्रुत-निश्रित के ४ भेद—अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा । अवग्रह

—१—जो बुद्धि बिना देखे, सुने और बिना सोचे हुए पदार्थों को सहसा ग्रहण करके कार्य को सिद्ध कर देती है उसे उप्पत्तिया (उत्पातिया-औत्पत्तिकी) बुद्धि कहते हैं, जैसे नटपुत्र रोह की बुद्धि थी ।

२—गुरु महाराज की सेवा शुश्रूषा करने से जो बुद्धि प्राप्त होती है उसे वैनयिकी बुद्धि कहते हैं, जैसे—नैमित्तिक सिद्धपुत्र के शिष्यो की थी ।

३—कार्य करते करते जो बुद्धि प्राप्त हो, उसे कम्मि-मया (कर्मजा) बुद्धि कहते हैं । जैसे—सुनार, किसान आदि कार्य करते-करते अपने धन्धे मे विशेष होशियार हो जाते हैं ।

४—बहुत काल तक ससार के अनुभव से जो बुद्धि प्राप्त होती है उसको परिणामिया (परिणामिकी) बुद्धि कहते हैं ।

के २ भेद—अर्थावग्रह, व्यञ्जनाग्रह । अर्थावग्रह पाच इन्द्रिय और छठे मन से होता है । व्यञ्जनावग्रह चार इन्द्रियो (श्रोत्रेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय) से होता है । अर्थावग्रह की तरह ईहा, अवाय, धारणा के ६—६ भेद होते है । इस तरह कुल २८ (व्यञ्जनावग्रह के ४, अर्थावग्रह के ६, ईहा के ६, अवाय के ६, धारणा के ६= २८) भेद हुए । इन २८ को+बहु, अबहु (अल्प), बहु-विध, अबहुविध (अल्पविध), क्षिप्र, अक्षिप्र, निश्रित, अनि-श्रित, सदिग्ध, असदिग्ध, ध्रुव, अध्रुव, इन १२ से गुणा करने से २८×१२=३३६ भेद होते है अश्रुतनिश्रित के ४ भेद मिलाने से ३३६+४=३४० भेद हुए ।

+(१—२) बहुग्राही, अबहुग्राही (अल्पग्राही)—बहु का मतलब अनेक है और अबहु(अल्प)का मतलब एक है । जैसे दो या दो से अधिक पदार्थो को जानने वाले अव-ग्रह आदि ज्ञान बहुग्रही कहलाते है और एक पदार्थ को जानने वाले अवग्रहादि ज्ञान अबहुग्राही (एकग्राही) कहलाते है ।

(३—४) बहुविधग्राही, अबहुविधग्राही (अल्पविध-ग्राही) बहुविध का मतलब अनेक प्रकार से है और अबहु-विध (अल्पविध) का मतलब एक प्रकार (तरीका) से है । जैसे—किसी एक पदार्थ को उसके आकार-प्रकार, रूप-रग लम्बाई, चौडाई, मोटाई आदि विविध प्रकार से जानना बहुविधग्राही कहलाता है और किसी पदार्थ को उसके आकार-प्रकार, रग आदि मे से किसी एक ही तरह (तरीके) मे जानना अबहुविधग्राही—अल्पविधग्राही कह-लाता है ।

बहु और अबहु का मतलब पदार्थ की सख्या से है। तथा वहुविध और अबहुविध का मतलब प्रकार, किस्म, जाति, तरीके की सख्या से है। यही दोनो का अन्तर है।

(५-६) क्षिप्रग्राही, अशिप्रग्राही—शीघ्र जानने वाले अवग्रह आदि को क्षिप्रग्राही और विलम्ब से जानने वाले को अक्षिप्रग्राही कहते है।

(७—८) निश्रितग्राही, अनिश्रितग्राही—किसी भी पदार्थ को अनुमान द्वारा जानना निश्रितग्राही है, जैसे—शीत, कोमल स्पर्श से तथा गन्ध से फूलो का ज्ञान करना। किसी भी पदार्थ को अनुमान के बिना ही जान लेना अनिश्रितग्राही अवग्रह आदि है।

(९—१०) सदिग्धग्राही, असदिग्धग्राही—सन्देहयुक्त ज्ञान को सदिग्धग्राही कहते हैं और निश्चित रूप से जानने वाले ज्ञान को असदिग्धग्राही कहते है।

(११—१२) ध्रुवग्राही, अध्रुवग्राही—ध्रुव का मतलव अवश्यम्भावी और अध्रुव का मतलब कदाचितभावी है। सामग्री होने पर विषय को अवश्य जानने वाले ज्ञान को ध्रुवग्राही कहते हैं और सामग्री होने पर भी क्षयोपशम की मन्दता के कारण विषय को कभी ग्रहण करने वाले और कभी ग्रहण न करने वाले अवग्राहादि ज्ञान को अध्रुवग्राही कहते है।

❀एगट्ठिया के २० भेद मिलाने से ३४०+२०=३६० भेद हुए ।

❀ एगट्ठिया (एकार्थक शब्द) के २० भेद इस प्रकार हैं—अवग्रह के ५ नाम—ओगेण्हणया-(अवग्रहणता)—प्रथम समय मे आये हुए शब्दादि पुद्गलो का ग्रहण करना अवग्रहणता कहलाता है। २ उवधारणया (उपधारणता)—व्यजनावग्रह के दूसरे तीसरे आदि समयो मे नवीन नवीन शब्द आदि पुद्गलो का प्रतिसमय ग्रहण करना और पहले ग्रहण किये हुए का धारण करना उपधारणता कहलाती है। ३ सवणया (श्रवणता) एक समय मे होने वाला सामान्यरूप से अर्थग्रहणरूप बोध श्रवणता कहलाती है। ४ अवलम्बणया (अवलबनता)—अर्थ को ग्रहण करना अवलम्वनता कहलाती है। ५ मेहा (मेघा)—बुद्धि को मेघा कहते हैं।

ईहा के ५ नाम सामान्यरूप से एकार्थक होते हुए भी विशेष मे भिन्नार्थक है। जैसे १ आभोगणया(आभोगनता)-अर्थावग्रह के वाद ही सद्भूत अर्थविशेष का आलोचन करना आभोगनता है। २ मग्गणया (मार्गणता) अन्वय और व्यतिरेक धर्म का अन्वेपण करना मार्गणता है। ३, गवेसणया (गवेपणता) व्यतिरेक अर्थात् विरुद्ध धर्म के त्यागपूर्वक अन्वयधर्म की आलोचना करना गवेषणता है। ४ चिंता (चिन्ता)—सद्भूत अर्थ का वारम्वार चिन्तन करना चिन्ता है। ५ वीमसा (विमर्श)—सद्भूत अर्थ का स्पष्ट विचार करना विमर्श है।

अवाय के ५ नाम—१ आउट्टणया (आवर्तनता)—ईहा से आगे बढ कर अवाय के सन्मुख रहने वाला ज्ञान आवर्तनता है। २ पच्चाउट्टाणया (प्रत्यावर्तनता)—आवर्तनता से आगे बढने वाला ज्ञान प्रत्यावर्तनता है। ३ अवाए (अवाय) ईहा से सर्वथा निवृत्त पदार्थ का ज्ञान अवाय है। ४ बुद्धि—निर्णय किये हुए उसी अर्थ को स्थिरता पूर्वक वारम्वार स्पष्ट रूप में जानना बुद्धि है। ५ विण्णाणे (विज्ञान)-उसी अर्थ का विशिष्ट ज्ञान होना विज्ञान है।

धारणा के ५ नाम—१ धरणा—जाने हुए अर्थ को अन्तर्मुहूर्त तक दृढतापूर्वक धारण किये रहना धरणा है। २ धारणा—जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असख्यात काल के वाद भी स्मरण रखना धारणा है। ३ ठवणा (स्थापना)—उस अर्थ की हृदय मे स्थापना है। ४ पइट्ठा (प्रतिष्ठा)-उस अर्थ को भेद—प्रभेद के साथ हृदय मे स्थापना करना प्रतिष्ठा है। ५ कोट्ठे (कोष्ठ)—जिस प्रकार कोठे मे रखा हुआ धान सुरक्षित रहता है, उसी प्रकार उस अर्थ को सदा धारण किये रह कर सुरक्षित रखना कोष्ट-कोठा कहलाता है। ये सव मिलाकर २० भेद हुए।

उग्गहे इक्कसमइए, अन्तोमुहुत्तिया ईहा अन्तोमुहुत्तिए अवाए, धारणा सखेज्ज वा काल असखेज्ज वा काल ॥

भावार्थ अवग्रह से पदार्थ का सामान्य ज्ञान होता है। इसकी स्थिति एक समय की है। ईहा से विशेष ज्ञान

मतिज्ञान के ९ नाम हैं—

ईहा अपोह वीमसा, मग्गणा य गवेसणा ।
सण्णा सई मई पण्णा, सव्व आभिणिवोहिय ।।

अर्थ—१. ईहा—सद्भूत अर्थ की पर्यालोचन को ईहा कहते है । २ अपोह—निश्चय करने को अपोह कहते हैं । ३ विमर्श-विचार । ४ मार्गणा—विचारणा । ५ गवेपणा-खोज । ६ संज्ञा—बुद्धि-सकेत । ७ स्मृति—स्मरण । ८ मति—बुद्धि, ९ प्रज्ञा—विशिष्ट बुद्धि ।

निर्मल - सम्यग् मति (बुद्धि) को मतिज्ञान कहते हैं । इससे विपरीत (उलटी) मति बुद्धि को मतिअज्ञान कहते है । एगट्ठिया के २० भेद छोडने से मतिअज्ञान के भी ३४० भेद होते है ।

सम्यक्प्रकार सुनने को श्रुतज्ञान कहते है । मिथ्या-सूत्र मिथ्यात्वी के पास मे असम्यग्पणे सुनना श्रुतअज्ञान

होता है, इसकी स्थिति अन्तमुहूर्त की है । अवाय से पदार्थ का निश्चय होता है, इसकी स्थिति अन्तमुहूर्त की है । धारणा से हृदय मे दृढ निश्चय-पक्की धारणा होती है । इसकी स्थिति सख्याता काल के आयुष्य वालो की अपेक्षा सख्यात काल की और असख्याता काल के आयुष्य वालो की अपेक्षा असख्यात काल की ।

है । श्रुतज्ञान के १४ भेद—※ अक्षरश्रुत, अनक्षरश्रुत, सञ्ज्ञीश्रुत, असञ्ज्ञीश्रुत, सम्यक्श्रुत मिथ्याश्रुत, सादिश्रुत, अनादिश्रुत, सपर्यवसितश्रुत अपर्यवसितश्रुत, गमिकश्रुत, अगमिकश्रुत, अ गप्रविष्ट, अनङ्गप्रविष्ट ।

अवधिज्ञान से विपरीत होवे उसे विभगज्ञान कहते है । विभगज्ञान के ७ भेद और अनेक सठाण है ।

※ श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होने वाले शास्त्रो के ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं । चरण करणानुयोग, धर्मकथानुयोग, द्रव्यानुयोग, और गणितानुयोग की सारी बातें श्रुतज्ञान मे आजाती है । इसके १४ भेद हैं—

१ अक्षरश्रुत—जिसका कभी नाश न हो, उसे अक्षर कहते हैं । जीव उपयोग स्वरूप वाला होने से ज्ञान का कभी नाश नही होता । इसलिये यहा ज्ञान ही अक्षर है । ज्ञान का कारण होने उपचारमय से अकारादि वर्ण भी अक्षर कहे जाते हैं । अक्षररूप श्रुत को अक्षरश्रुत कहते हैं ।

२ अनक्षरश्रुत—अक्षरो के बिना ही शरीर की चेष्टा आदि से होने वाले ज्ञान को अनक्षरश्रुत कहते हैं, जैसे —हसी, खासी, छीक, उबासी आदि ।

३ सज्ञिश्रुत—सज्ञा अर्थात् सोचने-विचारने की शक्ति जिस जीव मे हो उसे सज्ञी (सन्नी) कहते हैं, सज्ञी के लिए बताये गये श्रुत को सज्ञिश्रुत कहते है ।

४. असज्ञिश्रुत सज्ञिश्रुत (सन्नीश्रुत) से उल्टा असज्ञि (असन्नी) श्रुत है ।

५ सम्यक्श्रुत—सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर भगवान् द्वारा प्रणीत आचारागादि वारह अग सूत्रो को सम्यक्श्रुत कहते हैं ।

६ मिथ्याश्रुत—मिथ्यादृष्टियो के द्वारा अपनी स्वतत्र बुद्धि से कल्पना किये गये शास्त्रो को मिथ्याश्रुत कहते है ।

७ ८ ९ १० 'सादिश्रुत'—अनादिश्रुत, सपर्यवसितश्रुत, अपर्यवसितश्रुत—वारह अग सूत्र पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा सादि, सपर्यवसित (आदि—अन्त सहित) है और द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा अनादि, अपर्यवसित (आदि-अन्त-रहित) है ।

११ गमिकश्रुत—अनेक जगह जिस पाठ का बार-बार उच्चारण किया जाता है, उसे गमिकश्रुत कहते है । जैसे —उत्तराध्ययनसूत्र के दसवे अध्ययन की गाथाओ मे "समय गोयम मा पमायए" का बारबार उच्चारण किया जाता है ।

१२ अगमिकश्रुत—गमिक से विपरीत शास्त्र को अगमिकश्रुत कहते है । जैसे —आचाराग आदि ।

१३ अगप्रविष्टश्रुत आचाराग आदि बारह सूत्र (११ अग १ दृष्टिवाद) अगप्रविष्टश्रुत कहलाते है ।

१४ अगबाह्यश्रुत—बारह अगसूत्रो के सिवाय जो शास्त्र है वे अगबाह्यश्रुत कहलाते है । इनका विशेष विस्तार नन्दीसूत्र मे है ।

३. कर्मप्रकृति का थोकड़ा

आठ कर्मों के नाम और लक्षरण

आठ कर्मों के नाम —(१)ज्ञानावरणीय, (२)दर्शना-वरणीय, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयु, (६) नाम, (७) गोत्र, (८) अन्तराय ।

कर्मोंके लक्षण —(१) जिसके द्वारा ज्ञान ढाका जाय उसे ज्ञानावरणीयकर्म कहते हैं । जैसे बादलो से सूर्य ढक जाता है । (२) जो वस्तु के सामान्य धर्म को जाने, उसे दर्शन कहते है । उस दशन को आच्छादित करने वाले कर्म को दर्शनावरणीय कहते है । जैसे द्वारपाल की रुकावट के कारण राजा के दर्शन नही हो पाते । (३) जिस कर्म द्वारा साता और असाता का अनुभव हो, उसे वेदनीयकर्म कहते है । जैसे शहद लपेटी तलवार के चाटने से सुख और दु ख होता है । (४) जिससे आत्मा मोहित–सत् और असत् के ज्ञान से शून्य हो जाय उसे मोहनीयकर्म कहते है । जैसे मदिरा पीने से बेभान हो जाता है । (५) जिस कर्म के उदय से जीव चार गतियो मे रुका रहे उसे आयु कर्म कहते हैं । जैसे बेडी मे जकड जाने से जीव रुक जाता है पराधीन हो जाता है । (६) जिस कर्म से आत्मा, गति आदि नाना पर्यायो का अनुभव करे—शरीर आदि बने या जो जीव के अमूर्तत्व गुण को प्रगट नही होने दे उसे नामकर्म कहते हैं । जैसे चित्रकार तरह तरह के चित्र बनाता है । (७) जिस कर्म के उदय से जीव उच्च नीच कुलोमे उत्पन्न होवे उसे गोत्रकर्म कहते हैं । जैसे कुभार

छोटे बडे बर्तन बनाता है । (८) जिस कर्म से दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य (शक्ति) मे विघ्न पड़े, उसे अन्तरायकर्म कहते है । जैसे राजा की आज्ञा होने पर भी भडारी दान प्राप्ति मे विघ्न डाल देता है ।

कर्मों की प्रकृतियां—

आठ कर्मों की १४८ प्रकृतिया है । वे इस प्रकार— ज्ञानावरणीय की पाच (५), दर्शनावरणीय की नौ (६), वेदनीय की दो (२), मोहनीय की अट्ठाईस २८, आयुकर्म की चार (४), नामकर्म की तेरानवे (६३), गोत्रकर्म की दो (२), और अन्तरायकर्म की पाच (५) प्रकृतिया है ।

प्रकृतियों[1] के नाम

१ ज्ञानावरण[2] की प्रकृतिया.— (१) मतिज्ञानावरणीय[3] (२) श्रुतज्ञानावरणीय (३) अवधिज्ञानावरणीय (४) मन पर्यायज्ञानावरणीय (५) केवलज्ञानावरणीय ।

---

१ यहा प्रकृतियो का अर्थ अवान्तर भेद है । यो तो सामान्य रूप मे एक प्रकृति है उसके उल्लिखित आठ भेद है । आठो के विवक्षाविशेष से १४८ भेद है । दूसरी दूसरी विवक्षाओ से कम या अधिक भेद हो सकते है । इसीलिए १५८ भेद भी हो जाते है ।

२ ज्ञानावरणीय कर्म से ज्ञान का सर्वथा अभाव नही होता, सिर्फ अव्यक्त होजाता है, जैसे बादलो से सूर्य का अभाव नही हो जाता, केवल अप्रगट हो जाता है ।

३ जो मतिज्ञान को ढके । इसी प्रकार और चारो के लक्षण समझने चाहिए ।

२ दर्शनावरणीय की प्रकृतिया —(१) निद्रा (२) निद्रानिद्रा (३) प्रचला (४) प्रचलाप्रचला (५) स्त्यानगृद्धि (६) चक्षुदर्शनावरण (७) अचक्षुदर्शनावरण (८) अवधिदर्शनावरण (९) केवलदर्शनावरण ।

जिसके उदय से सुख से सोवे और सुख से जाग उसे निद्राप्रकृति कहते हैं । जिसके उदय से ऐसी निद्रा आवे जो आवाज देने मे टूटे, उसे निद्रानिद्राप्रकृति कहते है । जिसके उदय से बैठे-बैठे नीद आ जावे उसे प्रचला कहते हैं । जिसके उदय से चलते-फिरते नीद आ जावे उसे प्रचला-प्रचला कहते है जिसके उदय से जागृत अवस्था मे सोचा हुआ कार्य सुप्त अवस्था मे कर डाले उसे स्त्यानगृद्धि[1] प्रकृति कहते हैं ।

३ वेदनीयकर्म की प्रकृतिया —सातावेदनीय २ असा-

---

१ इस निद्रा मे वासुदेव का आधा बल आ जाता है । उस समय जीव इसी निद्रा मे उठ कर पेटी खोलता है उसमे से गहनो का डब्बा निकाल कर कपडे मे पोटली वाधता है और नदी के किनारे जाकर एक हजार मन की शिला ऊची उठाकर पोटली को नीचे दवा देता है और नदी मे कपडे धो करके घर चला आता है, लेकिन जागने पर कुछ भी स्मरण नही रहता । छह महीने पश्चात् जव दूसरी वार ऐसी निद्रा आ जाती है तव फिर वहा जाकर वही डिब्वा उठा लाता है और आयुकर्म न वध चुका हो तो नरकगति मे जाता है । यह उत्कृष्ट स्त्यानगृद्धि की वात है ।

तावेदनीय ।

४ मोहनीयकर्म की प्रकृतियां – मोहनीयकर्म के मुख्य दो भेद है—(१) दर्शनमोहनीय (२) चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतिया है—मिथ्यात्व, सम्यग्-मिथ्यात्व (मिश्र) और सम्यक्त्व मोहनीय। चारित्रमोहनीय के भी दो भेद है—कषायमोहनीय और नोकषाय-मोहनीय। कषायमोहनीय के सोलह भेद हैं – अनन्तानुबन्धी का (१) क्रोध (२) मान (३) माया (४) लोभ, अप्रत्याखानावरण का (५) क्रोध (६) मान (७) माया (८) लोभ, प्रत्याख्यानावरण का (९) क्रोध (१०) मान (११) माया (१२) लोभ, सज्वलन का (१३) क्रोध (१४) मान (१५) माया (१६) लोभ। नोकषाय[1] के नौ भेद है – १ हास्य २ रति ३ अरति ४ भय ५ शोक ६ जुगप्सा ७ स्त्रीवेद ८ पुरुषवेद ९ नपुंसकवेद, ये सब मिलाकर अट्ठाईस भेद है।

५ आयुकर्म की प्रकृतिया—१ नरकायु २ तिर्यञ्चायु ३ मनुष्यायु ४ देवायु।

६ नामकर्म की प्रकृतियां—४ चार गति (नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव) ५ जाति (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय) ५ शरीर, (औदारिक, वैक्रिय,

---

१ हास्य आदि कषायो को उत्तेजित करते हैं और उनके सहचारी हैं, इसलिए उन्हे नो (ईषत्) कषाय कहते है।

आहारक, तैजस, कार्मण) ३ अ गोपाग (औदारिक, वैक्रिय आहारक) ५ वन्वन (औदारिक वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण) ५ सघात (औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण) ६ सस्थान (समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमडल, सादि, कुब्जक, वामन, हुण्डक) ६ सहनन (वज्रऋषभनाराच, ऋषभनाराच, नाराच, अर्द्ध नाराच, कीलक सेवार्त) ५ वर्ण (कृष्ण, नील, पीत, रक्त, सफेद) २ गन्ध (सुगध, दुर्गन्ध) ५ रस (खट्टा, मीठा, कड़ुवा, कसायला, तीखा) ८ स्पर्श (हलका, भारी, ठण्डा, गर्म, रूखा, चिकना, कठोर, कोमल) ४ आनुपूर्वी (नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव) १ अगुरुलघु, १ उपघात, १ पराघात, १ आतप, १ उद्योत २ विहायोगति (शुभ-मनोज्ञ, अशुभ—अमनोज्ञ), १ उच्छ्वास, १ त्रस १ स्थावर, १ वादर, १ सूक्ष्म, १ पर्याप्ति, १ अपर्याप्ति, १ प्रत्येक, १ साधारण, १ स्थिर, १ अस्थिर, १ शुभ, १ अशुभ, १ सुभग, १ दुर्भग, १ सुखर, १ दुस्वर, १ आदेय, १ अनादेय, १ यश कीर्ति, १ अयश कीर्ति, १ तीर्थंकर, १ निर्माण। ये तेरानवे प्रकृतिया नामकर्म की हैं। इनमे निम्न लिखित दस और वढा देने मे १०३ हो जाती हैं—१ औदारिकवैक्रिदबधन २ औदारिकआहारकवन्धन ३ औदारिकतैजसवन्धन, ४ औदारिककार्मणवन्धन ५ वैक्रियऔदारिकवन्धन ६ वैक्रियतैजसवन्धन ७ वैक्रियकार्मणवन्वन, ८ आहारकतैजसवन्धन, ९ आहारककार्मणवन्धन, १० तैजसकामणवन्धन। ये एक सौ तीन प्रकृतिया हैं।

७ गोत्रकर्म की प्रकृतिया १ उच्चगोत्र, २ नीचगोत्र।

८ अन्तराय की प्रकृतियां - १ दानान्तराय, २ लाभान्तराय, ३ भोगान्तराय, ४ उपभोगान्तराय, ५ वीर्यान्तराय ।

कर्मबन्ध के कारण और फल

१ ज्ञानावरणीय कर्म छह प्रकार से बधता है और दस प्रकार से भोगना पडता है १ ज्ञानी का अवर्णवाद करे अवगुण निकाले, २ ज्ञानी की निन्दा करे और उसका उपकार न माने, ३ ज्ञान मे अन्तराय डाले, ४ ज्ञान या ज्ञानी की आशातना करे, ५ ज्ञानी से द्वेष करे, ६ ज्ञानी के साथ खोटा विसवाद करे ।

इस कर्म का फल दस प्रकार का है—१ श्रोत्रइन्द्रिय का आवरण, २ श्रुतज्ञान का आवरण, ३ चक्षुरिन्द्रिय का आवरण, ४ चक्षुरिन्द्रिय से होने वाले ज्ञान का आवरण, ५ घ्राणइन्द्रिय का आवरण, ६ घ्राणज्ञान का आवरण, ७ रसनाइन्द्रिय का आवरण, ८ रसनाज्ञान का आवरण, ९ स्पर्शनेन्द्रिय का आवरण, १० स्पर्शज्ञान का आवरण ।

२ दर्शनावरणीयकर्म छह प्रकार से बधता है—१ सुदर्शनी का अवर्णवाद बोले, २ सुदर्शनी की निन्दा करे या उपकार भूले, ३ सम्यक्त्वप्राप्ति मे अन्तराय डाले, ४ सुदर्शनी की आशातना करे, ५ सुदर्शनी पर द्वेष करे, ६ सुदर्शनी के साथ विसवाद करे ।

इस कर्म के फल नौ प्रकार के है - १ निद्रा, २

निद्रानिद्रा, ३ प्रचला, ४ प्रचलाप्रचला, ५ स्त्यानगृद्धि, ६ चक्षुदर्शनावरण, ७ अचक्षुदर्शनावरण, ८ अवधिदर्शनावरण, ९ केवलदर्शनावरण ।

(३) (क) सातावेदनीय दस प्रकार से बधता है—१ द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पर दया—अनुकम्पा करे, २ वनस्पति पर अनुकम्पा करे, ३ पचेन्द्रिय पर अनुकम्पा करे, ४ चार स्थावरो पर अनुकम्पा करे, ५ उक्त जीवो को दुख न देवे, ६ शोक न करावे, ७ झुरावे नही, ८ टप टप आंसू न गिरवावे—रुलावे नही, ९ मारे नही, १० परितापना न उपजावे ।

इस कर्म का फल आठ प्रकार का है—१ मनोज्ञ शब्द, २ मनोज्ञ रूप, ३ मनोज्ञ गध, ४ मनोज्ञ रस, ५ मनोज्ञ स्पर्श, ६ मनचाहा सुख, ७ अच्छे वचन, ८ शारीरिक सुख ।

(ख) असातावेदनीय बारह प्रकार से बधता है—

१ प्राण भूत जीव सत्व को दुख देना, २ शोक कराना, ३ झुराना ४ रुलाना, ५ मारना पीटना, ६ परिता-पना उत्पन्न करना, ७ बहुत दुख देना, ८ बहुत शोक कराना, ९ बहुत झुराना, १० बहुत रुलाना, ११ बहुत मार-पीट करना, १२ बहुत परितापना करना ।

इसका फल आठ प्रकार का है—१ अमनोज्ञ शब्द, २ अमनोज्ञ रूप, ३ अमनोज्ञ गध, ४ अमनोज्ञ रस, ५ अमनोज्ञ स्पर्श, ६ अमनोज्ञ मन, ७ अमनोज्ञ वचन, ८ अमनोज्ञ काय ।

४ मोहनीयकर्म छह प्रकार से बधता है—१ तीव्र क्रोध करना, २ तीव्र मान करना, ३ तीव्र माया करना, ४ तीव्र लोभ करना, ५ तीव्र दर्शनमोहनीय, ६ तीव्र चारित्र-मोहनीय ।

यह कर्म अट्ठाईस प्रकार से भोगा जाता है वे अट्ठाईस प्रकार वही हैं जो प्रकृतियो मे गिनाये जा चुके हैं । उनमे से अनुन्तानुबधीचौकड़ी का लक्षण इस प्रकार है—

१ जैसे पत्थर पर लकीर करने मे वह मिट नही सकती है अथवा पर्वत के फटने से जो दरार होती है, उसका मिलना जितना कठिन है, उसी प्रकार जो क्रोध शान्त न हो वह अनन्तान्तुबन्धीक्रोध है । जैसे पत्थर का खभ नही नमता, वैसे ही जो मान दूर न हो, उसे अनन्ता-नुबधीमान कहते हैं । जैसे विलकुल टेढी-मेढी कठिन वास की जड़ का टेढापन मिट नही सकता है, उस प्रकार की जो माया हो, उसे अनन्तानुबधीमाया कहते हैं । जैसे किरमिची रग का छूटना दुष्कर है, उसी प्रकार जो लोभ छूट न सके उसे अनन्तानुबधीलोभ कहते है ।

इस चौकडी से नरकगति मे जाना पडता है । स्थिति य वज्जीवन की है और सम्यक्त्व का घात करती है ।

(२) अप्रत्याख्यानावरण चौकडी का लक्षण—पानी सूखने से तालाब मे जो दरार फट जाती है वह आगामी वर्ष वर्षा होने पर मिटती है, इसी प्रकार जो क्रोध विशेष परिश्रम से शान्त हो, उसे अप्रत्याख्यानावरणक्रोध कहते है ।

हाथी दान के खंभे की तरह जो बडी मुश्किल से दूर हो वह अप्रत्याख्यानावरणमान है। मेढे के सीग की तरह जो कठिनाई से मिटे, उसे अप्रत्याख्यानावरणमाया कहते हैं। जो लोभगाडी के ओगन की तरह अति कष्ट से छूटे, वह अप्रत्याख्यानावरणलोभ है।

इस चौकडी से तिर्यञ्चगति होती है। इसकी स्थिति बारह महिने की है। यह एकदेश सयम का घात करती है।

(३) प्रत्याख्यानावरणचौकडी का लक्षण—जैसे रेत मे खीची हुई लकीर बहुत काल तक नही रहती, इसी प्रकार जो क्रोध बहुत काल तक न ठहरे, उसे प्रत्याख्यानावरणक्रोध कहते है। बेत के खम्भे की तरह जिस मान को दूर करने के लिए बहुत अधिक श्रम न करना पडे, उसे प्रत्याख्यानावरणमान कहते है। चलता बैल मूतता है तो टेढी लकीरे हो जाती हैं, उनका मिटना अति कष्ट साध्य नही है, उसी प्रकार जिस माया का मिटना ऐसा कठिन न हो उसे प्रत्याख्यानावरणमाया कहते हैं। दीपक के कज्जल की तरह जो लोभ कुछ कठिनाई से छूटे उसे प्रत्याख्यानावरणलोभ कहते हैं। इससे चारो गतिया का बन्ध हो सकता है। स्थिति चार महीने की है। यह सकल सयम का घात करती है।

(४) सज्वलनचौकडी का स्वरूप—पानी मे खीची हुई लकीर की तरह जो क्रोध शीघ्र ही शान्त हो जाता है, वह सज्वलन क्रोध है। जो मान तिनके की तरह शीघ्र ही नम जाय, उसे सज्वलन मान कहते हैं। बास का छिलका जैसे

सरलता से सीधा किया जा ससता है, उसी प्रकार जो माया बिना विशेष श्रम के दूर हो जाय उसे सज्वलन माया कहते है। हल्दी के रग की तरह जो सहज ही छूट जाय उसे सज्वलनलोभ कहते है।

इस चौकडी से देवगति होती है। क्रोध की स्थिति दो महिने की, मान की एक महीने की, माया की पन्द्रह दिन की और लोभ की अन्तर्मुहूर्त की है। यह कषाय यथाख्यातचारित्र का घात करती है।

ये सोलह भेद कषाय के और पूर्वोक्त नव नोकषाय के, इस प्रकार पच्चीस प्रकार से मोहनीय भोगा जाता है।

(५) आयुकर्म सोलह प्रकार से बधता है और चार प्रकार से भोगा जाता है-(१) महा आरम्भ करने मे, (२) महापरिग्रह करने से, (३) पचेन्द्रिय की घात करने से, (४) मद्य मास का सेवन करने से नरकायु का, (५) माया करने से, (६) गूढ माया करने से, (७) असत्य बोलने से, (८) कमज्यादा नापने-तोलने से तिर्यञ्चायु का, (९) प्रकृति की भद्रता से, (१०) विनीतता से, (११)दयाभाव रखने से, (१२) मदमत्सर आदि से रहित होने से मनुष्यायु का, (१३) सरागसयम पालने से (१४) देश-सयम पालने से, (१५) बालतपस्या करने से (१६) अकामनिर्जरा करने से देवायु का बध होता है। चार प्रकार से भोगा जाता है १ नरक-आयु २ तिर्यञ्च-आयु ३ मनुष्य-आयु ४ देव आयु।

(६) नामकर्म आठ प्रकार से बधता है और अट्ठाईस

प्रकार से भोगा जाता है। नाम कर्म दो प्रकार का है—
१ शुभनामकर्म २ अशुभनामकर्म।

शुभनामकर्म चार प्रकार से बधता है—१ काय की सरलता, २ वचन की सरलता, ३ मन की सरलता, ४ ४ मद-मत्सर से रहितता। चौदह प्रकार से भोगा जाता है १ इष्ट शब्द, २ इष्ट रूप, ३ इष्ट गध, ४ इष्ट रस, ५ इष्ट स्पर्श, ६ इष्ट गति, ७ इष्ट स्थिति, ८ इष्ट लावण्य, ९ इष्ट यश कीर्ति, १० इष्ट उट्ठाण, (उत्थान) बल वीर्य पुरुषाकार पराक्रम, ११ इष्टस्वर, १२ कान्तस्वर, १३ प्रिय-स्वर १४ मनोज्ञस्वर।

अशुभनामकर्म चार प्रकार से बधता है—१ काय की वक्रता (वाकापन), २ वचन की वक्रता, ३ मन की वक्रता, ४ मद-मत्सर भावसे सहितता। चौदह प्रकार से भोगा जाता है—१ अनिष्ट शब्द २ अनिष्ट रूप, ३ अनिष्ट गध, ४ अनिष्ट रस, ५ अनिष्ट स्पर्श ६ अनिष्ट गति, ७ अनिष्ट स्थिति, ८ अनिष्ट लावण्य, ९ अनिष्ट यश कीर्ति १० अनिष्ट उट्ठाण (उत्थान) बल वीर्य पुरुषाकार पराक्रम ११ हीनस्वर, १२ दीनस्वर १३ अप्रियस्वर १४ अमनोज्ञ स्वर।

(७) गोत्रकर्म सोलह प्रकार से बधता और सोलह प्रकार से भोगा जाता है। इसके दो भेद हैं—१ उच्चगोत्र २ नीचगोत्र। उच्च गोत्र आठ प्रकार से बधता है—१

जाति[1] का मद (घमण्ड) न करना, २ कुल[2] का मद न करना, ३ बल का मद न करना, ४ रूप का मद न करना, ५ तपस्या का मद न करना, ६ श्रुत (ज्ञान) का मद न करना, ७ लाभ का मद न करना, ८ ऐश्वर्य का मद न करना। यह उच्च गोत्र आठ प्रकार से भोगा जाता है—अर्थात् इन आठ का मद न करे तो उच्चगोत्र पाता है। नीचगोत्र कर्म आठ प्रकार से बधता औ आठ प्रकार से भोगा जाता है—पूर्वोक्त जाति, कुल, बल, रूप, तप श्रुत, लाभ, ऐश्वर्य का घमण्ड करने से बधता है और इनका घमण्ड करने से नीचगोत्र की प्राप्ति होती है अर्थात् आठ प्रकार से भोगा जाता है।

(८) अन्तरायकर्म पाच प्रकार से बधता और पाच प्रकार से भोगा जाता है—अर्थात् दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य मे अन्तराय डालने से बधता है और इसमे पाचों अन्तरायो की प्राप्ति होती है।

कर्मो की स्थिति और आवाधाकाल[3]

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय की ज०

१ मातृपक्ष को जाति कहते हैं।
२ पितृपक्ष को कुल कहते हैं।

३ कर्मबन्ध होने के प्रथम समय से लेकर जब तक उस कर्म का उदय या उदीरणा नही होती तब तक के काल को आवाधाकाल कहते हैं।

स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उ० तीस कोडाकोडी सागरोपम की है। आवाधाकाल तीन हजार वर्ष का है। सातावेदनीय की जघन्य स्थिति इरियावहियाक्रिया की अपेक्षा दो समय की और उत्कृष्ट पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम की है। आवाधाकाल डेढ हजार वर्ष का है। असातावेदनीय की ज० स्थिति एक सागर के सात भागो मे से तीन भाग, और पल्योपम से असख्यात भाग कम की और उ० तीस कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका आवाधाकाल तीन हजार वर्ष का है। मोहनीय कर्म की ज० स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उ० सत्तर कोडाकोडी सागरोपम की है। आवाधाकाल सात हजार वर्ष का है। नारकी तथा देवो के आयुकर्म की स्थिति ज० दस हजार वर्ष की, उ० तेतीस सागरोपम की, मनुष्य और तिर्यञ्च के आयुकर्म की ज० स्थिति अन्तर्मुहूर्त की, उ० करोड पूर्व के तीसरे भाग अधिक तीन पल्योपम की। नामकर्म की ज० स्थिति आठ मुहूर्त की उ० वीस कोडाकोडी सागरोपम की और आवाधाकाल दो हजार वर्ष का है। गोत्रकर्म की ज० स्थिति आठ मुहूर्त की, उ० वीस कोडाकोडी सागरोपम की तथा आवाधाकाल दो हजार वर्ष का है।

४. दृष्टि का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, १९ वा पद)

हे भगवन् ! जीव क्या सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि अथवा मिश्रदृष्टि होता है ? हे गौतम ! जीव सम्यग्दृष्टि होता है, मिथ्यादृष्टि होता है और मिश्रदृष्टि भी होता है। सात नारकी के नैरयिक, दस भवनपति, तिर्यंचपचेन्द्रिय, मनुष्य, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक – इन सोलह दडक मे तीनो दृष्टिया पाई जाती है । पाच स्थावर मिथ्यादृष्टि होते हैं । तीन विकलेन्द्रिय और नवग्रैवेयक सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि होते है । पाच अनुतरविमान और सिद्ध भगवान् सम्यग्दृष्टि होते है ।

—❀—

५. अन्तक्रिया का थोकड़ा

(पन्नवणासूत्र, २० वा पद)

नेरइय अन्तकिरिया, अणतर एग समय उव्वट्टा ।
तित्थगर चक्कि बलदेव, वासुदेव मडलिय रयणा ।।

इस थोकडे में नैरयिक आदि चौबीस दडको में सामान्य रूप से अन्तक्रिया (मोक्ष) का विचार अनन्तरागत और परम्परागत अन्तक्रिया का वर्णन है । इसके बाद, एक समय में कितने जीव अन्तक्रिया करते हैं, यह बताया गया है । तदनन्तर चौबीस दडक से निकलकर जीव कहाँ

उत्पन्न होते हैं तथा कहा से निकले हुए जीव तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, माडलिक राजा तथा चक्रवर्ती के एकेन्द्रिय रत्न और पचेन्द्रिय रत्न होते हैं, इसका वर्णन किया गया है ।

१ हे भगवन् ! क्या समुच्चय जीव अन्तक्रिया करते है ? हे गौतम ! कोई जीव अन्तक्रिया करता है, कोई नही करता । इसी तरह चौबीस दडक के जीवो के लिए कहना कि कोई अन्तक्रिया करता है, कोई नही करता ।

२ हे भगवन् ! चौवीस दडक से निकलते हुए जीव क्या मनुष्य के सिवाय तेवीस दडको मे रह कर अन्तक्रिया करते है ? हे गौतम ! नही करते । मनुष्य के दडक मे भी कोई अन्तक्रिया करता है, कोई नही करता ।

३ हे भगवन् ! समुच्चय जीव क्या अनन्तरागत अन्तक्रिया करते है या परम्परागत अन्तक्रिया करते हैं ? कोई अनन्तरागत अन्तक्रिया करते हैं, कोई परम्परागत अन्तक्रिया करते हैं । पहली नरक से चौथी नरक के निकले हुए अनन्तरागत अन्तक्रिया करते हैं और परम्परागत अन्तक्रिया भी करते है पाचवी से सातवी नरक के निकले हुवे अनन्तरागत अन्तक्रिया नहीं करते । परम्परागत अन्तक्रिया भी कोई करता है, कोई नही करता । भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव तथा पृथ्वी, पानी, वनस्पति, सज्ञी तिर्यंच पचेन्द्रिय और सज्ञी मनुष्य के निकले हुए अनन्तरागत अन्तक्रिया करते हैं और परम्परागत अन्तक्रिया भी करते हैं । अग्नि, वायु और तीन विकलेन्द्रिय के निकले हुए

जीव अनन्तरागत अन्तक्रिया नही करते । परम्परागत अन्तक्रिया भी कोई करता है, कोई नही करता ।

४ चौबीस दडक से निकल कर मनुष्य मे आकर एक समय मे सिद्ध होने वालो की सख्या—नरक से निकले हुए एक समय मे जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट दस सिद्ध होते है । पहली, दूसरी और तीसरी नरक से निकले हुए एक समय मे जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट दस सिद्ध होते है । चौथी नरक से निकले हुए एक समय मे जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट चार सिद्ध होते है । पाचवी नरक से निकले हुए सिद्ध नही होते, मन पर्यवज्ञ नी होते है । छठी नरक से निकले हुए सिद्ध नही होते, अवधिज्ञानी होते है । सातवी नरक से निकले हुए भी सिद्ध नही होते, सम्यग्दृष्टि होते है । भवनपति और व्यतर देवो से निकले हुए एक समय मे जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट दस सिद्ध होते है और भवनपति तथा व्यतर की देवियो से निकले हुए एक समय मे जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट पाच सिद्ध होते है । पृथ्वी, पानी से निकले हुए एक समय मे जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट चार सिद्ध होते है और वनस्पति से निकले हुए एक समय मे जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट छह सिद्ध होते है । अग्नि और वायु से निकले हुए सिद्ध नही होते, ये मिथ्यादृष्टि होते है । तीन विकलेन्द्रिय से निकले हुए सिद्ध नही होते, मन पर्यवज्ञानी हो सकते हैं । तिर्यचपचेन्द्रिय और तिर्यच स्त्री से निकले हुए एक समय मे जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट दस सिद्ध होते है । मनुष्य से निकले हुए एक समय मे जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट १०८ सिद्ध होते है । मनुष्य स्त्री से निकले हुए

एक समय मे जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट वीस सिद्ध होते है। ज्योतिपी से निकले हुए एक समय मे जघन्य एक, दो, तीन उत्कृष्ट दस सिद्ध होते हैं और ज्योतिषी देवियो मे निकले हुए एक समय मे जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट वीस सिद्ध होते हैं। वैमानिक देवो से निकले हुए एक समय मे जघन्य एक, दो, तीन, उत्कृष्ट १०८ सिद्ध होते हैं और वैमानिक देवियो से निकले हुए एक समय मे जघन्य एक, दो, तीन उत्कृष्ट वीस सिद्ध होते है।

५ नरक से निकले हुए बाईस दडक मे उत्पन्न नही होते, दो दडक—तिर्यचपचेन्द्रिय और मनुष्य मे उत्पन्न होते है। नरक से निकल कर तिर्यंचपचेन्द्रिय मे उत्पन्न होने वालो मे किन्ही को केवली प्ररूपित धर्म सुनने को मिलता है, किन्ही को नही मिलता। जिन्हे केवली प्ररूपित धर्म सुनने को मिलता है, उनमे से किन्ही को बोध होता है, किन्ही को नही होता। जिनको बोध होता है, उनमे से किन्ही को श्रद्धा, प्रतीति, रुचि उत्पन्न होती है, किन्ही को उत्पन्न नही होती। जिन्हे श्रद्धा, प्रतीति, रुचि उत्पन्न होती है उन्हे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान उत्पन्न होने पर कई शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यान, पोषध अङ्गीकार करते हैं और कई नही करते। जो शीलव्रत यावत् प्रत्याख्यान, पोषध अङ्गीकार करते हैं, उनमे से किन्ही को अवधिज्ञान उत्पन्न होता है, किन्ही को नही होता। अवधिज्ञान प्राप्त करने वाले तिर्यंच पचेन्द्रिय क्या प्रव्रज्या अङ्गीकार कर साधु बन सकते हैं? नही, वे साधु नही बन सकते।

नरक से निकल कर मनुष्य मे उत्पन्न होने वालो मे कई एक तिर्यंचपचेन्द्रिय की तरह केवली प्ररूपित धर्म को सुनते यावत् अवधिज्ञान प्राप्त करते हैं । अवधिज्ञान प्राप्त करने वालो मे कई एक प्रव्रज्या अङ्गीकार कर साधु बनते है, और कई एक नही बनते । साधु बनने वालो मे कई एक मन पर्यवज्ञान प्राप्त नही करते । मन पर्यवज्ञान प्राप्त करने वालो मे किन्ही को केवलज्ञान होता है, किन्ही को नही होता । जिन्हे केवलज्ञान होता है वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होकर सभी दु खो का अ त करते हैं ।

भवनपति देवता मे से निकल कर पृथ्वी, पानी, वनस्पति, तिर्यंचपचेन्द्रिय और मनुष्य- इन पाच दडक मे उत्पन्न होते है । पृथ्वो, पानी और वनस्पति मे उत्पन्न होने वालो को केवली प्ररूपित धर्म सुनने को नही मिलता । जो तिर्यंचपचेन्द्रिय और मनुष्य मे उत्पन्न होते है, उनके लिए जैसा ऊपर नरक मे कहा उस तरह कह देना यावत् सिद्ध, मुक्त होकर सभी दु खो का अन्त करते है ।

पृथ्वी, पानी और वनस्पति से निकले हुए जीव पाच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय, और मनुष्य— इन दस दडक मे उत्पन्न होते है, शेष चौदह दडक में उत्पन्न नही होते । जो पाच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय मे उत्पन्न होते है, उन्हे केवली प्ररूपित धर्म सुनने को नही मिलता । जो तिर्यंचपचेन्द्रिय और मनुष्य मे उत्पन्न होते उनका अधिकार जैसा ऊपर नरक मे कहा, उस तरह कहना यावत् सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होकर सभी दुखो का अन्त करते है ।

अग्नि और वायु से निकले हुए पाच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय और तिर्यंचपचेन्द्रिय—इन नौ दडक मे उत्पन्न होते है, शेष पद्रह दडक मे उत्पन्न नही होते। जो पाच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय मे उत्पन्न होते है उन्हे केवलीप्ररूपित धर्म सुनने को नही मिलता। जो तिर्यंच-पचेन्द्रिय मे उत्पन्न होते है उनमे से किन्ही को केवली-प्ररूपित धर्म सुनने को मिलता है, किन्ही को नही मिलता। केवलीप्ररूपित धर्म सुनने का अवसर मिलने पर भी इन्हे बोध नही होता, क्योंकि ये मिथ्यादृष्टि होते है।

तीन विकलेन्द्रिय मे से निकले हुए जीव भी पृथ्वी, पानी, वनस्पति की तरह दस दडक मे उत्पन्न होते हैं, चौदह दडक मे उत्पन्न नही होते। इनका अधिकार पृथ्वी, पानी, वनस्पति की तरह कहना, किंतु इतना अतर है कि साधु बनने पर इन्हे मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होता है किंतु केवलज्ञान उत्पन्न नही होता।

सज्ञी तिर्यंचपचेन्द्रिय से निकले हुए जीव चौबीस ही दडक मे उत्पन्न होते हैं। सज्ञी तिर्यंचपचेन्द्रिय मे से निकल कर नरक, भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक—इन चौदह दडक मे जो उत्पन्न होते है, उनमे से किन्ही को केवलीप्ररूपित धर्म सुनने को मिलता है, किन्ही को नही मिलता। जिन्हे केवलीप्ररूपित धर्म सुनने को मिलता है, उनमे से कई समझते हैं, कई नही समझते। जो समझते हैं उनमे से किन्ही को श्रद्धा प्रतीति रुचि उत्पन्न होती है और मति श्रुत अवधिज्ञान की प्राप्ति होती है और किन्ही को श्रद्धा प्रतीति रुचि उत्पन्न नही होती तथा

मति श्रुत अवधि ज्ञान की भी प्राप्ति नही होती । जिन्हें मति श्रुत अवधि ज्ञान की प्राप्ति होती है वे भी शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण व्रत, प्रत्याख्यान और पौषध अगीकार नही करते । सज्ञी तिर्यंचपचेन्द्रिय से निकल कर जो पाच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय मे उत्पन्न होते है उन्हे केवली-प्ररूपित धर्म सुनने को नही मिलता । जो सज्ञी तिर्यंच-पचेन्द्रिय और मनुष्य मे उत्पन्न होते है, उनका अधिकार नरक की तरह कहना ।

मनुष्य से निकले हुए चौबीस ही दडक मे उत्पन्न होते है । ऊपर तिर्यंचपचेन्द्रिय का अधिकार कहा, उसी तरह यहा भी कहना ।

व्यन्तर मे निकल कर तथा ज्योतिपी और पहले देवलोक से चव कर पृथ्वी, पानी, वनस्पति, तिर्यंचपचेन्द्रिय और मनुष्य—इन पाच दडक मे उत्पन्न होते हैं । उन्नीस दडक मे उत्पन्न नही होते । इनका अधिकार भवनपति की तरह कहना ।

तीसरे देवलोक से आठवे देवलोक के देवता चवकर तिर्यंचपचेन्द्रिय और मनुष्य मे उत्पन्न होते है, शेप बाईस दडक मे उत्पन्न नही होते । इनका अधिकार नरक की तरह कहना । नवे देवलोक मे सर्वार्थसिद्ध के देवता च्यव कर केवल मनुष्य मे उत्पन्न होते है, तेईस दडक मे उत्पन्न नही होते । इनका अधिकार भी नरक की तरह कहना ।

६ पहली दूसरी तीसरी नरक से निकले हुए क्या तीर्थंकर पदवी प्राप्त करते है ? कोई तीर्थंकर पदवी पाते

हैं, कोई नही पाते । इसी तरह बारह देवलोक, नौ लोकान्तिक, नौ ग्रैवेयक, पाच अनुत्तर विमान से च्यवे हुए कोई तीर्थंकर पदवी पाते हैं, कोई नही पाते । चौथी नरक से सातवी नरक तक के निकले हुए तथा भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और दस दडक औदारिक से निकले हुए तीर्थंकर पदवी नही पाते ।

७ पहली नरक से निकले हुए क्या चक्रवर्ती की पदवी पाते है ? कोई पाते है, कोई नही पाते । दूसरी नरक से सातवी नरक तक के निकले हुए तथा औदारिक के दस दडक मे से निकले हुए चक्रवर्ती की पदवी नही पाते । भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक से निकले हुए कोई चक्रवर्ती की पदवी पाते है, कोई नही पाते ।

८ पहली दूसरी नरक से निकले हुए क्या बलदेव की पदवी पाते है ? कोई पाते है, कोई नही पाते । भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक से निकले हुए कोई बलदेव की पदवी पाते है, कोई नही पाते । तीसरी नरक से सातवी नरक तक के निकले हुए तथा औदारिक के दस दडक से निकले हुए बलदेव की पदवी नही पाते ।

९ पहली दूसरी नरक से निकले हुए क्या वासुदेव की पदवी पाते है ? कोई पाते है, कोई नही पाते । तीसरी नरक से सातवी नरक तक के निकले हुए, औदारिक के दस दडक से निकले हुए तथा भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और पाच अनुत्तर विमान से निकले हुए वासुदेव की पदवी

नही पाते । बारह देवलोक, नौ लोकान्तिक और नौ ग्रैवे-यक से च्यवे हुए कोई वासुदेव की पदवी पाते है, कोई नही पाते ।

१० पहली से छठी नरक तक के निकले हुए, भव-नपति, व्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिक से निकले हुए तथा पृथ्वी, पानी, वनस्पति, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच-पचेन्द्रिय, एव मनुष्य से निकले हुए क्या माडलिकराजा की पदवी पाते है ? कोई पाते है कोई नही पाते । सातवी नरक और अग्नि तथा वायु से निकले हुए माडलिकराजा की पदवी नही पाते ।

११ चक्रवर्ती के चौदह रत्न होते है—सात एकेन्द्रिय रत्न और सात पचेन्द्रिय रत्न । पचेन्द्रिय रत्न के नाम—सेनापति, गाथापति, बढई, पुरोहित, अश्व, हस्ती और श्री देवी । एकेन्द्रिय रत्न के नाम –चक्र, छत्र, चर्म, दड, असि, मणि और काकिणीरत्न ।

पहली नरक से छठी नरक तक के निकले हुए क्या पचेन्द्रिय रत्न होते है ? कोई होते है, कोई नही होते । जो होते है वे सातो पचेन्द्रिय रत्न हो सकते है । सातवी नरक से निकले हुए कोई पचेन्द्रियरत्न होते है, कोई नही होते । जो होते है वे अश्वरत्न और हस्तीरत्न होते है । भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी तथा पहले से आठवे देवलोक तक के निकले हुए कोई पचेन्द्रियरत्न होते है, कोई नही होते । जो होते है वे सातो पचेन्द्रियरत्न हो सकते है । नवे देवलोक से नवग्रैवेयक तक के च्यवे हुए कोई पचेन्द्रिय-

रत्न होते है, कोई नही होते। जो होते हैं वे अश्वरत्न और हस्ती रत्न के सिवाय पाच पचेन्द्रियरत्न हो सकते हैं। पृथ्वी, पानी, वनस्पति, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच-पचेन्द्रिय और मनुष्य मे से निकले हुए कोई पचेन्द्रियरत्न होते हैं, कोई नही होते। जो होते है वे सातो पचेन्द्रिय-रत्न हो सकते हैं। अग्नि और वायु मे से निकले हुए कोई पचेन्द्रिय होते हैं, कोई नही होते। जो होते हैं वे अश्वरत्न और हस्तीरत्न होते हैं। पाच अनुत्तर विमान से च्यवे हुए पचेन्द्रियरत्न नही होते।

पहली नरक से सातवी नरक तक के निकले हुए क्या चक्रवर्ती के एकेन्द्रिय रत्न होते है? नहीं होते। पाच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यचपचेन्द्रिय, मनुष्य तथा भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक से निकले हुए कोई चक्रवर्ती के एकेन्द्रिय रत्न होते हैं, कोई नही होते। जो होते है वे सातो एकेन्द्रिय रत्न हो सकते हैं। तीसरे देवलोक से लेकर सर्वार्थसिद्ध तक के च्यवे हुए चक्रवर्ती के एकेन्द्रिय रत्न नही होते।

---

६. परमाणु का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, शतक बीसवा, उद्देशा पाचवां)

१—अहो भगवन्! परमाणु पुद्गल कितने प्रकार

का है ? हे गौतम ! परमाणु पुद्गल ४ प्रकार है—१❀ द्रव्यपरमाणु,+२ क्षेत्रपरमाणु, ३ कालपरमाणु, ४ भावपरमाणु ।

२—अहो भगवन् ! द्रव्यपरमाणु, कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! द्रव्यपरमाणु चार प्रकार है—१ अछेद्य (जिसका छेदन न किया जा सके), २ अभेद्य (जिसका भेदन न किया जा सके), ३ अदाह्य (जो जलाया न जा सके), ४ अग्राह्य (जो पकडा न जा सके) ।

३—अहो भगवन् ! क्षेत्रपरमाणु कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! क्षेत्र परमाणु चार प्रकार का है, १—

❀ वर्णादि धर्म की विवक्षा रहित एक परमाणु को द्रव्यपरमाणु कहते है, क्योकि यहा पर सिर्फ द्रव्य की ही विवक्षा है ।

+ एक आकाशप्रदेश को क्षेत्रपरमाणु कहते हैं । एक समय को कालपरमाणु कहते है । एक गुण काल आदि को भावपरमाणु कहते हैं ।

— १ परमाणु मे समसख्या वाले अवयव नही है । इसलिये अनर्ध (जिसका आधा भाग न हो सके) कहलाता है ।

२ परमाणु मे विषमसख्या वाले अवयव नही है, इसलिये अमध्य कहलाता है ।

अनर्घ, २ अमध्य, ३ अप्रदेश, ४ अविभाग ।

४—अहो भगवन् ! कालपरमाणु कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! कालपरमाणु चार प्रकार का है—१ अवर्ण, २ अगन्ध, ३ अरस, ४ अस्पर्श ।

५—अहो भगवन् ! भावपरमाणु कितने प्रकार है ? हे गौतम ! भावपरमाणु चार प्रकार का है—(१) वर्ण वाला, (१) गन्धवाला, (३) रसवाला, (४) स्पर्शवाला ।

---

७. तीन वध का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक वीसवा, उद्देशा सातवाँ)

१—अहो भगवन् ! वन्ध कितने प्रकार का है ?

---

३ परमाणु मे प्रदेश नही है, इसलिये अप्रदेश कहलाता है ।

४ परमाणु का विभाग नहीं हो सकता है, इसलिये उसे अविभाग कहते हैं ।

हे गौतम ! बन्ध तीन प्रकार का है—१✽जीवप्रयोगबन्ध, २ अनन्तरबन्ध, ३ परम्परबन्ध ।

२—इन तीन प्रकार के बन्ध मे पाये जाने वाले ५५ बोल—कर्मबन्ध ८, कर्मउदय ८, वेद ३, दर्शनमोहनीय १, चारित्रमोहनीय १, +शरीर ५, सज्ञा ४, लेश्या ६, दृष्टि ३,

---

✽ १—जीव के प्रयोग से अर्थात मन वचन काया की प्रवृत्ति से आत्मा के साथ कर्मपुद्गलो का जो सम्बन्ध होता है, उसे जीवप्रयोगबन्ध कहते है ।

२—कर्मपुद्गलो का बन्ध होने के बाद के (अन्तर-रहित) समय मे जो बन्ध होता है उसको अनन्तरबन्ध कहते है ।

३—कर्मपुद्गलो का बन्ध होने के बाद द्वितीयादि समय मे जो बन्ध होता है, उसको परम्परबन्ध कहते है । अर्थात् बीच मे एक या दो समय आदि का अन्तर पड के बन्ध होता है, उसको परम्परबन्ध कहते है ।

+ कर्म का आत्मा के साथ सम्बन्ध होना बन्ध है, ऐसा पहले कहा है किन्तु यहा कर्मपुद्गल अथवा अन्य पुद्गलो का आत्मा के साथ जो सम्बन्ध, उसे बन्ध समझना चाहिये तभी औदारिकादि शरीर आहारादि सज्ञा जनक कर्म और कृष्णादि लेश्या का बन्ध होना सभव है ।

फिर भी यह शका हो सकती है कि दृष्टि, ज्ञान, अज्ञान और उसके विषय का बन्ध कैसे होता है ? क्योकि

ज्ञान ५, अज्ञान ३, ज्ञान का विषय ५, अज्ञान का विषय ३, ये कुल मिलाकर ५५ वोल हुए। समुच्चय जीव मे ये ५५ ही वोल पाये जाते है। नारकी मे ४४ वोल पाये जाते है (ऊपर कहे हुए ५५ मे से २ वेद, २ शरीर, ३ लेश्या, २ ज्ञान, २ ज्ञान के विषय, ये ११ वोल कम हो गये। भवनपति देव और वाणव्यन्तर देवो मे ४६ वोल पाये जाते है। (ऊपर ४४ कहे गये है, उनमे मे एक नपुंसक वेद कम हो गया। २ वेद और एक लेश्या, ये ३ वोल वढ गये)। ज्योतिषी देवो मे ४३ वोल पाये जाते हैं (ऊपर ४६ कहे गये हैं, उनमे से ३ लेश्या कम हो गई) वैमानिक देवो मे ४५ वोल पाये जाते हैं (ऊपर ४३ वोल कहे गये है, उनमे २ लेश्या वढ गई)। पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय मे ३५ वोल पाये जाते हैं (कर्मवन्ध ८, कर्म-उदय ८, वेद १, दर्शनमोहनीय १, चारित्रमोहनीय १, शरीर ३, सज्ञा ४, लेश्या ४, दृष्टि १, अज्ञान २, अज्ञान का विषय २, ये सब ३५ हुए। तेजस्काय मे ३४ वोल पाये जाते है (ऊपर कहे गये ३५ वोलो मे से १ लेश्या कम हो गई)। वायुकाय मे ३५ वोल पाये जाते है (ऊपर कहे हुए ३४ वोलो मे १ शरीर वढा)। तीन विकलेन्द्रिय मे ३९ वोल पाये जाते हैं (ऊपर कहे हुए ३४ वोलो मे १ दृष्टि, २ ज्ञान, २ ज्ञान के विषय, ये ५ वोल वढ गये)।

ये सभी अपौद्गलिक है। उत्तर इस प्रकार है—यहां वन्ध का अर्थ केवल सम्बन्ध विवक्षित है। इसलिये सम्यग्दृष्टि आदि का जीवप्रयोगादि वन्ध घटित हो जाता है।

तिर्यंचपचेन्द्रिय मे ५० बोल पाये जाते है (५५ बोल मे मे १ शरीर, २ ज्ञान, २ ज्ञान के विषय, ये ५ बोल कम हो गये)। मनुष्य मे ५५ बोल पाये जाते है।

२४ ही दण्डक मे जितने-जितने बोल पाये जाते है, उन सब मे प्रत्येक मे जीवप्रयोगबन्ध, अनन्तरबन्ध और परम्परबन्ध ये तीनो बन्ध पाये जाते है।

ΔΔ

८. कर्मभूमि का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक बीसवा, उद्देशा आठवां)

१—अहो भगवन्! कर्मभूमि कितनी है? हे गौतम! १५ कर्मभूमि है—५ भरत, ५ एरवत, ५ महाविदेह।

२ अहो भगवन्! अकर्मभूमि कितनी है? हे गौतम! अकर्मभूमि ३० है—५ हैमवत (हेमवय), ५ हैरण्यवत (हेरन्नवय), ५ हरिवर्ष (हरिवास), ५ रम्यक-वर्ष (रम्मकवास), ५ देवकुरु, ५ उत्तरकुरु।

३—अहो भगवन्! क्या तीस अकर्मभूमियो मे उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी काल है? हे गौतम! नही है।

४ अहो भगवन्! क्या पाच भरत और पाच ऐरवत क्षेत्र मे उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी काल है? हा गौतम! है।

५—अहो भगवन् ! क्या पाच महाविदेह क्षेत्र मे उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी काल है ? हे गौतम ! पाच महाविदेहक्षेत्र मे उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल नही है। वहा अवस्थित काल है।

६—अहो भगवन् ! क्या पाच महाविदेहक्षेत्र मे अरिहन्त भगवान्, पाच महाव्रत रूप धर्म और प्रतिक्रमण सहित धर्म का उपदेश देते हैं ? हे गौतम ! ऐसा नही है, परन्तु पाच भरत और पाच एरवत क्षेत्रो मे पहले और अन्तिम तीर्थकर पाच महाव्रत रूप धर्म और प्रतिक्रमण सहित धर्म का उपदेश करते है, बीच के बाईस तीर्थंकर चार महाव्रत रूप धर्म का उपदेश करते है और महाविदेह क्षेत्र मे भी तीर्थंकर भगवान् चार महाव्रत रूप धर्म का ही उपदेश करते है।

कर भगवान् के अन्तर मे ❀ कालिकश्रुत (कालिकसूत्र) का विच्छेद कहा है ? हे गौतम ! पहले के आठ और अन्तिम के आठ जिनान्तरो मे (तीर्थंकर के बीच के आन्तरो मे) कालिकश्रुत का विच्छेद नही कहा है, किन्तु बीच के सात आन्तरो मे कालिकश्रुत का विच्छेद कहा है। दृष्टिवाद का विच्छेद तो सभी अन्तरो मे(तेईस ही अन्तरो मे) कहा है।

१०—अहो भगवन् ! इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे इस अवसर्पिणीकाल मे आपके पूर्वों का ज्ञान कितने काल तक रहेगा ? गौतम ! एक हजार वर्ष तक रहेगा।

११—अहो भगवन् ! इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे इस अवसर्पिणीकाल मे तेईस तीर्थंकरो के पूर्वों का ज्ञान कितने काल तक रहा था ? हे गौतम ! कितने तीर्थंकरो

❀ जिस सूत्र का स्वाध्याय दिन और रात्रि के पहले और अन्तिम पहर मे ही किया जा सकता हो, उसे कालिकश्रुत कहा गया है। जैसे आचाराङ्ग आदि २३ सूत्र(११ अङ्गसूत्र, ५ निरयावलिका, ४ छेदसूत्र, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, उत्तराध्ययन)।

जिस सूत्र का स्वाध्याय सभी समय (अस्वाध्याय के समय को छोडकर) किया जा सकता हो, उसे उत्कालिकश्रुत कहते हैं। जैसे दशवैकालिक आदि ९ सूत्र (उववाई, रायप्रश्नीय, जीवाभिगम, पन्नवणा, दशवैकालिक, नन्दीसूत्र, अनुयोगद्वार सूत्र, सूर्यप्रज्ञप्ति, आवश्यकसूत्र)।

के पूर्वो का ज्ञान संख्यात काल तक और कितने तीर्थंकरो के पूर्वो का ज्ञान असख्यात काल तक रहा था ।

१२—अहो भगवन् ! इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे इस अवसर्पिणीकाल मे आपका तीर्थ (शासन) कितने काल तक रहेगा ? हे गौतम ! इक्कीस हजार वर्ष तक रहेगा ।

१३—अहो भगवन् ! इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे जो आगे तीर्थंकर होंगे, उनमे से अन्तिम तीर्थंकर का तीर्थ कितने काल तक रहेगा ? हे गौतम ! एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व वर्ष तक रहेगा ।

१४—अहो भगवन् ! तीर्थ को तीर्थ कहते है या तीर्थंकर को तीर्थ कहते है ? हे गौतम ! अरिहन्त भगवान् तो नियमा-निश्चित रूप से) तीर्थंकर होते है तीर्थ नही । साधु, साध्वी, श्रावक श्राविका ये चार 'तीर्थ' कहलाते हैं ।

१५-अहो भगवन् ! क्या प्रवचन प्रवचन है अथवा प्रवचनी (प्रवचन या उपदेशक) प्रवचन है ? हे गौतम ! अरिहन्त भगवान् तो नियमा (अवश्य) प्रवचनी है और द्वादशांग गणिपिटक (आचारांग से लेकर दृष्टिवाद तक १२ अंग सूत्र) प्रवचन है ।

करते है ? हा, गौतम ! सिद्ध होते हैं यावत् सब दुखो का अन्त करते है । कितनेक (जिनके कर्म बाकी रह जाते है) देवलोको मे उत्पन्न होते है ।

१७—अहो भगवन् ! देवलोक कितने प्रकार के है ? हे गौतम ! भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक, ये चार प्रकार के देवलोक है ।

—✽—
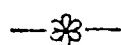
६. विद्याचारण, जंघाचारण लब्धि का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक बीसवा, उद्देशा नौवा)

१—अहो भगवन् ✽चारण कितने प्रकार के है ? हे गौतम ! चारण दो प्रकार के होते है—विद्याचारण और जघाचारण ।

✽लब्धि के द्वारा आकाश मे अतिशय गमन करने की शक्तिवाले मुनि को चारण कहते है । चारण के दो भेद है—विद्याचारण और जघाचारण । विद्या के द्वारा अर्थात् पूर्वो के ज्ञान द्वारा जिस मुनि को अतिशय गमन करने की लब्धि प्राप्त होती है, उसे विद्याचारण कहते है । जिस मुनि को जघा द्वारा अतिशय गमन करने की लब्धि प्राप्त होती है, उसे जघाचारण कहते है ।

२—अहो भगवन् ! उनको 'विद्याचारण' क्यों कहते हैं ? हे गौतम ! निरन्तर बेले-बेले तपस्या करने से और पूर्वो के ज्ञान द्वारा उत्तरगुणलब्धि (तपोलब्धि) को प्राप्त हुए मुनि को 'विद्याचारण' नामक लब्धि उत्पन्न होती है। इसलिये उनको 'विद्याचारण' कहते हैं।

३- अहो भगवन् ! विद्याचारण की कैसी शीघ्रगति होती है ? उसकी गति का विषय कैसा शीघ्र होता है ? हे गौतम ! इस जम्बूद्वीप की परिधि तीन लाख, सोलह हजार, दो सौ सत्ताईस योजन, तीन गाऊ (कोस), एक सौ अट्ठाईस धनुष, साढ़ी तेरह अंगुल झाझेरी (कुछ अधिक) है। कोई महर्द्धिक देव तीन चिमटी बजावे उतने में इस जम्बूद्वीप की तीन बार परिक्रमा करके वापिस शीघ्र आवे। इसी तरह की शीघ्रगति विद्याचारण की है। इस प्रकार उसकी गति का विषय शीघ्र है।

४—अहो भगवन् ! विद्याचारण के तिरछा जाने का विषय कितना है ? हे गौतम ! एक उत्पात (उड़ान) में मानुषोत्तर पर्वत पर समवसरण (स्थिति, विश्राम) करते हैं, दूसरे उत्पात में नन्दीश्वरद्वीप में समवसरण करते हैं। वहां से वापिस एक ही उत्पात से यहां आकर समवशरण करते हैं।

६—अहो भगवन् ! जघाचारणलब्धि कैसे प्राप्त होती है ? हे गौतम ! शास्त्र मे कही हुई विधि के अनुसार तेले-तेले पारणा करने से जघाचारणलब्धि की प्राप्ति होती है ।

७—अहो भगवन् ! जघाचारण की कैसी शीघ्र गति होती है ? हे गौतम ! कोई महर्द्धिक देव तीन चिमटी बजावे उतने मे इस जम्बूद्वीप की २१ बार परिक्रमा करके वापिस शीघ्र लौट आवे इस तरह की शीघ्र गति जघाचारण की है । इस प्रकार उसकी गति का विषय शीघ्र है ।

८ अहो भगवन् ! जघाचारण के तिरछा जाने का विषय कितना है ? हे गौतम ! वे एक उत्पात से रुचकवरद्वीप मे जाकर समवसरण करते है । वहा से वापिस आते समय एक उत्पात से नन्दीश्वर द्वीप मे समवसरण करते है और दूसरे उत्पात से वे यहा आकर समवसरण करते है ।

९—अहो भगवन् ! जघाचारण के ❀ उर्ध्वगमन (ऊचा

❀ विद्याचारण का गमन दो उत्पात से होता है और आगमन एक उत्पात से होता है । जघाचारण का गमन एक उत्पात से और आगमन दो उत्पात से होता है । इन लब्धियो का ऐसा ही स्वभाव है ।

इस विषय मे दूसरे आचार्यो का मत इस प्रकार है—

जाने) का विषय कितना है ? हे गौतम ! वे एक उत्पात द्वारा पण्डुकवन में समवसरण करते हैं। वहां से वापिस आते समय एक उत्पात से नन्दनवन में समवसरण करते हैं। दूसरे उत्पात से स्वस्थान पर आ जाते हैं*।

दोनों प्रकार की लब्धि वाले मुनि इस विषय की आलोचना, प्रतिक्रमण कर लेवे तो आराधक होते हैं और आलोचना, प्रतिक्रमण किये बिना ही काल कर जायें (मृत्यु को प्राप्त हो जाय) तो आराधक नहीं होते हैं।

उपपत्तया विद्याचारण की विद्या जाते समय मन्द अभ्यास वाली होती है। इसलिए गमन दो उत्पात द्वारा होता है। उनकी विद्या आते समय तेज अभ्यास वाली होती है इसलिए आगमन एक ही उत्पात द्वारा होता है।

जंघाचारण की लब्धि ज्यों-ज्यों उपयोग में आती है, त्यों-त्यों वह अल्प सामर्थ्य वाली हो जाती है। इसलिए उनका गमन एक उसका गमन एक उत्पात द्वारा होता है और आगमन दो उत्पात द्वारा होता है।

*विद्याचारण और जंघाचारण लब्धि वाले मुनि नन्दीश्वर द्वीप, रुचकद्वीप, पण्डुकवन में गये हों, ऐसा शास्त्रपाठ में कहीं वर्णन नहीं आता है। वहां पर सिर्फ उनकी तिरछा जाने और ऊंचा जाने की शक्ति के विषय के प्रश्नोत्तर हैं।

१०. सोपक्रमी निरूपक्रमी का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक वीसवा, उद्देशा दसवा)

१—अहो भगवन् ! आयुष्य के कितने भेद है ? हे गौतम ! आयुष्य के दो भेद है—सोपक्रमी और निरुपक्रमी ।

२ अहो भगवन् ! सोपक्रमी और निरुपक्रमी आयुष्य किसे कहते है ? हे गौतम ! जो आयुष्य*अध्यवसान, निमित्त आदि सात कारणो से अप्राप्तकाल मे (वीच मे) ही टूट जाय, क्षय हो जाय, उसको सोपक्रमी कहते है ।

---

* १–अध्यवसान अर्थात् राग, स्नेह या भय रूप प्रवल मानसिक आघात पहुचाना ।

२–निमित्त- शास्त्र, दण्ड आदि का निमित्त मिलना ।

३–आहार अधिक आहार करना ।

४–वेदना—आख या शूल आदि की असह्य वेदना होना ।

५—पराघात गड्ढे आदि मे गिर पडना ।

६—स्पर्श साप आदि काट ले अथवा ऐसी वस्तु का स्पर्श हो जिसके स्पर्श से शरीर मे विष फैल जाय ।

७–आणपाण—श्वासोच्छ्वास की गति बंद हो जाय ।

आयुष्य टूटने के सात कारणों में से कोई भी कारण (उपक्रम) न लगे, किन्तु मृत्यु आने पर ही मरण हो, उस आयुष्य को निरुपक्रमी आयुष्य कहते हैं।

३—अहो भगवन्! किन जीवों में कौनसा आयुष्य पाया जाता है? हे गौतम! समुच्चय जीव और औदारिक के दस दण्डक में दोनों प्रकार का (सोपक्रमी और निरुपक्रमी) आयुष्य पाया जाता है। नारकी, देवता के १४ दण्डक में एक निरुपक्रमी आयुष्य पाया जाता है *।

४—अहो भगवन्! मरण कितने प्रकार का है? हे गौतम! मरण तीन प्रकार का है--१ आत्मोपक्रम—आत्मघात (अपघात) करके मरना श्रेणिक राजा की तरह। २—परोपक्रम—पर निमित्त से मरना, जैसे कोणिक राजा। ३ निरुपक्रम- स्वाभाविक रूप से मृत्यु आने पर मरना, जैसे [illegible] सम्राट।

५ अहो भगवन्! किन जीवों में कौनसा मरण पाया जाता है? हे गौतम! नारकी देवता के १४ दण्डक में एक निरुपक्रममरण पाया जाता है। पृथ्वीकायादि दस औदारिक दण्डक में तीनों ही प्रकार के मरण पाये जाते हैं।

६—अहो भगवन् ! ऋद्धि कितने प्रकार की है। गौतम ! ऋद्धि दो प्रकार की है—आत्मऋद्धि और पर-ऋद्धि । चौवीस ही दण्डक के जीव आत्मऋद्धि का प्रयोग कर मर कर परभव मे जाते है । कोई भीव परऋद्धि का प्रयोग कर नही मरता है ।

---

११. चरम परम का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, शतक उन्नीसवा, उद्देशा पांचवां)

१—अहो भगवन् ! नारकी के नैरयिक क्या चरम (अल्प आयुष्य बाकी रहा हे) है या परम (अधिक आयुष्य बाकी है) है ? हे गौतम ! नारकी के नैरयिक चरम भी है और परम भी है ।

२—अहो भगवन् ! क्या चरम नैरयिको की अपेक्षा परम नैरयिक महाकर्म वाले, महाक्रिया वाले, महाआश्रव वाले, महावेदना वाले होते है और क्या परम नैरयिक की अपेक्षा चरम नैरयिक अल्पकर्म वाले अल्पक्रिया वाले अल्प-आश्रव वाले अल्पवेदना वाले होते है ? हा, गौतम ! होते है । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे गौतम!

आयुष्य की स्थिति की अपेक्षा ऐसा कहा गया है ❀।

जिस तरह नारकी का कहा, उसी तरह पृथ्वीकायादि औदारिक के दस दण्डक का भी कह देना चाहिए।

३—अहो भगवन्! क्या असुरकुमार देव चरम (अल्प आयुष्य वाले) और परम (अधिक आयुष्य वाले) होते है? हां गौतम! चरम और परम दोनो होते हैं।

४—अहो भगवन्! क्या चरम असुरकुमार देवो की अपेक्षा परम असुरकुमार देव अल्पकर्म वाले, अल्प क्रिया वाले अल्पआश्रव वाले, अल्पवेदना वाले होते हैं और परम असुरकुमार देवो की अपेक्षा चरम असुरकुमार देव महाकर्म वाले, महाक्रिया वाले, महाआश्रव वाले, महावेदना वाले होते हैं? हा गौतम! होते है। अहो भगवन्! इसका क्या कारण? हे गौतम! अशुभ कर्म की अपेक्षा से ऐसा कहा गया है।

जिस प्रकार असुरकुमार देवो का कहा उसी तरह

भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवो मे कह देना चाहिए ।

१२. द्वीप समुद्र का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक उन्नीसवा, उद्देशा छठा)

१—अहो भगवन् ! द्वीप, समुद्र कितने कहे गये है ? हे गौतम ! असख्यात कहे गये है—जैसे कि—जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकीखण्डद्वीप, कालोदधिसमुद्र, पुष्करवरद्वीप, पुष्करवरसमुद्र, वारुणीद्वीप, वारुणीसमुद्र, क्षीरद्वीप, क्षीर-समुद्र, घृतद्वीप, घृतसमुद्र, ईक्षुद्वीप, ईक्षुसमुद्र, नन्दीश्वरद्वीप, नन्दीश्वरसमुद्र, अरुणद्वीप, अरुणसमुद्र, अरुणवरद्वीप, अरुणवर-समुद्र, अरुणवरभासद्वीप, अरुणवरभाससमुद्र, कु डलद्वीप, कु डल-समुद्र, कु डलवरद्वीप, कु डलवरसमुद्र, कु डलवरभासद्वीप, कु डलवरभाससमुद्र, रुचकद्वीप, रुचक समुद्र यावत् स्वयभूर-मण समुद्र तक असख्यात द्वीप समुद्र है ।

२—अहो भगवन् ! इन द्वीप समुद्रो का सस्थान (आकार) कैसा है ? हे गौतम जम्बूद्वीप का सस्थान थाली के आकार है । शेष सब द्वीप, समुद्रो का सस्थान चूडी के आकार है ।

३—अहो भगवन् ! इन द्वीप, समुद्रो का विष्कम्भ (चौडाई) कितना है ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप एक लाख योजन का है । लवणसमुद्र दो लाख योजन का है । इस

तरह द्वीप और समुद्र एक एक से दुगने दुगने होते गये हैं।

४—अहो भगवन् ! उन द्वीप, समुद्रों—की परिधि कितनी है ? हे गौतम ! जिस द्वीप और समुद्र की पूर्व से पश्चिम तक जितनी चौड़ाई है उससे तिगुणी (तीन गुणी) झाझेरी परिधि कह देनी चाहिए, जैसे की जम्बूद्वीप की परिधि ३ लाख, १६ हजार, २२७ योजन, ३ कोस, १२८ धनुष, १३॥ अंगुल झाझेरी (थोड़ी अधिक) है। लवण-समुद्र की परिधि १५ लाख, ८१ हजार, १३९ योजन किंचित ऊणी है। धातकीखण्डद्वीप की परिधि ४१ लाख, १० हजार, ९६१ योजन, किंचित् ऊणी है। कालोदधिसमुद्र की परिधि ९१ लाख, ७० हजार, ६०५ योजन झाझेरी है। अर्द्धपुष्करवरद्वीप की परिधि १ करोड़, ४२ लाख, ३० हजार, २४९ योजन झाझेरी है। सम्पूर्ण पुष्करवरद्वीप की परिधि १ करोड़, ९२ लाख, ८९ हजार, ८९४ योजन की है। इस तरह सब द्वीप समुद्रों की परिधि जान लेनी चाहिए।

है । पुष्करवरद्वीप के प्रत्येक दरवाजे का अन्तर ४८
ख, २२ हजार, ४६९ योजन का है । इन सब द्वीप
मुद्रो के किनारे एक-एक पद्मवरवेदिका है और दो-दो
खण्ड है, एक-एक अन्दर और एक-एक बाहर । जम्बूद्वीप
जागती है, दूसरो के नही है ।

६—अहो भगवन् ! इन समुद्रो के पानी का स्वाद
सा है ? हे गौतम ! लवणसमुद्र का पानी खारा है ।
लोदधि समुद्र, पुष्करवरसमुद्र और स्वयभूरमणसमुद्र, इन
न समुद्रो के पानी का स्वाद पानी जैसा है । वारुणी-
मुद्र के पानी का स्वाद मदिरा सरीखा है । क्षीरसमुद्र के
नी का स्वाद खीर (दूध) जैसा है । घृतसमुद्र के पानी
स्वाद घृत (घी) जैसा है । बाकी सब समुद्रो के पानी
स्वाद ईक्षुरस (गन्ने का रस) सरीखा है ।

७—अहो भगवन् ! इन द्वीप समुद्रो के कितने देवता
लिक है ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र का
क एक देवता मालिक है । बाकी सब द्वीप समुद्रो के दो
देवता मालिक है ।

८—अहो भगवन् ! इन सब देवो की स्थिति
तनी है ? हे गौतम ! इन सब मालिक देवताओ की
थति एक-एक पल्योपम की है ।

: △ :

१३. देवता की विकुर्वणा आदि का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक अठारहवा, उद्देशा पाचवा)

१—अहो भगवन् ! एक असुरकुमारावास में दो असुरकुमार, असुरकुमार देवतापने उत्पन्न हुए। उनमें एक असुरकुमार देव प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला, दर्शनीय, सुन्दर, मनोहर लगता है और दूसरा असुरकुमार देव प्रसन्नता उत्पन्न नहीं करने वाला, दर्शनीय, सुन्दर, मनोहर नहीं लगता, इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! असुरकुमार देव दो प्रकार के हैं—वैक्रियशरीर वाले (विभूषितशरीर वाले) और अवैक्रिय (अविभूषित) शरीर वाले। जो असुरकुमार देव विभूषित शरीर वाले हैं वे सुन्दर मनोहर लगते हैं और जो विभूषित शरीर वाले नहीं हैं वे सुन्दर मनोहर नहीं लगते। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! जैसे इस मनुष्यलोक में भी दो मनुष्यों में एक तो आभूषणों से अलंकृत, विभूषित शरीर वाला हो और दूसरा अलंकृत विभूषित शरीर वाला न हो। हे गौतम ! इन दोनों में कौन पुरुष सुन्दर मनोहर लगता है और कौन सुन्दर मनोहर नहीं लगता ? अहो भगवन् ! इन दोनों पुरुषों में जो अलंकृत-विभूषित शरीर वाला है,

का है । पुष्करवरद्वीप के प्रत्येक दरवाजे का अन्तर ४८ लाख, २२ हजार, ४६९ योजन का है । इन सब द्वीप समुद्रो के किनारे एक-एक पद्मवरवेदिका है और दो-दो वनखण्ड है, एक-एक अन्दर और एक-एक बाहर । जम्बूद्वीप के जागती है, दूसरो के नही है ।

६—अहो भगवन् ! इन समुद्रो के पानी का स्वाद कैसा है ? हे गौतम ! लवणसमुद्र का पानी खारा है । कालोदधि समुद्र, पुष्करवरसमुद्र और स्वयभूरमणसमुद्र, इन तीन समुद्रो के पानी का स्वाद पानी जैसा है । वारुणी-समुद्र के पानी का स्वाद मदिरा सरीखा है । क्षीरसमुद्र के पानी का स्वाद खीर (दूध) जैसा है । घृतसमुद्र के पानी का स्वाद घृत (घी) जैसा है । बाकी सब समुद्रो के पानी का स्वाद ईक्षुरस (गन्ने का रस) सरीखा है ।

७—अहो भगवन् ! इन द्वीप समुद्रो के कितने देवता मालिक हैं ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र का एक एक देवता मालिक है । बाकी सब द्वीप समुद्रो के दो दो देवता मालिक है ।

८—अहो भगवन् ! इन सब देवो की स्थिति कितनी है ? हे गौतम ! इन सब मालिक देवताओ की स्थिति एक-एक पल्योपम की है ।

∴ △ ∴

१३. देवता की विकुर्वणा आदि का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक अठारहवा, उद्देशा पाचवा)

१—अहो भगवन् ! एक असुरकुमारावास मे दो असुरकुमार, असुरकुमार देवतापने उत्पन्न हुए। उनमे एक असुरकुमार देव प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला, दर्शनीय, सुन्दर, मनोहर लगता है और दूसरा असुरकुमार देव प्रसन्नता उत्पन्न नही करने वाला, दर्शनीय, सुन्दर, मनोहर नही लगता, इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! असुरकुमार देव दो प्रकार के हैं—❀ वैक्रियशरीर वाले (विभूषितशरीर वाले) और अवैक्रिय (अविभूषित) शरीर वाले। जो असुरकुमार देव विभूषित शरीर वाले है वे सुन्दर मनोहर लगते हैं और जो विभूषित शरीर वाले नही हैं वे सुन्दर मनोहर नही लगते। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! जैसे इस मनुष्यलोक मे भी दो मनुष्यो मे एक तो आभूषणो मे अलकृत, विभूषित शरीर वाला हो और दूसरा अलकृत विभूषित शरीर वाला न हो। हे गौतम ! उन दोनो मे कौन पुरुष सुन्दर मनोहर लगता है और कौन सुन्दर मनोहर नही लगता ? अहो भगवन् ! उन दोनो पुरुषो मे जो अलकृत-विभूषित शरीर वाला है,

---

❀ जब जीव जाकर देवशय्या मे उत्पन्न होता है उस समय वह विभूषा—अलकार रहित उत्पन्न होता है इसके बाद वह अनुक्रम से अलकार पहनकर विभूषित होता है।

वह सुन्दर मनोहर लगता है और जो अलकृत-विभूषित शरीर वाला नही है, वह सुन्दर मनोहर नही लगता । हे गौतम ! इसी प्रकार भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक देवो मे भी जानना चाहिए।

२—अहो भगवन् ! एक नरकावास मे दो नैरयिक नैरयिकपने उत्पन्न हुए, उनमे से एक नैरयिक महाकर्म वाला यावत् महावेदना वाला होता है और एक नैरयिक अल्पकर्म वाला यावत् अल्पवेदना वाला होता है । इसका क्या कारण ? हे गौतम ! नैरयिक दो प्रकार के कहे गये है — मायीमिथ्यादृष्टि और अमायीसमदृष्टि । उनमे मायी-मिथ्यादृष्टि महाकर्म वाला यावत् महावेदना वाला होता है और अमायीसमदृष्टि अल्पकर्म वाला यावत् अल्पवेदना वाला होता है । *एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय को छोडकर बाकी १६ दण्डक मे इसी प्रकार कह देना चाहिए ।

३—अहो भगवन् ! जो नैरयिक नारकी से निकल निकल कर (मरकर) तुरन्त तिर्यचपचेन्द्रिय मे उत्पन्न होने वाला है वह कौन से आयुष्य को वेदता है (अनुभव करता

---

*एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय मायीमिथ्यादृष्टि ही होते है, अमायीसमदृष्टि नही होते । इसलिए उनमे अल्प-कर्म, अल्पवेदना नही होती । महाकर्म, महावेदना ही होती है ।

है) ? हे गौतम ! *वह नारकी के आयुष्य को वेदता है और तिर्यंचपचेन्द्रिय के आयुष्य को उदयाभिमुख (सामने) करता है । इसी प्रकार मनुष्य का भी कह देना चाहिए, किन्तु वह मनुष्य के आयुष्य को उदयाभिमुख करता है ।

४—अहो भगवन् ! जो असुरकुमार देव असुरकुमारो से मरकर तुरन्त पृथ्वीकायिक जीवो मे उत्पन्न होने वाला है, वह कौन से आयुष्य को वेदता है ? हे गौतम ! वह असुरकुमार के आयुष्य को वेदता है और पृथ्वीकायिक आयुष्य को उदयाभिमुख करता है । इसी प्रकार जो जीव जहा उत्पन्न होने वाला होता है, वह उसकी आयुष्य को उदयाभिमुख करता है और जिस गति मे रहा हुआ है उस गति के आयुष्य को वेदता है । इसी प्रकार वैमानिक तक कह देना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि जो पृथ्वी-कायिक जीव पृथ्वीकाय मे ही उत्पन्न होने वाले है वे पृथ्वीकाय के आयुष्य को वेदते हैं और दूसरे पृथ्वीकाय के आयुष्य को ही उदयाभिमुख करते हैं । इस तरह मनुष्यो तक स्वस्थान, परस्थान की अपेक्षा कह देना चाहिए ।

५—अहो भगवन् ! एक असुरकुमारावास मे दो असुरकुमार देव असुरकुमार देवपने उत्पन्न हुए । उनमे से एक असुरकुमार देव ऋजु (सीधी-सरल) विकुर्वणा करना चाहता है तो ऋजु (सीधी-सरल) विकुर्वणा कर लेता है

---

* जब तक नारकी का शरीर धारण किये हुए है तब तक नारकी का आयुष्य वेदता है और नारकी का शरीर छोड देने बाद तिर्यंच के आयुष्य को वेदता है ।

और वक्र (टेढी) विकुर्वणा करना चाहता है तो वक्र (टेढी) विकुर्वणा कर लेता है। अर्थात् जिस प्रकार की विकुर्वणा करना चाहता है उसी प्रकार की विकुर्वणा कर लेता है। एक असुरकुमार देव ऋजु विकुर्वणा करना चाहता है किन्तु वक्र (टेढी) विकुर्वणा हो जाती है और वक्र (टेढी) विकुर्वणा करना चाहता है किन्तु ऋजु (सीधी) विकुर्वणा हो जाती है, अर्थात् जिस प्रकार की विकुर्वणा करना चाहता है उस प्रकार की विकुर्वणा नही कर सकता है। अहो भगवन्! इसका क्या कारण है? हे गौतम! असुरकुमार देव दो प्रकार के कहे गये है—मायीमिथ्यादृष्टि और अमायीसमदृष्टि। जो*मायीमिथ्यादृष्टि देव हैं वे ऋजु रूप विकुर्वणा चाहे तो वक्र और वक्ररूप विकुर्वणा चाहे तो ऋजुरूप विकुर्वणा हो जाती है अर्थात् जैसे रूप की विकु-

---

* कितनेक देव अपनी इच्छानुसार सीधी या बाकी विकुर्वणा कर सकते है। इसका कारण यह है कि उन्होने आर्जवता (सरलता) और सम्यग्दर्शन निमित्तक तीव्र रस वाले वैक्रियनामकर्म का बन्ध किया है। कितनेक देव सीधी या टेढी अपनी इच्छानुसार विकुर्वणा नही कर सकते हैं, इसका कारण यह है कि उन्होने माया और मिथ्यादर्शन निमित्तक मन्द रस वाले वैक्रियनामकर्म का बन्ध किया है। इसलिए ऐसा कहा गया है कि अमायीसमदृष्टि देव अपनी इच्छानुसार रूपो की विकुर्वणा कर सकते हैं और मिथ्यादृष्टि देव अपनी इच्छानुसार रूपो की विकुर्वणा नही कर सकते हैं।

र्वणा करना चाहते है, वैसे रूप की विकुर्वणा नही कर सकते है। जो अमायी समदृष्टि है वे ऋजुरूप विकुर्वणा चाहे तो ऋजु और वक्ररूप विकुर्वणा चाहे तो वक्ररूप विकुर्वणा कर सकते हैं अर्थात् जैसे रूप की विकुर्वणा करना चाहते हैं वैसे रूप की विकुर्वणा कर सकते हैं।

---

१४. परमाणु आदि का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, शतक अठारहवा, उद्देशा छठा)

१—अहो भगवन्! फाणित (गीला) गुड मे कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श पाये जाते हैं? हे गौतम! व्यवहारनय की अपेक्षा मधुररस पाया जाता है और निश्चयनय की अपेक्षा पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस और आठ स्पर्श पाये जाते हैं।

२—अहो भगवन्! भवरे (भ्रमर) मे कितने वर्णादि पाये जाते हैं? हे गौतम! व्यवहारनय की अपेक्षा भवरे मे कालावर्ण है और निश्चयनय की अपेक्षा पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस, आठ स्पर्श होते है।

३—अहो भगवन्! तोते की पाख कितने वर्णादि वाली होती है? हे गौतम! व्यवहारनय की अपेक्षा तोते की पाख नीली होती है और निश्चयनय की अपेक्षा पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस, आठ स्पर्श वाली होती है। इसी प्रकार व्यवहारनय की अपेक्षा मजीठ मे लाल वर्ण, हल्दी

में पीला वर्ण, शंख में सफेद वर्ण, कुट (पटवास—कपडे मे सुगन्ध देने की पत्ती) मे सुगन्ध, मुर्दा (मृतक शरीर) में दुर्गन्ध, नीम मे कडवारस, सूठ मे कटुकरस, कविठ मे में कषायलारस, आमली (इमली) मे खट्टारस, खाड मे मधुररस, वज्र मे कर्कश (कठोर) स्पर्श, मक्खन मे कोमल स्पर्श, पत्थर में भारी (गुरु) स्पर्श, वोरडी के पत्ते मे हल्का (लघु) स्पर्श, बर्फ मे ठण्डास्पर्श, अग्नि मे उष्णस्पर्श, तेल मे चिकना (स्निग्ध) स्पर्श है और निश्चयनय की अपेक्षा इन सब मे पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस और आठ स्पर्श होते है।

४—अहो भगवन्! राख मे कितने वर्णादि होते हैं? हे गौतम! व्यवहारनय की अपेक्षा एक रूक्ष (लूखा) स्पर्श होता है और निश्चयनय की अपेक्षा पाच वर्ण, दो गन्ध पाच रस और आठ स्पर्श होते है।

५—अहो भगवन्! एक परमाणुपुद्गल मे कितने वर्णादि होते हैं? हे गौतम! एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्श होते है।

६—अहो भगवन्! द्विप्रदेशी स्कन्ध मे कितने वर्णादि होते है? हे गौतम! सिय (कदाचित्) एक वर्ण, सिय दो वर्ण, सिय एक गन्ध, सिय दो गन्ध, सिय एक रस, सिय दो रस, सिय दो स्पर्श, सिय तीन स्पर्श, सिय चार स्पर्श होते हैं। इसी प्रकार तीन प्रदेशी स्कन्ध मे [illegible] एक वर्ण, सिय दो वर्ण, सिय तीन वर्ण, सिय एक [illegible], सिय दो गन्ध, सिय एक रस, सिय दो रस, सिय

तीन रस, सिय दो स्पर्श, सिय तीन स्पर्श, सिय चार स्पर्श होते है। इसी तरह चार प्रदेशी स्कन्ध मे सिय एक वर्ण, सिय दो वर्ण सिय तीन वर्ण, सिय चार वर्ण, सिय एक गन्ध, सिय दो गन्ध, सिय एक रस, सिय दो रस, सिय तीन रस, सिय चार रस, सिय दो स्पर्श, सिय तीन स्पर्श, सिय चार स्पर्श होते हैं। इसी तरह पाच प्रदेशी स्कन्ध मे सिय एक वर्ण, सिय दो वर्ण, सिय तीन वर्ण, सिय चार वर्ण, सिय पाच वर्ण, सिय एक गन्ध, सिय दो गन्ध, सिय एक रस, सिय दो रस, सिय तीन रस, सिय चार रस, सिय पाच रस, सिय दो स्पर्श, सिय तीन स्पर्श, सिय चार स्पर्श होते है।

जिस प्रकार पाच प्रदेशी स्कन्ध का कहा, उसी प्रकार छह प्रदेशी स्कन्ध यावत् असख्यात प्रदेशी स्कन्ध तक कह देना चाहिए।

७—अहो भगवन्! सूक्ष्म परिणाम वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्ध मे कितने वर्णादि होते है? हे गौतम! जिस तरह पाच प्रदेशी स्कन्ध का कहा उसी तरह कह देना चाहिए।

८—अहो भगवन्! बादर (स्थूल) परिणाम वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्ध मे कितने वर्णादि होते हैं? हे गौतम! सिय एक वर्ण यावत् सिय पाच वर्ण, सिय एक गन्ध, सिय दो गन्ध, सिय एक रस यावत् सिय पाच रस, सिय चार स्पर्श यावत् सिय आठ स्पर्श होते हैं।

१५. यक्षा वेश और उपधि आदि का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक अठारहवां, उद्देशा सातवां)

१—अहो भगवन्! अन्यतीर्थी ऐसा कहते है कि केवली भगवान् यक्षावेश से आविष्ट होकर मृषा (असत्य) भाषा और मिश्र भाषा बोलते है। अहो भगवन्! क्या उनका यह कहना ठीक है? हे गौतम! अन्यतीर्थियो का यह कहना मिथ्या है, क्योकि केवली भगवान् यक्षावेश से आविष्ट नही होते। इसलिये वे मृषाभाषा और मिश्रभाषा नही बोलते किन्तु दूसरे जीवो का उपघात न करने वाली निरवद्य (पापरहित) सत्यभाषा और व्यवहारभाषा ये दो भाषाए बोलते है।

२—अहो भगवन्! उपधि कितने प्रकार की है? हे गौतम! *उपधि तीन प्रकार की है—कर्म–उपधि, शरीर—उपधि बाह्यभडोपगरण–उपधि।

३—अहो भगवन्! नैरयिको मे कितनी उपधि होती है? हे गौतम! नैरयिको मे दो उपधि होती है - कर्म–उपधि और शरीर–उपधि, इसी तरह पाच स्थावर मे भी

---

* जीवननिर्वाह मे उपयोगी शरीर वस्त्रादि को उपधि कहते हैं। इसके दो भेद है—आभ्यन्तर और बाह्य। कर्म और शरीर आभ्यन्तर उपधि है, वस्त्र पात्र घर आदि बाह्य उपधि है।

ये दो उपधि पाई जाती है। बाकी १८ दण्डक मे तीनो उपधि पाई जाती है।

४—अहो भगवन्! उपधि कितने प्रकार की है? हे गौतम! उपधि तीन प्रकार की है—सचित्त, अचित्त और मिश्र। ×नारकी से लेकर वैमानिक तक २४ ही दण्डक मे तीनो प्रकार की उपधि पाई जाती हैं।

५—अहो भगवन्! परिग्रह कितने प्रकार के हैं? हे गौतम!—परिग्रह तीन प्रकार के है—कर्म-परिग्रह, शरीर-परिग्रह, वस्त्रपात्रादि रूप बाह्य उपकरण परिग्रह। नारकी और पाच स्थावर मे दो परिग्रह होते हैं—कर्म और शरीर। बाकी १८ दण्डक मे तीनो परिग्रह होते हैं।

६—अहो भगवन्! परिग्रह कितने प्रकार के हैं? हे गौतम! तीन प्रकार के हैं—सचित्त, अचित्त और मिश्र। २४ ही दण्डक मे तीनो प्रकार के परिग्रह पाये जाते हैं।

×नारकी मे सचित्त उपधि शरीर है। अचित्त उपधि उत्पत्तिस्थान है और श्वासोच्छ्वासादि युक्त सचेतनाचेतन रूप मिश्र उपधि है।

÷जीवननिर्वाह मे उपयोगी कर्म, शरीर और वस्त्रादि उपधि कहलाते हैं। इन्ही को ममत्वबुद्धि से ग्रहण किया जाय तो परिग्रह कहलाता है। यही उपधि और परिग्रह मे भेद हैं।

७—अहो भगवन् ! ❀प्रणिधान कितने प्रकार के है ? हे गौतम ! तीन प्रकार है—मनप्रणिधान, वचन-प्रणिधान, कायप्रणिधान । पाच स्थावर मे एक कायप्रणिधान, तीन विकलेन्द्रियो में दो प्रणिधान—कायप्रणिधान, वचनप्रणिधान, वाकी १६ दण्डक मे तीनो प्रणिधान पाये जाते है ।

८—अहो भगवन् ! दुष्प्रणिधान कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! दुष्प्रणिधान तीन प्रकार के है—मन-दुष्प्रणिधान, वचन दुष्प्रणिधान, कायदुष्प्रणिधान । पाच स्थावरो मे एक कायदुष्प्रणिधान, तीन विकलेन्द्रियो मे कायदुष्प्रणिधान और वचनदुष्प्रणिधान, वाकी १६ दण्डक मे तीनो ही दुष्प्रणिधान पाये जाते है ।

९—अहो भगवन् ! =सुप्रणिधान कितने प्रकार के है ? हे गौतम ! सुप्रणिधान तीन प्रकार के है - मन-सुप्रणिधान, वचनसुप्रणिधान, कायसुप्रणिधान ।

अहो भगवन् ! मनुष्यो मे कितने प्रकार के सुप्रणिधान

❀ मन, वचन और काय योग को किसी एक पदार्थ मे स्थिर करना प्राणिधान कहलाता है । मन, वचन, काया की सुप्रवृत्ति को सुप्रणिधान और दुष्टवृत्ति को दुष्प्रणिधान कहते है ।

=जिन के चारित्र होता है, उन्ही मे सुप्रणिधान पा॰ जाता है ।

होते हैं ? अहो गौतम ! तीनो प्रकार के सुप्रणिधान होते हैं। बाकी २३ दण्डक मे सुप्रणिधान नही होते है।

ΔΔ

१६. मंडुकश्रावक का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक अठारहवा, उद्देशा सातवा)

१—राजगृह नगर मे जीवाजीवादि तत्त्व का जानकार मडुक नाम का श्रमणोपासक (श्रावक) रहता था। ग्रामानुग्राम विहार करते हुए श्रमण भगवन् महावीर स्वामी राजगृह नगर के बाहर गुणशिल उद्यान मे पधारे। भगवान् के पधारने की खबर सुनकर मडुक श्रावक बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट हुआ। वह भगवान् को वन्दना नमस्कार करने के लिये घर से निकला। उस गुणशिल उद्यान के आसपास कालोदायी, सेलोदायी आदि बहुत से अन्यतीर्थी रहते थे। उन्होने मडुक श्रावक से प्रश्न पूछे—हे मडुक ! तुम्हारे धर्मोपदेशक धर्माचार्य ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान् महावीर स्वामी धर्मास्तिकाय आदि पाच अस्तिकाय की प्ररूपणा करते हैं। वे कैसे मानी जा सकती है ? क्या तुम धर्मास्तिकायादि को जानते देखते हो ? मडुक श्रावक ने उत्तर दिया कि जो पदार्थ कुछ भी कार्य (क्रिया) करता है वह उस कार्य द्वारा जाना जा सकता है। परन्तु जो पदार्थ कुछ भी कार्य नही करता, निष्क्रिय (क्रियारहित) होता है, उसको कोई जान भी नही

सकता है और देख भी नही सकता है ❀। इस बात को सुनकर अन्यतीर्थियो ने उपालम्भ पूर्वक कहा कि तुम श्रमणोपासक हुए हो। तुम्हे धर्मास्तिकायादि का भी ज्ञान नही है। तब मडुक श्रावक ने अन्यतीर्थियो को इस प्रकार उत्तर दिया—वायु बहती (चलती) है। क्या तुम उसके रूप को देखते हो ? अन्यतीर्थियो ने कहा कि हम वायु के रूप को नही देखते है' फिर मडुक श्रावक ने उनसे पूछा कि क्या गन्ध वाले पुद्गल है ? उन्होने कहा—हा, है। क्या तुम उन्हे देखते हो ? अरणी काष्ठ मे अग्नि है, समुद्र के उस पार अनेक पदार्थ है, देवलोक मे अनेक रूप हैं, उन सब को क्या तुम देखते हो ? अन्यतीर्थियो ने कहा कि हे मडुक ! हम इन सब पदार्थों को नही देखते हैं। तब मडुक श्रावक बोला कि तुम इन्हे नही देखते हो तो भी मानते हो या नही ? तब अन्यतीर्थियो ने कहा कि हा, हम इन्हे मानते है। तब मडुक श्रावक ने कहा कि हे आयुष्मतो ! हम या तुम अथवा अन्य कोई छद्मस्थ मनुष्य जिन पदार्थों को नही जानते या नही देखते, यदि वे सब पदार्थ न होवे तो तुम्हारी मान्यतानुसार ससार मे

❀धर्मास्तिकायादि पाच अस्तिकाय निश्चयनय से सक्रिय होने से मै जानता हू, देखता नही। व्यवहारनय से जीव और पुद्गल सक्रिय है इसलिए मैं जानता हू और देखता हू। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय अक्रिय हैं, इसलिए इनको मैं जानता नही और देखता नही।

बहुत मे पदार्थों का अभाव हो जाय । ऐसा कहकर मडुक श्रावक ने अन्यतीर्थियो को निरुत्तर कर दिया । इसके बाद मडुक श्रावक श्रमण भगवान् महावीर के पास गया । भगवान् को वन्दना नमस्कार कर पर्युपासना करने लगा । तब भगवान् ने मडुक श्रावक को सम्बोधित करके फरमाया कि हे मडुक ! तुमने अन्यतीर्थियो को ठीक उत्तर दिया, बराबर उत्तर दिया । जो कोई जाने बिना, देखे बिना या सुने बिना अदृष्ट, अश्रुत, असम्मत या अविज्ञान अर्थ को, हेतु को, प्रश्न के उत्तर को कहता है, जतलाता है यावत् दर्शाता है वह अरिहतो की, अरिहन्तप्ररूपित धर्म-की, केवली की, केवली प्ररूपित धर्म की आशातना करता है । इसलिए हे मडुक ! तुमने अन्यतीर्थियो को ठीक उत्तर दिया । भगवान् के कथन को सुनकर मडुक श्रावक प्रसन्न और सन्तुष्ट हुआ । भगवान् ने धर्मकथा फरमाई । धर्म-कथा सुनकर भगवान् को वन्दना नमस्कार करके वापिस अपने घर गया ।

गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करके पूछा कि अहो भगवन् ! क्या मडुक श्रावक आपके पास दीक्षा लेने मे समर्थ है ? हे गौतम ! मडुक श्रमणोपासक दीक्षा लेने मे समर्थ नही है वह बहुत वर्षो तक श्रावकपना पालन कर पहले देवलोक के अरुणाभ विमान मे देव होगा । वहा से चव कर महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर सिद्ध बुद्ध मुक्त होगा ।

—❀—

१७. पुण्य खपाने का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक अठारहवा, उद्देशा सातवा)

१—अहो भगवन् ! क्या महाऋद्धिवाला यावत् महा सुख वाला देव लवणसमुद्र के चारो तरफ फिर कर शीघ्र आने मे समर्थ है । हा, गौतम ! समर्थ है । इस तरह धातकीखड द्वीप यावत् रुचकवरद्वीप तक चारो तरफ फिरकर शीघ्र आने मे समर्थ है । इसके आगे द्वीप समुद्रो तक जाने मे समर्थ है किन्तु उसके चारो तरफ फिरते हैं✻ ।

२—अहो भगवन् ! क्या ऐसे देव है जो अनन्त शुभ प्रकृति रूप कर्मों को जघन्य एकसौ वर्षो मे, दोसौ वर्षों मे, तीनसौ वर्षो मे यावत् उत्कृष्ट ५ लाख वर्षो मे खपाते हैं ? हा गौतम ! ऐसे देव है । अहो भगवन् ! ऐसे कौन से देव है ? हे गौतम ! वाणव्यन्तर देव हसी कुतूहल करके अनन्त शुभप्रकृति रूप कर्मो को एक सौ वर्षो मे खपाते है, उतने कर्मो को असुरेन्द्र के सिवाय भवनपति देव दो सौ वर्षो मे खपाते है, असुरकुमार तीन सौ वर्षो मे खपाते हैं, ग्रह, नक्षत्र, तारा चार सौ वर्षों मे खपाते है, चन्द्र, सूर्य पाच सौ वर्षो मे खपाते है, पहले दूसरे देवलोक

✻ प्रयोजन नही होने से चारो तरफ नही फिरते हैं, ऐसा सम्भव है । (टीका) ।

के देव एक हजार वर्ष मे खपाते हैं, तीसरे चौथे देवलोक के देव दो हजार वर्षो मे खपाते हैं, पाचवे छठे देवलोक के देव तीन हजार वर्षों मे खपाते हैं, सातवें देवलोक के देव चार हजार वर्षो मे खपाते हैं, नवमे दसवें ग्यारहवे और बारहवें देवलोक के देव पाच हजार वर्षों मे खपाते हैं, नवग्रैवेयक की पहली त्रिक देव एक लाख वर्षों मे खपाते हैं, नवग्रैवेयक की दूसरी त्रिक के देव दो लाख वर्षों मे खपाते है, नवग्रैवेयक की तीसरी त्रिक के देव तीन लाख वर्षो मे खपाते हैं, चार अनुत्तर विमानो के देव चार लाख वर्षों मे खपाते हैं, सर्वार्थसिद्ध के देव पाच लाख वर्षो मे खपाते हैं ।

१८. परमाणु का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक अठारहवा, उद्देशा आठवा)

१—अहो भगवन्! क्या छद्मस्थ मनुष्य परमाणु-पुद्गल को जानता और देखता है अथवा नही जानता, नही देखता है? हे गौतम! कोई जानता है, परन्तु देखता नही। कोई जानता भी नही और देखता भी नही। इसी तरह दोप्रदेशी स्कन्ध यावत् असख्यातप्रदेशी स्कन्ध तक कह देना चाहिए।

२—अहो भगवन्! क्या छद्मस्थ मनुष्य अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध को जानता देखता है अथवा नही जानता,

नही देखता है ? हे गौतम ! कोई जानता है, देखता है । कोई जानता है परन्तु देखता नही । कोई जानता नही, परन्तु देखता है । कोई जानता भी नही, देखता भी नही ।

जिस तरह छद्मस्थ का कहा उसी तरह आधोअवधिक (अवधिज्ञानी) का भी कह देना चाहिए ।

३—अहो भगवन् ! क्या परमावधिज्ञानी मनुष्य परमाणु पुद्‌गल को यावत् अनन्त प्रदेशीस्कन्ध को जिस समय जानता है, उसी समय देखता है और जिस समय देखता है, उसी समय जानता है । हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे (यह बात नही है) । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण हे ? हे गौतम ! परमावधिज्ञानी का ज्ञान साकार (विशेषग्राहक) होता है और दर्शन अनाकार (सामान्य-ग्राहक) होता है । इसलिए ऐसा कहा है कि परमावधि-ज्ञानी जिस समय जानता है, उस समय देखता नही और जिस समय देखता है, उस समय जानता नही ।

जिस तरह परमावधिज्ञानी का कहा उसी तरह केवलज्ञानी का भी कह देना चाहिए ।

१६. आराधना पद का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, शतक आठवा, उद्देशा दसवा)

१ – अहो भगवन् ! आराधना कितने प्रकार की है ? हे गौतम !–आराधना तीन प्रकार की है—※१ ज्ञान-आराधना, २ दर्शन- आराधना, ३ चारित्र—आराधना ।

※ १ - योग्य काल मे पढना, विनय बहुमान आदि आठ प्रकार के ज्ञानाचार का निरतिचार पालन करना, ज्ञान–आराधना है ।

(विस्तृत विवेचन देखिये–श्री जैन सिद्धान्त बोलसग्रह भाग तीसरा पृष्ठ ५ से ६ तक) ।

२—निस्सङ्किय निकखिय आदि आठ प्रकार के दर्शनाचार का निरतिचार पालन करना, दर्शन–आराधना है ।

(विस्तृत विवेचन देखिये– श्री पन्नवणासूत्र के थोकडो का पहला भाग, पृष्ठ ४ से ५ तक) द्वितीयावृत्ति पृ० ५

३—पाच समिति, तीन गुप्ति रूप आठ प्रकार के चारित्राचार का निरतिचार (अतिचार रहित) पालन करना, चारित्र—आराधना है ।

(इसका विस्तृत विवेचन–श्री उत्तराध्ययन सूत्र के २४ वें अध्ययन मे है) ।

ज्ञान–आराधना के तीन भेद—१ उत्कृष्ट ज्ञान–आराधना, २ मध्यम ज्ञान–आराधना, ३ जघन्य ज्ञान–आराधना। इसी तरह दर्शन–आराधना के और चारित्र–आराधना के भी उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य ये तीन–तीन भेद कह देना।

उत्कृष्ट ज्ञान–आराधना मे १४ पूर्व का ज्ञान, मध्यम ज्ञान–आराधना मे ११ अग का ज्ञान, जघन्य ज्ञान–आराधना मे ८ प्रवचन माता का ज्ञान है। उत्कृष्ट दर्शन–आराधना मे क्षायिक समकित, मध्यम दर्शन–आराधना मे उत्कृष्ट क्षायोपशपिक समकित, जघन्य दर्शन–आराधना मे जघन्य क्षायोपशमिक समकित पाई जाती है। उत्कृष्ट चारित्र आराधना मे यथाख्यात–(चारित्र, मध्यम चारित्र) आराधना मे सूक्ष्म सम्परायचारित्र और परिहार विशुद्धि-चारित्र, जघन्य चारित्र–आराधना मे छेदोपस्थापनीयचारित्र और सामायिकचारित्र पाया जाता है।

उत्कृष्ट ज्ञान–आराधना मे दर्शन–आराधना पायी जाती २ (उत्कृष्ट दर्शन–आराधना और मध्यम दर्शन–आराधना)। उत्कृष्ट दर्शन–आराधना मे ज्ञान–आराधना पायी जाती ३। उत्कृष्ट ज्ञान–आराधना मे चारित्र–आराधना पायी जाती २ (उत्कृष्ट, मध्यम)। उत्कृष्ट चारित्र–आराधना मे ज्ञान–आराधना पायी जाती ३। उत्कृष्ट दर्शन–आराधना मे चारित्र–आराधना पायी जाती ३। उत्कृष्ट चारित्र–आराधना मे १ उत्कृष्ट दर्शन–आराधना की नियमा। आक ३३३, ३३२, ३२२, २३३, २३२, २३१, २२२, २२१, २१२, २११, १३३, १३२, १३१,

१२२, १२१, ११२, १११ ❀ ।

उत्कृष्ट ज्ञान–आराधना, उत्कृष्ट–दर्शन–आराधना, उत्कृष्ट चारित्र–आराधना वाला जीव जघन्य उसी भव मे मोक्ष जाता है, उत्कृष्ट दो भव मे मोक्ष जाता है । मध्यम ज्ञान–आराधना, मध्यम–दर्शन–ग्राराधना, मध्यम चारित्र–आराधना वाला जीव जघन्य दो भव से मोक्ष जाता है, उत्कृष्ट ३ भव से मोक्ष जाता है । जघन्य ज्ञान–आराधना, जघन्य–दर्शन–आराधना जघन्य चारित्र–आराधना वाला जीव जघन्य ३ भव से मोक्ष जाता है, उत्कृष्ट ७–८ भव से मोक्ष जाता है ।

---

२०. प्रत्यनीक का थोकड़ा

(भगवती सूत्र, शतक ग्राठवा, उद्देशा ग्राठवा)

१– अहो भगवन् ! गुरु सबधी कितने प्रत्यनीक

❀ जहा ३ है वहा 'उत्कृष्ट' कहना । जहा २ है वहा 'मध्यम' कहना । जहा १ है वहा 'जघन्य' कहना । जैसे ३३३ के ग्राक मे उत्कृष्ट ज्ञान आराधना, उत्कृष्ट दर्शन आराधना, उत्कृष्ट चारित्र आराधना कहना । २३१ के आक मे मध्यम ज्ञान आराधना, उत्कृष्ट दर्शन आराधना जघन्य चारित्र आराधना कहना । इसी तरह दूसरे आको के लिए भी कह देना चाहिये ।

(द्वेषी-विरोधी-निन्दा करने वाले) कहे गये हैं ? हे गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं—

१—आचार्य का प्रत्यनीक, २ उपाध्याय का प्रत्यनीक, ३ स्थविर का प्रत्यनीक ।

२—अहो भगवन् ! गति की अपेक्षा से कितने प्रत्यनीक कहे गये है ? हे गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गये है—१ इहलोक–प्रत्यनीक (इन्द्रियादि से प्रतिकूल अज्ञान के नष्ट करने वाला), २ परलोक–प्रत्यनीक (इन्द्रियो के विषयभोगो मे तल्लीन रहने वाला), ३ उभयलोक–प्रत्यनीक (चोरी आदि द्वारा इन्द्रियो के विषयभोगो मे तल्लीन रहने वाला) ।

३—अहो भगवन् ! समूह की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गये है ? हे गौतम ! समूह की अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक कहे गये है- १ कुल (एक गुरु के शिष्य) का प्रत्यनीक, २ गण (बहुत गुरुओ के शिष्य) का प्रत्यनीक, ३ सघ (साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका) का प्रत्यनीक ।

४—अहो भगवन् ! अनुकम्पा से सबधित कितने प्रत्यनीक कहे गये हैं ? हे गौतम ! अनुकम्पा से सबधित तीन प्रत्यनीक कहे गये है—१ तपस्वी का प्रत्यनीक, २ ग्लान (बीमार साधु) का प्रत्यनीक, ३ शैक्ष (नवदीक्षित साधु) का प्रत्यनीक ।

५—अहो भगवन् ! श्रुत सबधी कितने प्रत्यनीक कहे गये है ? हे गौतम ! श्रुत सबधी से तीन प्रत्यनीक

कहे गये है—१ सूत्र का प्रत्यनीक, २ अर्थ का प्रत्यनीक, ३ तदुभय (सूत्र, अर्थ दोनो) का प्रत्यनीक ।

६—अहो भगवन् ! भाव से सबधित कितने प्रत्यनीक कहे गये हैं ? हे गौतम ! भाव से सबधित तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं—१ ज्ञान-प्रत्यनीक, २ दर्शन-प्रत्यनीक, ३ चारित्र-प्रत्यनीक ।

२१. व्यवहार का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक आठवा, उद्देशा आठवाँ)

१—अहो भगवन् ! व्यवहार कितने प्रकार के कहे गये हैं ? हे गौतम ! ❀ व्यवहार पाच प्रकार के कहे गये

❀ मोक्षाभिलाषी जीवो की प्रवृत्ति और निवृत्ति को तथा प्रवृत्ति-निवृत्ति के ज्ञान को व्यवहार कहते हैं ।

१—आगमव्यवहार—केवलज्ञान, मन पर्ययज्ञान, अवधिज्ञान, चोदह पूर्व और दस पूर्व का ज्ञान आगम कहलाता है । आगमज्ञान से चलाई हुई प्रवृत्ति, निवृत्ति को आगम-व्यवहार कहते हैं ।

२—श्रुतव्यवहार—(सूत्रव्यवहार) आचारकल्प आदि श्रुतज्ञान कहलाता है । श्रुतज्ञान से चलाई हुई प्रवृत्ति, निवृत्ति को श्रुतव्यवहार कहते हैं ।

हैं—१ आगमव्यवहार, २ श्रुतव्यवहार (सूत्रव्यवहार), ३ आज्ञाव्यवहार, ४ धारणाव्यवहार, ५ जीतव्यवहार ।

इन पाच व्यवहारो मे से जिसके पास आगमज्ञान हो उसको आगमज्ञान से व्यवहार चलाना चाहिये, वहा शेष ४ व्यवहारो की जरूरत नही । जिसके पास आगम-ज्ञान न हो तो उसे श्रुत (सूत्र) मे व्यवहार चलाना चाहिये, वहा शेष तीन व्यवहारो की जरूरत नही । श्रुत (सूत्र) न हो तो आज्ञा से व्यवहार चलाना चाहिए, वहा शेष दो की जरूरत नही । आज्ञाव्यवहार न हो तो धारणा से व्यवहार चलाना चाहिए । धारणाव्यवहार न हो तो जीतव्यवहार से व्यवहार चलाना चाहिए ।

३—आज्ञाव्यवहार—अतिचारो की आलोचना करने के लिये किसी गीतार्थ साधु ने अपने अगीतार्थ शिष्य के साथ दूसरे देश मे रहे हुए गीतार्थ साधु के पास गूढ अर्थ वाले पद भेजे । उन गूढ अर्थ वाले पदो को समझकर उस गीतार्थ साधु ने वापिस गूढ अर्थ वाले पदो मे अतिचारो की शुद्धि के लिए प्रायश्चित भेजा । इसको आज्ञाव्यवहार कहते हैं ।

४—धारणाव्यवहार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का विचार करके गीतार्थ साधु ने जिस अपराध मे जो प्रायश्चित्त दिया हो, उसकी धारणा से वैसे ही अपराध मे उसी प्रकार का प्रायश्चित्त देना धारणाव्यवहार कहलाता हैं । अथवा कोई साधु सव छेदसूत्र नही सीखता हो, उसे गुरु

इन पाच व्यवहारो से उचित प्रवृत्ति और पाप से निवृत्ति करता है और कराता हुआ साधु भगवान् की आज्ञा का आराधक होता है ।

△

२२. जीवधड़ा

जीव के ५६३ भेद हैं । यथा—

नारकी के १४ भेद—सात नारकी के पर्याप्त और अपर्याप्त ।

तिर्यंच के ४८ भेद—

२२, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय, इन चार प्रकार के स्थावर जीवो के प्रत्येक के सूक्ष्म और बादर तथा पर्याप्त और अपर्याप्त—ऐसे चार भेदो से कुल

महाराज जो प्रायश्चित पद सिखावे, उनकी धारणा करना धारणाव्यवहार कहलाता है ।

५—जीतव्यवहार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा शारीरिक बल धैर्य आदि की हानि विचार कर जो प्रायश्चित्त दिया जाता है वह जीतव्यवहार कहलाता है अथवा गीतार्थ साधु मिल कर जो मर्यादा बाधते हैं, वह जीतव्यवहार कहलाता है ।

१६ भेद हुए। वनस्पतिकाय के सूक्ष्म, साधारण और प्रत्येक, इन तीन के पर्याप्त और अपर्याप्त, ये ६ भेद हुए। इस प्रकार पाच स्थावर के कुल २२ भेद हुए।

६ द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय। इन तीन विकलेन्द्रिय के पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे ६ भेद हुए।

२०, पचेन्द्रिय तिर्यंच पाच प्रकार के १ जलचर २ स्थलचर ३ खेचर ४ उरपरिसर्प और ५ भुजपरिसर्प। ये पाचो हो असज्ञी और पाचो ही सज्ञी। ये १० भेद हुए और इनके पर्याप्त, और अपर्याप्त, ऐमे २० भेद हुए।

इस प्रकार तिर्यंच जीवो के कुल ४८ भेद हुए।

मनुष्य के ३०३ भेद—

कर्मभूमिज मनुष्य के १५ भेद है। यथा—५ भरत× ५ ऐरावत और ५ महाविदेह मे उत्पन्न मनुष्यो के १५ भेद। अकर्मभूमिज (भोगभूमिज) मनुष्य के ३० भेद है। यथा—५ देवकुरु ५ उत्तरकुरु, ५ हरिवास, ५ रम्यक्वास, ५ हेमवत और ५ ऐरण्यवत क्षेत्रो मे उत्पन्न मनुष्यो के ३० भेद। ५६ अन्तरद्वीपो मे उत्पन्न होने वाले मनुष्यो के

× पाच भरत इस प्रकार है—जम्बूद्वीप मे १ भरत, धातकीखण्ड में २ और पुष्करार्द्ध मे २ ये ५ हुए। इसी प्रकार ऐरावत और महाविदेह भी हैं और अकर्मभूमिज भी।

५६ भेद। ये सभी मिलाकर गर्भज मनुष्य के १०१ भेद होते है। इनके पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से २०२ भेद होते है। और इन १०१ की अशुचि मे उत्पन्न सम्मूर्च्छिम मनुष्य के १०१ भेद। कुल मिलाकर मनुष्य के ३०३ भेद होते हैं।

देव के १९८ भेद—

१० भवनपति के १० भेद—१ असुरकुमार २ नागकुमार ३ सुवर्णकुमार ४ विद्युतकुमार ५ अग्निकुमार ६ उदधिकुमार ७ द्वीपकुमार ८ दिशाकुमार ९ पवनकुमार १० स्तनितकुमार।

१५ परमाधार्मिक देवो के १५ भेद है। यथा १ अम्ब २ अम्बरीष ३ श्याम ४ शवल ५ रौद्र ६ महारौद्र ७ काल ८ महाकाल २ असिपत्र १० धनुष ११ कुम्भ १२ बालुका १३ वैतरणी १४ खरस्वर और १५ महाघोष।

२६ वाणव्यन्तर के २६ भेद है। जैसे—पिशाचादि ८ (१ पिशाच २ भूत ३ यक्ष ४ राक्षस ५ किन्नर ६ किम्पुरुष ९ महोरग और ८ गन्धर्व) आणपण्णे आदि ८ (१ आणपन्न २ पाणपण्ण ३ इसिवाई ४ भूयवाई ५ कन्दे ६ महाकन्दे ७ कूह्यण्डे ८ पयगदेवे)। जृम्भक १० (१ अन्न जृम्भक २ पान जृम्भक ३ लयन जृम्भक ४ शयन जृम्भक ५ वस्त्र जृम्भक ६ फल जृम्भक ७ पुष्प जृम्भक ८ फलपुष्प जृम्भक ९ विद्या जृम्भक और १० अग्नि जृम्भक)।

१०, ज्योतिषी देवो के ५ भेद—१ चन्द्र २ सूर्य ३ ग्रह ४ नक्षत्र और ५ तारा। इनके चर (भ्रमणशील) और अचर (स्थिर) के भेद से दस भेद हो जाते हैं।

१२, वैमानिक देवो कल्पोपपन्न और कल्पातीत दो भेद है। इनमे कल्पोपपन्न के १२ भेद है। जैसे—१ सौधर्म २ ईशान ३ सनत्कुमार ४ माहेन्द्र ५ ब्रह्म ६ लातक ७ महाशुक्र ८ सहस्रार ९ अणात १० प्राणत ११ आरण और १२ अच्युत।

९, कल्पातीत के दो भेद—ग्रैवेयक और अनुत्तर वैमानिक। ग्रैवेयक के ९ भेद—१ भद्र २ सुभद्र ३ सुजात ४ सुमनस ५ सुदर्शन ६ प्रियदर्शन ७ अमोह ८ सुप्रतिबद्ध और ९ यथोधर।

५, अनुत्तर वैमानिक के पाच भेद है। जैसे—१ विजय २ वैजयन्त ३ जयन्त ४ अपराजित और ५ सवार्थ-सिद्ध।

३ किल्विषिक देव १ त्रैपल्योपमिक २ त्रैसागरिक और ३ त्रयोदशसागरिक+।

९ लोकान्तिक देवो के नौ भेद—१ सारस्वत २

+ समानाकार मे स्थित प्रथम और दूसरे देवलोक के नीचे त्रैपल्योपमिक, तीसरे और चौथे देवलोक के नीचे त्रैसागरिक और छठे देवलोक के नीचे त्रयोदस-सागरिक किल्विषिक देव रहते है।

आदित्य ३ वन्हि ४ वरुण ५ गर्दतोयक ६ तुषित ७ अव्या-बाध ८ आग्नेय और ९ अरिष्ट ।

इस प्रकार १० भवनपति, १५ परमाधार्मिक, १६ वाणव्यन्तर, १० जृम्भक, १० ज्योतिषी, १२ वैमानिक, ३ किल्विषिक, ९ लौकान्तिक, ९ ग्रैवेयक और ५ अनुत्तर वैमानिक । कुल मिला कर ९९ भेद हुए । इनके पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से देव के १९८ भेद होते हैं ।

उपरोक्त ५६३ भेदो का सत्ताईस द्वारो से निरूपण किया जाता है—

द्वार—

१ जीव २ गति ३ इद्रिय ४ काय ५ योग ६ वेद ७ कषाय ८ लेश्या ९ सम्यक्त्व १० ज्ञान ११ दर्शन १२ सयम १३ उपयोग १४ आहारक १५ भाषक १६ परित्त १७ पर्याप्त १८ सूक्ष्म १९ सन्नी २० भव्य २१ चरम २२ सहनन २३ सठाण २४ क्षेत्र २५ शाश्वत २६ अमर और २७ गर्भज ।

१ जीवद्वार

समुच्चय जीव के भेद ५६३—नारकी के १४, तिर्यंच के ४८, मनुष्य के ३०३ और देव के १९८ ।

२ गतिद्वार

१ नरकगति मे १४ । तिर्यंच मे ४८ । तिर्यंचिनी मे

१० (पाच सन्नी तिर्यंच के पर्याप्त व अपर्याप्त) मनुष्यगति मे ३०३ मनुष्यिनी मे २०२ (१०१ सन्नी मनुष्य के पर्याप्त व अपर्याप्त २०२) । देव मे १६८ । देवी मे १२८ (१० भवनपति, १५ परमाधामी, १६ वाणव्यन्तर, १० जृम्भक, १० ज्योतिषी १ पहला १ दूसरा देवलोक के और १ पहले किल्विषी-कुल ६४ के पर्याप्त और अपर्याप्त) सिद्ध भगवान् मे गति नही ।

३ इन्द्रियद्वार

सइंन्द्रिय मे ५६३ सभी भेद । एकेन्द्रिय मे २२, बेइन्द्रिय मे २. तेइन्द्रिय मे २, चौरिन्द्रिय मे २ और पचेन्द्रिय मे ५३५ (५६३ मे से एकेन्द्रिय के २२ और विकलेन्द्रिय के ६ छोडकर) अनिन्द्रिय मे १५ (१५ कर्म-भूमि के पर्याप्त—१३, १४ गुणस्थान वाले । श्रोत्रेन्द्रिय मे ५३५ (पचेन्द्रिय) चक्षुरिन्द्रिय मे ५३७ (चौरिन्द्रिय के पर्याप्त व अपर्याप्त बढे) घ्राणेन्द्रिय मे ५३९ (२ तेइन्द्रिय के पर्याप्त व अपर्याप्त बढे)। रसनेन्द्रिय के ५४१ (बेइन्द्रिय के पर्याप्त व अपर्याप्त बढे) । स्पर्शनेन्द्रिय के ५६३ ।

इन्द्रिय अलद्धिया में (अलद्धिया—अनुपलब्ध जो नही है) ।

श्रोत्रेन्द्रिय के अलद्धिये मे ४३–एकेन्द्रिय के २२ बेइन्द्रिय के २ तेइन्द्रिय के २ चौरिन्द्रिय के २ और १५ कर्मभूमि के पर्याप्त मनुष्य (१३, १४ गुणस्थानी ।)

चक्षुरिन्द्रिय के अलद्धिये मे ४१ (४३ मे से चौरि-न्द्रिय के २ कम) ।

घ्राणेन्द्रिय के अलद्धिये मे ३९ (४१ मे से तेइन्द्रिय के २ कम)।

रसनेन्द्रिय के अलद्धिये मे ३७ (३९ मे से बेइन्द्रिय के २ कम)।

स्पर्शनेन्द्रिय के अलद्धिये मे १५ (पन्द्रह कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त। १३ वें १४ वें गुणस्थानी)।

४ कायद्वार

सकाया मे ५६३ सभी। पृथ्वीकाय मे ४, अप्काय मे ४, तेऊकाय मे ४, वायुकाय मे ४, वनस्पतिकाय मे ६ और त्रसकाय मे ५४१ (एकेन्द्रिय के २२ कम)। अकाया (सिद्ध) मे कोई भेद नही।

५ योगद्वार

सहयोगी मे ५६३—सभी।

मनयोगी मे २१२—नारकी के ७, तिर्यंच के ५, सन्नी मनुष्य के १०१ और देव के ९९। ये सभी पर्याप्त।

वचनयोगी मे २२०—मनयोगी के २१२ के सिवाय ५ असन्नी तिर्यंच और तीन विकलेन्द्रिय के पर्याप्त।

कामयोगी मे ५६३—सभी।

मन, वचन और काय योग मे २१२—मनयोगी के समान।

व्यवहारभाषा में २२०—वचनयोगी के अनुसार ।

औदारिकयोग मे ३५१—तिर्यंच के ४८ और मनुष्य के ३०३ ।

औदारिकमिश्रयोग मे २४७—तिर्यच के ३०-२४ अपर्याप्त, और ५ पर्याप्त सन्नी तिर्यंच तथा एक वायुकाय । मनुष्य मे २१७—असन्नी मनुष्य के अपर्याप्त १०१, सन्नी मनुष्य के अपर्याप्त १०१ और कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त १५ ।

वैक्रिययोग मे २३३—१४ नारकी के सभी ५ सन्नी तिर्यंच के पर्याप्त, १ वायुकाय के पर्याप्त, १५ कर्मभूमि मनुष्य के पर्याप्त और १९८ देव के सभी ।

वैक्रियमिश्रयोग मे २१९—वैक्रिय योग के २३३ मे से ९ ग्रैवेयक और ५ अनुत्तर विमान के पर्याप्त के १४ भेद कम ।

आहारक और आहारकमिश्र मे १५—कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त (कोई विशिष्ट सयमी सत) ।

कार्मणाकाययोग मे ३४७—नारकी के ७ तिर्यंच के २४, देव के ९९, असन्नी मनुष्य के १०१ अपर्याप्त, सन्नी मनुष्य के १०१ अपर्याप्त और १५ कर्मभूमिज के पर्याप्त (गु १३ के) ।

अयोगी मे १५—कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त १४ वे गुणस्थानी ।

पर्याप्त और अपर्याप्त । कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त और अपर्याप्त ।

अवेदी मे १५ कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त १५ ।

एकात पुरुषवेद मे ७० तीसरे देवलोक से आगे के देव ।

एकात नपु सकवेद मे १५३ नारकी के १४, तिर्यंच के ४८, (४८ मे से पाच सन्नी तिर्यंच के पर्याप्त व अपर्याप्त १० कम) असन्नी मनुष्य के अपर्याप्त १०१ ।

७. कषायद्वार

सकषायी मे ५६३ भेद–सभी ।

अकषायी मे-१५ कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त । गुण-स्थान ११ से १४ तक ।

८ लेश्याद्वार

सलेशी मे–५६३ ।

कृष्ण, नील और कापोत, इन तीन लेश्या मे, प्रत्येक मे ४५९ ।

नारक मे ६ पहली दूसरी और तीसरी मे कापोत-लेश्या पर्याप्त अपर्याप्त ६ । तीसरी चौथी और पाचवी मे नीललेश्या ६ । पाचवी छठी और सातवी कृष्णलेश्या ६ ।

४८ तिर्यंच मे ।

३०३ मनुष्य के ।

१०२ देव के—भवनपति के १०, परमाधामी के १५, व्यतर के १६, जृम्भक के १०। इन ५१ के पर्याप्त अपर्याप्त।

तेजोलेश्या मे–३४३—

१३ तिर्यंच मे–वादर–पृथ्वीकाय अप्काय और वनस्पतिकाय के अपर्याप्त मे। सन्नी-तिर्यंच पचेन्द्रिय के पर्याप्त अपर्याप्त के १०।

२०२ मनुष्य-सन्नी के पर्याप्त और अपर्याप्त के।

१२८ देव के–भवनपति के १०, परमाधामी के १५, व्यन्तर के १६, जृम्भक के १०, ज्योतिषी के १०, वैमानिक के पहले के १, दूसरे के १ और प्रथम किल्विषी के १। इन ६४ के पर्याप्त अप।

पद्मलेश्या मे—६६।

१० तिर्यंच के–सन्नी पचेन्द्रिय के पर्याप्त अपर्याप्त।

३० मनुष्य के–कर्मभूमि १५ पर्याप्त अपर्याप्त।

२६ देव के–तीसरे १ चौथे १ और पाचवे १ देवलोक दूसरे किल्विषी १ और लोकान्तिक देव, ९ के पर्याप्त अपर्याप्त।

शुक्ललेश्या मे–८४।

१० तिर्यंच सन्नी के पर्याप्त अपर्याप्त।

३० कर्मभूमिज मनुष्य के।

४४ देव के–वैमानिक के छठे से १२ वे तक देव-

लोक ७, तीसरे किल्विषी १, ग्रैवेयक ६ और अनुत्तर ५। इन २२ के पर्याप्त अपर्याप्त ।

एकान्त कृष्णलेश्या मे ४—छठी और सातवी नरक के पर्याप्त अपर्याप्त ।

एकान्त नीललेश्या मे २—चौथी नरक के पर्याप्त अपर्याप्त ।

एकान्त कापोतलेश्या मे ४—पहली और दूसरी नरक के पर्याप्त अपर्याप्त ।

एकान्त तेजोलेश्या मे २६—ज्योतिषी देव के १०, वैमानिक के पहले १ दूसरे १ और प्रथम किल्विषी १। इन १३ के पर्याप्त अपर्याप्त ।

एकान्त पद्मलेश्या मे— २६। वैमानिक के ३, ४, ५ देवलोक, दूसरे किल्विषी और लोकान्तिक ६। इन १३ के पर्याप्त अपर्याप्त ।

एकान्त शुक्ललेश्या में—४४। छठे देवलोक से १२ वे तक ७, तीसरे किल्विषी १ ग्रैवेयक ६ और अनुत्तर ५।

इन २२ के पर्याप्त अपर्याप्त। एक लेश्या मे १०६।

१० नारक के तीसरी और पाचवी नारकी छोडकर शेष ५ के। ६६ देव के ज्योतिषी के १० वैमानिक के ३८।

इनके पर्याप्त, अपर्याप्त ।

दो लेश्या मे—४। तीसरी और पांचवी नरक के पर्याप्त अपर्याप्त ।

तीन लेश्या मे–१३६ ।

३५ तिर्यंच के एकेन्द्रिय के १९ (पृथ्वी अप. और वनस्पति के अपर्याप्त छोडकर) विकलेन्द्रिय के ६ और असन्नी पचेन्द्रिय के १० ।

१०१ समूच्छिम मनुष्य के ।

चारलेश्या मे–२७७ ।

३ तिर्यंच के–पृथ्वी, अप और वनस्पतिकाय के अपर्याप्त के ।

१७२ मनुष्य के–अकर्मभूमि और अन्तर्द्वीपज के ८६ के पर्याप्त, अपर्याप्त ।

१०२ देवो के–भवनपति, परमाधामी, व्यन्तर और जृम्भक के ।

५१ के पर्याप्त, अपर्याप्त ।

५ लेश्या मे–० शून्य कोई नही ।

छह लेश्या मे ४०–सन्नी तिर्यंच के १० और कर्म-भूमि के मनुष्यो के ३० ।

अलेशी मे–१५ कर्मभूमि के मनुष्य पर्याप्त के (१४ वें गु) ।

९ सम्यक्त्वद्वार

सम्यग्दृष्टि मे २८३

१३ नारकी के (सातवीं का अपर्याप्त छोड़कर)

१८ तिर्यंच के–१० सन्नी तिर्यंच के पर्याप्त अपर्याप्त। ५ असन्नी तिर्यंच और ३ विकलेन्द्रिय के अपर्याप्त।

९० मनुष्य के–१५ कर्मभूमि, ३० अकर्मभूमि, इन ४५ के पर्याप्त और अपर्याप्त।

१६२ देव के–(१५ परमाधामी और ३ किल्विषी के पर्याप्त और अपर्याप्त।

मिथ्यादृष्टि मे ५५३। ५६३ मे से पाच अनुत्तर विमान के पर्याप्त और अपर्याप्त ये १० छोड़कर।

मिश्रदृष्टि मे १०३–नारकी के ७, तिर्यंच के ५, कर्मभूमि मनुष्य के १५, देव के ७६), परमाधामी के १५ किल्विषी के ३ और अनुत्तर के ५ ये २३ पर्याप्त कम करके)। सभी पर्याप्त ही है।

एकान्त सम्यग्दृष्टि मे १०—पाच अनुत्तर विमान के पर्याप्त और अपर्याप्त।

एकान्त मिथ्यादृष्टि मे २८०–सातवी नारकी के अपर्याप्त। तिर्यंच के ३० (एकेन्द्रिय के २२, विकलेन्द्रिय के ३ और असन्नी पचेन्द्रिय के ५। इसके पर्याप्त) मनुष्य के २१३ (असन्नी मनुष्य के अपर्याप्त १०१, अ तरद्वीप पर्याप्त और अपर्याप्त ११२) देव के ३६–परमाधामी १५ और किल्विषी ३ के पर्याप्त और अपर्याप्त।

एक दृष्टि मे २९०–एकान्त सम्यग्दृष्टि के १० और एकान्त मिथ्यादृष्टि के २८०। कुल २९०।

दो दृष्टि मे १७०–नारकी के ६ पहली से छठी तक

के अपर्याप्त । तिर्यंच के १३-पाच सन्नी तिर्यंच, पाच असन्नी तिर्यंच और तीन विकलेन्द्रिय, इनके अपर्याप्त । मनुष्य के ७५ । कर्मभूमि के अपर्याप्त १५ और अकर्मभूमि के पर्याप्त और अपर्याप्त ६० । देव के ७६-९९ मे से १५ परमाधामी ३ किल्विषी तथा अणुत्तर विमान । ये २३ कम करके शेष सभी के अपर्याप्त ।

तीन दृष्टि मे १०३--नारकी के ७, सन्नी तिर्यंच के ५, मनुष्य कर्मभूमिज के १५ और देव के ७६ । इन सभी के पर्याप्त (मिश्रदृष्टि के समान) ।

सास्वादन समकित मे २१३-नारकी के १३(सातवी नारकी का अपर्याप्त छोडकर) तिर्यंच मे १८ (५ असन्नी तिर्यंच और ३ विकलेन्द्रिय के अपर्याप्त और सन्नी तिर्यंच के पर्याप्त अपर्याप्त १०) । मनुष्य मे-पन्द्रह कर्मभूमि के पर्याप्त अपर्याप्त ३० । देव मे १५२-भवनपति १०, वाणव्यतर १६, जृम्भक १०, ज्योतिषी १०, वैमानिक १२, १२, लोकातिक ९ और ग्रैवेयक ९ के पर्याप्त अपर्याप्त (परमाधामी किल्विषी और अनुत्तर छोडकर) ।

वेदक समकित मे १०३-मिश्रदृष्टि के समान ।

उपशम समकित मे २०५—

१३ नारक के—सातवी के अपर्याप्त को छोडकर ।

१० तिर्यंच के—सन्नी पचेन्द्रिय के पर्याप्त अपर्याप्त ।

३० मनुष्य के—कर्मभूमि १५ के पर्याप्त अपर्याप्त ।

१५२ देव के—१५ परमाधामी ३ किल्विषी और ५ अनुत्तर के पर्याप्त अपर्याप्त छोडकर ।

क्षायोपशमिक सम्यक्त्व मे—२७५ । उपशम के २०५ में ३० अकर्मभूमि के मनुष्यो के ६० और ५ अनुत्तर के १०, ये ७० और मिलाने से २७५ ।

क्षायिक सम्यक्त्व मे २६२ ।

८ नारक के—प्रथम के चार नारक के पर्याप्त अपर्याप्त ।

२ तिर्यच के—सन्नी थलचर युगल के पर्याप्त अपर्याप्त ।

९० मनुष्य के—१५ कर्मभूमिज और ३० अकर्मभूमिज के पर्याप्त अपर्याप्त ।

१६२ देव के –१५ परमाधामी और ३ किल्विषी के पर्याप्त अपर्याप्त ऐसे ३६ छोडकर ।

१०. ज्ञानद्वार

समुच्चय ज्ञानी और मति–श्रुत ज्ञानी मे २८३ । सम्यक्त्व के समान ।

अवधिज्ञानी मे २१०—

१३ नारक मे—सातवी के अपर्याप्त छोडकर ।

५ तिर्यञ्च मे—सज्ञी पचेन्द्रिय के पर्याप्त ।

३० मनुष्य मे—१५ कर्मभूमिज के पर्याप्त अपर्याप्त ।

१६२ देव मे—१५ परमाधामी और ३ किल्विषी के छोड़कर ।

मन पर्यय और केवलज्ञानी मे १५ कर्मभूमिज मनुष्यो के पर्याप्त। मतिश्रुत अज्ञान और समुच्चय अज्ञान मे—५५३ (पाच अनुत्तर विमानवासी देवो के १० भेद छोडकर)।

१४ नारक के पर्याप्त अपर्याप्त सभी।

५ तिर्यंच मे—सज्ञी पचेन्द्रिय के पर्याप्त।

१५ मनुष्य मे—१५ कर्मभूमिज के पर्याप्त।

१८८ देव मे—५ अनुत्तर देवो के पर्याप्त अपर्याप्त छोडकर।

११ दर्शनद्वार

चक्षुदर्शन मे ५३७ - नारकी के १४, तिर्यंच के २२—

(चौरिन्द्रिय, असन्नी और सन्नी पचेन्द्रिय, इन ११ के पर्याप्त अपर्याप्त)। मनुष्य के ३०३ और देव के १९८।

अचक्षुदर्शन मे ५६३ सभी।

अवधिदर्शन मे २४७- नारकी के १४, सन्नी तिर्यंच पर्याप्त के ५, कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त अपर्याप्त ३० और देव के १९८।

केवलदर्शन मे १५—कर्मभूमि के मनुष्यो के पर्याप्त।

१२ सयमद्वार

समुच्चय सयत और सामायिक, सूक्ष्म-समराय और यथाख्यात चारित्र मे १५। पन्द्रह कर्मभूमि के मनुष्य के पर्याप्त।

छेदोपस्थानीय और परिहार-विशुद्धिचारित्र मे १०—भरत और ५ एरवत के मनुष्य के पर्याप्त ।

सयतासंयत मे २० । सन्नी तिर्यंच के पर्याप्त ५ और कर्मभूमि के मनुष्य के पर्याप्त १५ ।

असयत मे ५६३—सभी ।

नो सयत नो असयत नो सयतासयत (सिद्ध) मे नही ।

१३. उपयोगद्वार

साकार और अनाकार उपयोग मे ५६३—सभी ।

१४. आहारकद्वार

आहारक मे ५६३—सभी ।

अनाहारक मे ३४७—७ नारक, २४ तिर्यंच, २०२ मनुष्य और ९९ देव—ये सब पर्याप्त, तथा कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त १५ (१३ वें १४ वें गुणस्थानी) ।

१५. भाषकद्वार

भाषक के २२० भेद—

७ नारक के पर्याप्त ।

१३ तिर्यंच के—३ विकलेन्द्रिय, ५ असन्नी और ५ सन्नी पचेन्द्रिय के पर्याप्त ।

१०१ मनुष्य के—सन्नी मनुष्य के पर्याप्त ।

९९ देव के—सभी पर्याप्त देव ।

अभाषक मे ३५८—

७ नारक के अपर्याप्त ।

३५ तिर्यंच के—एकेन्द्रिय के २२ पर्याप्त अपर्याप्त। विकलेन्द्रिय ३ अपर्याप्त और सन्नी–असन्नी पचेन्द्रिय के अपर्याप्त १० ।

२१७ मनुष्य के—१०१ सन्नी और १०१ असन्नी के अपर्याप्त तथा १५ कर्मभूमि के पर्याप्त (अयोगी) ।

९९ देव के—सभी अपर्याप्त ।

१६ परित्त २० भव्य और २१ चरम द्वार

परित्त भव्य, चरम और प्रत्येक मे ५६३ ।

अपरित्त अभव्य और अचरम मे प्रत्येक मे ५५३ (पाच अनुत्तर विमान के पर्याप्त अपर्याप्त छोडकर) ।

१७ पर्याप्तद्वार

पर्याप्त मे २३१—नारकी ७, तिर्यंच २४, मनुष्य १०१ और देव ९९ ।

अपर्याप्त मे ३३२—नारकी ७, तिर्यंच २४, सन्नी मनुष्य १०१ असन्नी मनुष्य १०१ और देव के ९९ ।

१८ सूक्ष्मद्वार

सूक्ष्म मे १०—पाच सूक्ष्म स्थावर के पर्याप्त अपर्याप्त ।

वादर मे ५५३—सूक्ष्म के १० कम करके ।

१६ सन्नीद्वार

सन्नी मे ४२४- नारक के १४, तिर्यंच पचेन्द्रिय के १०, मनुष्य के २०२ (सम्मूच्छिम छोड़कर) और देव के १६८ ।

असन्नी मे १६१

१ नरक मे - पहली का अपर्याप्त ।

३८ तिर्यंच के—सन्नी के १० छोडकर ।

१०१ मनुष्य के—असन्नी ।

५१ देव के १० भवनपति के, १५ परमाधामी के, १६ वाणव्यन्तर के, १० जृम्भक के ।

ये सब अपर्याप्त है ।

२२. सहननद्वार

वज्रऋषभनाराचसहनन मे २१२—सन्नी तिर्यंच के १० और मनुष्य के २०२ (सन्नी तिर्यंच और मनुष्य के पर्याप्त अपर्याप्त) ।

मध्य के चार सहनन मे ४०—सन्नी तिर्यंच के १०, मनुष्य के ३० कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त, अपर्याप्त मे ।

सेवार्त सहनन मे १३६—

४८ तिर्यंच के ।

१३१ असन्नी मनुष्य के अपर्याप्त १०१ और कर्म-भूमिज मनुष्य के पर्याप्त अपर्याप्त ३० ।

२३ सस्थानद्वार

समचतुरस्रसस्थान मे ४१०—

१० सन्नी तिर्यंच के ।

२०२ सन्नी मनुष्य के ।

१९८ देव के–सभी ।

मध्य के चार सस्थान मे ४० । सहनन के समान ।

हुडकसस्थान मे १९३ । १४ नारक के, ४८ तिर्यंच के, १३१ मनुष्य के (असन्नी मनुष्य के अपर्याप्त १०१ और कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त अपर्याप्त ३०) ।

२४ क्षेत्रद्वार

एक भरत और ऐरावत क्षेत्र मे–५१ । पाचो मे ६३ ।

४८ तिर्यंच के और ३ मनुष्य के । सन्नी मनुष्य का अपर्याप्त और पर्याप्त और असन्नी मनुष्य का अपर्याप्त ।

महाविदेह क्षेत्र मे ६३ । ४८ तिर्यंच के । ४५ मनुष्य के–सन्नी मनुष्य का अपर्याप्त १, और पर्याप्त १, असन्नी मनुष्य अपर्याप्त १ हेमवय १, हैरण्यवय १, हरिवास १, रम्यक्वास १, देवकुरु १, और उत्तरकुरु १ । इन छ के पर्याप्त अपर्याप्त समूर्च्छिम १८ ।

२७ मनुष्य के–१ भरत, १ ऐरावत, १ महाविदेह, १ हेमवय, १ हैरण्यवय, १ हरिवास, १ रम्यक्वास १ देव-कुरु, ये ६ पर्याप्त ६ अपर्याप्त और इनके ६ असन्नी के अपर्याप्त ।

लवणसमुद्र मे २१६ । ४८ तिर्यंच के, १६८ मनुष्य के—छप्पन अ तरद्वीप के पर्याप्त अपर्याप्त १०२ और इनके असन्नी के अपर्याप्त ।

घातकी खण्ड मे १०२ । ४८ तिर्यंच के । ५४ मनुष्य के–२ भरत, २ ऐरावत, २ महाविदेह, २ हेमवय, २ हैरण्यवय, २ हरिवास २ रम्यक्वास, २ देवकुरु, २ उत्तर-कुरु । इन १८ के पर्याप्त अपर्याप्त और इसके असन्नी के अपर्याप्त ।

कालोदधि समुद्र में ४८ । ४६ तिर्यंच के(४८ मे से तेउकाय के पर्याप्त और अपर्याप्त ३ कम) ।

अर्धपुष्करवाद्वीप मे १०२ । घातकीखड के समान ।

अढाई द्वीप मे ३५१—

४८ तिर्यंच के ।

३०३ मनुष्य के ।

अढाई द्वीप के बाहर ११८–१०६—

४६ तिर्यंच के (४८ मे से बादर तेउकाय के पर्याप्त अपर्याप्त कम) ६२ देव के–१० वाणव्यतर के, १६ जृम्भक के, ५ ज्योतिषी अचर । इन ३१ के पर्याप्त अपर्याप्त ।

नीचे लोक मे ११५—

१४ नारक के—

४८ तिर्यंच के—

३ मनुष्य के—महाविदेहक्षेत्र की सलिलावतीविजय के पर्याप्त अपर्याप्त और असन्नी के अपर्याप्त ।

५० देव के—१० भवनपति और १५ परमाधामी के पर्याप्त अपर्याप्त ।

ऊचे लोक मे १२२—

४६ तिर्यंच के (४८ मे से बादर तेउकाय के पर्याप्त अपर्याप्त कम ।

७६ देव के—१२ वैमानिक, ३ किल्विषी, ६ लोकांतिक, ६ ग्रैवेयक और ५ अणुत्तर विमान, इनके पर्याप्त अपर्याप्त ।

तिर्च्छे लोक मे ४२३—

४८ तिर्यंच के ।

३०३ मनुष्य के ।

७२ देव के—१६ वाणव्यन्तर, १० जृम्भक और १० ज्योतिषी के पर्याप्त अपर्याप्त ।

सिद्धशिला मे १२—सूक्ष्म पाच स्थावर और बादर पृथ्वीकाय के पर्याप्त अपर्याप्त ।

सिद्धशिला के ऊपर तथा सातवी नरक के नीचे, लोक के चरमान्त मे १२—सूक्ष्म पाच स्थावर और बादर वायुकाय के पर्याप्त अपर्याप्त ।

२५. शाश्वतद्वार

शाश्वत मे २५०—

७ नारक के ।

१०१ मनुष्य सन्नी के पर्याप्त ।

९९ देव–सभी के पर्याप्त ।

४३ तिर्यंच के–(पाच सन्नी तिर्यच के अपर्याप्त कम) ।

अशाश्वत मे ३१३—

७ नारक के ।

२०२ मनुष्य के–सन्नी मनुष्य के १०१ और असन्नी मनुष्य के १०१ ९९ देव के ।

५ तिर्यंच के—सन्नी तिर्यंच के ।

ये सभी अपर्याप्त है ।

२६. अमरद्वार

अमर मे १९२ ।

७ नारक के ।

८६ मनुष्य के—३० अकर्मभूमि और ५६ अन्तर्दीप के । ९९ देव के।

ये सभी अपर्याप्त अवस्था में अमर होते है ।

ये सभी अपर्याप्त अवस्था मे अमर होते हैं ।

मरने वाले ३७१—

७ नारक के ।

४८ तिर्यंच के ।

२१७ मनुष्य के—१०१ असन्नी के अपर्याप्त, १०१ सन्नी के पर्याप्त और १५ अकर्मभूमि के अपर्याप्त ।

६६ देव के पर्याप्त ।

२७. गर्भजद्वार

गर्भज मे २१२—

१० तिर्यंच के सन्नी पचेन्द्रिय ।

२०२ मनुष्य के—सन्नी मनुष्य के पर्याप्त अपर्याप्त ।

नो गर्भज मे ३५१—

१४ नारक के ।

३८ तिर्यंच के—सन्नी छोडकर ।

१०१ मनुष्य—असन्नी मनुष्य के पर्याप्त ।

१६८ देव-सभी ।

२२. गति आगति

जीवो को आगति और गति का वर्णन किया जाता है ।

आगति—जीव जिस गति से आकर उत्पन्न होता है ।

गति- मरने के बाद जिस गति मे जाकर उत्पन्न होता है ।

अपेक्षा भेद से जीव के एक, दो, तीन, चार आदि अनेक भेद होते हैं । किसी अपेक्षा से ५६३ भेद भी हैं । वे इस प्रकार है—नारकियो के १४, तिर्यच के ४८, मनुष्यो के ३०३ और देवो के १९८ ।

नारकियों के १४ भेद

१ घम्मा २ वशा ३ सीला ४ अजना ५ रिष्टा ६ मघा ७ माघवई । इन सात नारको के नारकी पर्याप्त भी होते है ओर अपर्याप्त भी । अत· ७ पर्याप्त और ७ अपर्याप्त के चौदह भेद हैं ।

तिर्यचों के ४८ भेद

१ पृथ्वीकाय के चार भेद—सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त ।

२ अप्काय के चार भेद—सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त ।

३ तेउकाय के चार भेद—सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त ।

४ वायुकाय के चार भेद—सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त ।

५ वनस्पतिकाय के छह भेद—सूक्ष्म, साधारण और प्रत्येक । इनके पर्याप्त और अपर्याप्त । यो एकेन्द्रियो के २२ भेद हुए ।

तीन विकलेन्द्रिय के छह भेद–१ द्वीन्द्रिय २ त्रीन्द्रिय ४ चतुरिन्द्रिय के पर्याप्त और अपर्याप्त ।

पचेन्द्रिय के पाँच भेद है–१ जलचर २ स्थलचर ३ खेचर ४ उरपरिसर्प और ५ भुजपरिसर्प । इनके सज्ञी असज्ञी के भेद से दस भेद है और पर्याप्त तथा अपर्याप्त के भेद से वीस भेद होते है । इस प्रकार सब मिलकर तिर्यचो के ४८ भेद है ।

मनुष्यो के ३०३ भेद

जहा असि मसि कृषि वाणिज्य शिल्प-कला की प्रवृत्ति होती है, उसे 'कर्मभूमि' कहते है और जहा असि मसि आदि की प्रवृत्ति नही होती और कल्पवृक्षो से ही निर्वाह हो जाता है, उसे अकर्मभूमि कहते हैं । कर्मभूमि के १५ भेद❀ हैं और भोग भूमि के ३० भेद× है । दोनो

❀ कर्मभूमि १५ इस प्रकार की है--५ भरत, ५ ऐरावत, ५ महाविदेह । एक भरत जम्बूद्वीप का, दो घातकीखण्ड के और दो पुष्करार्ध के, ये ५ भरतक्षेत्र है । इसी प्रकार ऐरावत और महाविदेह भी समझने चाहिए ।

× भोगभूमि ३० पूर्वोक्त प्रकार से ५ देवकुरु, ५ उत्तरकुरु, ५ हरिवास, ५ रम्यक्वास, ५ हेरण्यवत । इस प्रकार ३० अकर्मभूमि है ।

को मिलाकर उनमे रहने वाले मनुष्य के ४५ भेद है। ५६ अन्तरद्वीपो+मे रहने वाले अकर्मभूमिज मनुष्यो के ५६ भेद भी उनमे जोड़ने से १०१ भेद होते हैं। पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से इनके २०२ भेद हो जाते है। इन १०१ क्षेत्रो मे चौदह अशुचिस्थानो मे उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम असज्ञी अपर्याप्त मनुष्यो के १०१ भेद जोड़ने से ३०३ भेद होते है।

१४ देवों के १९८ भेद

१० भवनपति, १५ परमाधार्मिक, १६ व्यन्तर, १०

+ जम्बूद्वीप मे दक्षिण की ओर चूलहेम पर्वत और उत्तर की ओर शिखरी पर्वत की चार-चार दाढाए है और प्रत्येक दाढा पर सात-सात क्षेत्र है। यही ८×७=५६ अन्तरद्वीप कहलाते है। अन्तरद्वीपो के जैसे नाम है वैसे ही वहा के मनुष्य होते है। नाम ये है—१ एकोरुक २ अभाषिक ३ वैषाणिक ४ नागोलिक ५ हयकर्ण ६ गयकर्ण ७ शष्कुलिकर्ण ८ गोकर्ण ९ आदर्शमुख १० मेण्ढमुख ११ अयोमुख १२ गोमुख १३ अश्वमुख १४ हस्तिमुख १५ सिहमुख १६ व्याघ्रमुख १७ अश्वकर्ण १८ सिहकर्ण १९ अकर्ण २० कर्मप्रावरण २१ उल्कामुख २२ मेघमुख २३ विद्युद्दन्त २४ विद्युन्मुख २५ घनदन्त २६ लष्टदन्त २७ गूढदन्त २८ शुद्धदन्त। इनका विस्तृत वर्णन जीवाभिगम प्र. ३ उ १ मे है। दूसरी ओर के भी ये ही नाम है।

जृम्भक,— १० ज्योतिषी +१२ वैमानिक, ३ किल्विषी ६ नवग्रैवेयक के देव, ५ अनुत्तर विमान के देव, ६ लोकान्तिक । ये ६६ प्रकार के देव पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से १६८ प्रकार के होते है ।

जीव के ये सभी भेद मिलाकर ५६३ होते हैं । इन ५६५ भेदो की गति–आगति का यहा वर्णन किया जाता है ।

१ पहली नारकी मे आगति २५ की है । यथा— १५ कर्मभूमिज मनुष्य, ५ सज्ञी तिर्यंच और ५ असज्ञी तिर्यंच पचेन्द्रिय के पर्याप्त । इन २५ स्थानो से आकर जीव, पहली नरक मे उत्पन्न होते हैं । गति ४० की १५ कर्मभूमिज मनुष्य और ५ सज्ञी तिर्यंच । इन २० के पर्याप्त और २० अपर्याप्त ।

२ दूसरी नारकी मे आगति २० की । १५ कर्मभूमिज मनुष्य और ५ सज्ञी तिर्यंच । गति ४० की पहली नारकी के समान ।

— १ अन्नजृम्भक २ पानजृम्भक ३ लयणजृम्भक ४ शयनजृम्भक ५ वस्त्रजृम्भक ६ पुष्पजृम्भक ७ फलजृम्भक ८ पुष्पफलजृम्भक ६ वीजजृम्भक और १० आवतिजृम्भक । ये दस जृम्भक हैं ।

+ चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा, ये पाच ज्योतिषी अढाईद्वीप मे चर हैं और उनके वाहर स्थिर है । अत चर—स्थिर के भेद से इनके दस भेद होते हैं ।

३. तीसरी नारकी मे आगति १९ की। दूसरी नारकी के २० भेदो मे से भूजपरिसर्प को छोडकर। गति ४० की पहली नारकी के समान।

४ चौथी नारकी मे आगति १८ की। तीसरी नारकी के १९ भेदो मे से 'खेचर' को छोडकर। गति ४० की। पहली नारकी के समान।

५ पाचवी नारकी मे आगति १७ भेद से, चौथी नारकी के १८ भेदो मे से स्थलचर को छोडकर। गति ४० की।

६ छठी नारकी मे आगति १६ भेद से, पाचवी नारकी के १७ भेदो मे से उरपरिसर्प को छोडकर। गति ४० की।

७. सातवी नारकी मे आगति १६ भेद से, १५ कर्म-भूमिज मनुष्य× और १ मत्स्य जलचर के पर्याप्त। गति १० भेद मे ५ सज्ञी तिर्यच पर्याप्त और ५ अपर्याप्त।

८. भवनपति वाणव्यन्तर देव मे आगति १११ भेद से १०१ सज्ञी मनुष्य, ५ सज्ञी तिर्यंच और ५ असज्ञी तिर्यंच पचेन्द्रिय के पर्याप्त। गति ४६ भेद मे १५ कर्मभूमिज, ५ सज्ञीतिर्यच, १ बादर पृथ्वीकाय, १ बादर अप्काय और

× यहा सामान्य रूप से कर्मभूमिज मनुष्य मिलाये हैं, परन्तु स्त्री सातवे नरक मे नही जा सकती।

१ बादर वनस्पतिकाय । इन २३ के पर्याप्त और अपर्याप्त कुल ४६ ।

९ ज्योतिषी और पहले देवलोक मे आगति ५० भेद से १५ कर्मभूमिज मनुष्य, ३० अकर्मभूमिज और ५ सज्ञी तिर्यंच के पर्याप्त गति ४६ भेद मे—भवनपति के समान ।

१० दूसरे देवलोक मे आगति ४० भेद से, ३० अकर्मभूमिज मे से ५ हैमवत और ५ हैरण्यवत के १० भेद छोडकर २०, तथा १५ कर्मभूमिज मनुष्य और ५ सज्ञी तिर्यंच । गति ४६ भेद मे भवनपति के समान ।

११ पहले किल्विषी मे आगति ३० से, १५ कर्म-भूमिज-मनुष्य, ५ सज्ञी तिर्यंच, ५ देवकुरु और ५ उत्तर-कुरु । गति ४६ मे भवनपति के समान ।

१२ तीसरे देवलोक से आठवें देवलोक तक के छः लोकातिक और दूसरे व तीसरे किल्विषी, इन सत्तरह प्रकार के देवो मे २० भेद से आगति—१५ कर्मभूमिज मनुष्य और ५ सज्ञी तिर्यंच के पर्याप्त । गति ४० भेद मे १५ कर्मभूमि के मनुष्य और ५ सज्ञी तिर्यंच के पर्याप्त और अपर्याप्त ।

१३ नौवे से बारहवे देवलोक, नौग्रैवेयक और पाच अनुत्तर विमान, इन अठारह जाति के देवो मे आगति १५ भेद से—१५ कर्मभूमि के पर्याप्त मनुष्य की । गति ३० भेद मे—१५ कर्मभूमि के पर्याप्त और अपर्याप्त मनुष्य ।

१४ पृथ्वी जल और वनस्पति मे आगति २४३ भ

से–१०१ सम्मूर्च्छिम अपर्याप्त मनुष्य, ३० पन्द्रह कर्मभूमि के पर्याप्त अपर्याप्त मनुष्य, ४८ तिर्यंच,+६४ देव (२५ भवनपति, २६ वाणव्यन्तर, १० ज्योतिषी, पहला व दूसरा देवलोक के और पहला किल्विषी के पर्याप्त) एव २४३। गति १७९ भेदो मे–१०१ सम्मूर्च्छिम मनुष्य के अपर्याप्त, १५ कर्मभूमि के पर्याप्त और १५ अपर्याप्त तथा ४८ तिर्यंच।

१५. तेजस्काय और वायुकाय मे आगति–१७९ भेद से, ऊपर लिखे अनुसार। गति ४८ भेद के तिर्यंचो मे।

१६. तीन विकलेन्द्रिय मे आगति–१६९ भेद से और गति १७९ भेद मे–पूर्ववत्।

१७ असज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय मे आगति १७९ भेदो से पूर्ववत्। गति ३९५ भेदो मे–५६ अन्तरद्वीप के पर्याप्त मनुष्य, २५ भवनपति के और २६ व्यन्तर के–(यो कुल ५१ जाति के देव)और पहली नारकी, इन १०८ के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से २१६ और १७९ पूर्व कहे हुए। इस प्रकार ३९५।

१८. पाच सज्ञी तिर्यंच मे आगति २६७ भेदो से—८१ प्रकार के देव (ऊपर के चार देवलोक, नौग्रैवेयक, पाच अनुत्तर, इन १८ को छोडकर) ७ नारकी के पर्याप्त और पहले कहे हुए १७९ भेद, ये सव मिलाकर २६७ भेद हुए। इन पाचो की गति भिन्न-भिन्न इस प्रकार है।

जलचर की गति-५२७ भेदो मे। ५६३ भेदो मे से

नौवें देवलोक से सवार्थसिद्ध तक के १८ जाति के देव के पर्याप्त और अपर्याप्त ये ३६ कम करने से शेष बचे हुए ५२७।

उरपरिसर्प की गति–५२३ भेदो मे। ५२७ भेदो मे से छठी और सातवी नारकी का पर्याप्त और अपर्याप्त, ये ४ कम करने से शेष रहे हुए ५२३ भेद।

स्थलचर की गति–५२१ भेद की। ५१३ मे से पाचवी नारकी का पर्याप्त और अपर्याप्त ये २ छोडकार।

खेचर की गति–५१९ भेद की। ५२१ मे से चौथी नारकी के पर्याप्त और अपर्याप्त ये २ छोडकर।

भुजपरिसर्प की गति–५१७ भेद की। ५१९ मे से तीसरी नारकी के पर्याप्त और अपर्याप्त ये २ छोडकर।

१९ असज्ञी मनुष्य मे आगति–१७१ भेद की। पहले कहे हुए १७९ भेदो मे से तेउकाय और वायुकाय के ८ भेद कम करके शेप वचे हुए। गति १७९ भेद की–पूर्ववत्।

२० पन्द्रह कर्मभूमि के सज्ञी मनुष्य मे आगति २७६ भेद की। १७१ पूर्ववत् (असज्ञी मनुष्य की आगति के समान) ९९ जाति के देव और पहली से ६ नारकी के पर्याप्त। गति ५६३ की।

२१ तीस अकर्मभूमि के सज्ञी सनुष्य की आगति–२० की। १५ कमभूमि और ५ सज्ञी तिर्यंच, इन २० वीस के पर्याप्त के उनकी गति भिन्न-भिन्न है।

पाच देवकुरु और पाच उत्तरकुरु, इन दस क्षेत्रो के मनुष्यो की गति–१२८ की । ६४ प्रकार के देव पर्याप्त और ६४ अपर्याप्त ।

पाच हरिवास और पाच रम्यक्वास, इन दस क्षेत्रो के मनुष्यो की गति–१२६ की । १२८ मे से पहले किल्विषी के पर्याप्त और अपर्याप्त छोडकर ।

पाच हैमवत और पाच हैरण्यवत, इन दस क्षेत्रो के मनुष्यो की गति १२४ की । १२६ मे से दूसरे देवलोक के पर्याप्त और अपर्याप्त छोडकर ।

२२. छप्पन अन्तरद्वीपो मे आगति २५ की । १५ कर्मभूमिज मनुष्य, ५ सज्ञी तिर्यच और ५ असज्ञी तिर्यंच के पर्याप्त गति १०२ की–२५ भवनपति और २६ वाणव्यन्तर इन ५१ के पर्याप्त और ५१ अपर्याप्त ।

२३ तीर्थंकर की आगति ३८ की– ३५ वैमानिको के (किल्विषी छोडकर) और प्रथम ३ नारकी के पर्याप्त । गति—मोक्ष की ।

२४ चक्रवर्ती की आगति ८२ भेद से—६६ जाति के देवो मे से १५ परमाधामी और ३ किल्विषी, इन १८ को छोडकर शेष बचे हुए ८१ देव और पहली नारकी के पर्याप्त । गति १४ की ७ नरक के पयप्ति और अपर्याप्त । (यदि दीक्षा लेवे तो देवलोक या मोक्ष की) ।

२५ वासुदेव की आगति ३२ की–१२ देवलोक, ६ लोकान्तिक, ६ ग्रैवेयक और पहली व दूसरी नारकी के

पर्याप्त, इस प्रकार ३२ गति १४ की सात नरक के पर्याप्त और अपर्याप्त ।

२६. वलदेव की आगति ८३ की—चक्रवर्ती के ८२ और दूसरी नारकी से* ।

२७ केवली की आगति १०८ की—६६ जाति के देव मे से १५ परमाधर्मी और ३ किल्विषी निकाल कर, शेप ८१, १५ कर्मभूमिज मनुष्य, ५ सज्ञी तिर्यंच, १ पृथ्वी, १ पानी, १ वनस्पति और पहले की चार नरक । इस प्रकार १०८ पर्याप्त गति मोक्ष की ।

२८ साधु की आगति २७५ की-१७१ पूर्वोक्त (असंज्ञी मनुष्य की आगति न १६ वत्) ६६ प्रकार के देव और प्रथम से ५ तक के नारक पर्याप्त, इस प्रकार २७५ । गति ७० भेद की—१२ देवलोक, ६ लोकान्तिक, ६ ग्रैवेयक और ५ अनुत्तर विमान के देव । इन ३५ के पर्याप्त और अपर्याप्त ७० ।

२६ श्रावक की आगति २७६ की—पूर्वोक्त २७५ और छठी नरक । गति ४२ की—१२ देवलोक, ६ लोकान्तिक, इन २१ जाति के देवो के पर्याप्त और अपर्याप्त—४२ ।

३० सम्यग्दृष्टि की आगति ३६३ की ६६ प्रकार

---

* वलदेव की पदवी अमर है, यदि दीक्षा लेवे तो गति ७० भेद—साधु के समान या मोक्ष ।

के देव, १०१ संज्ञी मनुष्य के पर्याप्त, १०१ सम्मूर्च्छिम मनुष्य १५ कर्मभूमिज मनुष्य के अपर्याप्त, ७ नारकी के पर्याप्त और तेजस्काय वायुकाय के ८ भेदो को छोडकर शेष रहे हुए ४० भेद तिर्यंच के, सभी मिलाकर ३६३ । गति २८२ भेद की ८१ जाति के देवता, १५ कर्मभूमिज मनुष्य, ३० अकर्मभूमिज मनुष्य, ५ सज्ञी तिर्यच और ६ नारकी, इन १३७ के पर्याप्त और अपर्याप्त, इस प्रकार २७४ तथा ३ विकलेन्द्रिय और ५ असज्ञी तिर्यंच का अपर्याप्ति ये २८२ ।

३१ मिथ्यादृष्टि की आगति ३७१ की १७९ पूर्वोक्त भेद ९९ जाति के देव, ७ नारकी पर्याप्त और ८९ युगलिक मनुष्य पर्याप्त । गति ५५३ की ५६३ मे से ५ अनुतर विमान के पर्याप्त और अपर्याप्त ये १० छोड़कर ।

३२ माडलिक राजा की आगति २७६ की श्रावक के भेदो के अनुसार । गति ५३५ की ५६३ मे से ९ ग्रैवेयक ५ अनुतर विमान इन १४ के पर्याप्त अपर्याप्त के २८ भेदो को निकालकर शेष रहे हुए ।

३३ स्त्रीवेद की आगति ३७१ की मिथ्या दृष्टि के अनुसार । गति ५६१ की (सातवी नरक के पर्याप्त अपर्याप्त छोडकर) ।

३४. पुरुष वेद की आगति ३७१ की स्त्रीवेद की आगति के अनुसार । गति ५६३ की ।

३५ नपु सक वेद की आगति २८५ की १७९ पहले

पर्याप्त, इस प्रकार ३२ गति १४ की सात नरक के पर्याप्त और अपर्याप्त ।

२६ वलदेव की आगति ८३ की—चक्रवर्ती के ८२ और दूसरी नारकी से ।

२७. केवली की आगति १०८ की–६६ जाति के देव मे से १५ परमाधर्मी और ३ किल्विषी निकाल कर, शेष ८१, १५ कर्मभूमिज मनुष्य, ५ सञ्ज्ञी तिर्यंच, १ पृथ्वी, १ पानी, १ वनस्पति और पहले की चार नरक। इस प्रकार १०८ पर्याप्त गति मोक्ष की ।

२८ साधु की आगति २७५ की-१७१ पूर्वोक्त (असंज्ञी मनुष्य की आगति न १६ वत्) ६६ प्रकार के देव और प्रथम से ५ तक के नारक पर्याप्त, इस प्रकार २७५ । गति ७० भेद की–१२ देवलोक, ६ लोकान्तिक, ६ ग्रैवेयक और ५ अनुत्तर विमान के देव । इन ३५ के पर्याप्त और अपर्याप्त ७० ।

२६ श्रावक की आगति २७६ की–पूर्वोक्त २७५ और छठी नरक। गति ४२ की–१२ देवलोक, ६ लोकान्तिक, इन २१ जाति के देवो के पर्याप्त और अपर्याप्त–४२ ।

३० सम्यग्दृष्टि की आगति ३६३ की ६६ प्रकार

वलदेव की पदवी अमर है, यदि दीक्षा लेवे तो गति ७० भेद—साधु के समान या मोक्ष ।

के देव, १०१ संज्ञी मनुष्य के पर्याप्त, १०१ सम्मूर्च्छिम मनुष्य १५ कर्मभूमिज मनुष्य के अपर्याप्त, ७ नारकी के पर्याप्त और तेजस्काय वायुकाय के ८ भेदो को छोडकर शेष रहे हुए ४० भेद तिर्यंच के, सभी मिलाकर ३६३। गति २८२ भेद की ८१ जाति के देवता, १५ कर्मभूमिज मनुष्य, ३० अकर्मभूमिज मनुष्य, ५ सज्ञी तिर्यच और ६ नारकी, इन १३७ के पर्याप्त और अपर्याप्त, इस प्रकार २७४ तथा ३ विकलेन्द्रिय और ५ असज्ञी तिर्यंच का अपर्याप्त ये २८२।

३१ मिथ्यादृष्टि की आगति ३७१ की १७९ पूर्वोक्त भेद ९९ जाति के देव, ७ नारकी पर्याप्त और ८६ युगलिक मनुष्य पर्याप्त। गति ५५३ की ५६३ में से ५ अनुतर विमान के पर्याप्त और अपर्याप्त ये १० छोड़कर।

३२ माडलिक राजा की आगति २७६ की श्रावक के भेदो के अनुसार। गति ५३५ की ५६३ मे से ९ ग्रैवेयक ५ अनुतर विमान इन १४ के पर्याप्त अपर्याप्त के २८ भेदो को निकालकर शेष रहे हुए।

३३ स्त्रीवेद की आगति ३७१ की मिथ्या- दृष्टि के अनुसार। गति ५६१ की (सातवी नरक के पर्याप्त अपर्याप्त छोडकर)।

३४. पुरुष वेद की आगति ३७१ की स्त्रीवेद की आगति के अनुसार। गति ५६३ की।

३५. नपुसक वेद की आगति २८५ की १७९ पहले

कहे हुए ९९ प्रकार के देव पर्याप्त ७ नारकी के पर्याप्त एवं २८५ गति ५६३ की।

३६ गर्भज जीव की आगति २८५ भेदो से नपुंसक वेदवत गति ५६३।

३७ नोगर्भज+जीवों की आगति ३२९ भेदों मे (३७१ मे से नरक ७ तीसरे से बारहवें देवलोक तथा १० लोकांतिक देव ९, दूसरे व तीसरे किल्विषी के २, ग्रैवेयक ९, अनुत्तर देव ५ ये ४२ छोड़कर गति ३९५ की असन्नी पचेन्द्रिय तिर्यंचवत।

कहे हुए ६६ प्रकार के देव पर्याप्त ७ नारकी के पर्याप्त एवं २८५ गति ५६३ की।

३६ गर्भज जीव की आगति २८५ भेदो से नपुंसक वेदवत गति ५६३।

३७ नोगर्भज+जीवो की आगति ३२६ भेदों मे (३७१ मे से नरक ७ तीसरे से बारहवें देवलोक तथा १० लोकान्तिक देव ६, दूसरे व तीसरे किल्विषी के २, ग्रैवेयक ६, अनुतर देव ५ ये ४२ छोड़कर गति ३६५ की असज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंचवत।